करतार सिंह दुग्गल

# मन परदेसी



सरस्वती विहार

मन परदेसी जे थीये सब देस पराया

—गुरुनानक

(यदि मन परदेसी हो जाए तो सब देश पराया हो जाता है।)

ज़ेबा के नाम

# मन परदेसी

"मेरे सिरताज ! मेरे सिरताज !! मैं क्या करूं ? मैं कहां जाऊं ??"

इस समय कब्रिस्तान में कोई औरत ! बूढ़े मजावर को जैसे अपनी आखों पर विश्वास न हो रहा हो ! अंधेरा हो रहा था। कब्रिस्तान मे तन-कर खड़े पेड़ों की परछाइयां कब की रुक गई थीं। जाड़े की शाम का क्या है, आख झपकी और रात हो जाएगी। घुप अंधेरा। आजकल रातें भी तो अंधेरी हैं। मजावर को याद आया कि वह तो अमावस की रात थी।

'करमदीन ! तुम कहीं ख्वाब तो नहीं देख रहे ?' और फिर मजावर मग़रिब की नमाज़ के लिए अपने पीर के मज़ार पर सजदे में गिर गया। हुजरे में तो दिन चढ़े भी रात ही रहती थी। दूर-दूर तक फैले हुए क़ब्रिस्तान की ओर उसकी पीठ थी।

शहर का रईसी कब्रिस्तान था। सब कब्रें चूने-पत्थर की। यह और बात है कि पिछले कुछ महीनों से जैसे गुंडागर्दी मची हुई थी, कयामत आने-वाली थी। हर रोज़, हर दूसरे रोज़ कोई-न-कोई जनाज़ा लाया जाता। जब से साम्प्रदायिक दंगे हुए थे, शायद ही कोई दिन खाली जाता हो। जनाज़ों पर जनाज़े। मजावर दुरूद पढ़-पढ़कर थक-हार जाता था।

'लोग कहते हैं, देस आज़ाद हो गया है। नौज यह आज़ादी ! एक-दूसरे को छुरे भोंपने की आज़ादी ! एक-दूसरे को लूटने की आज़ादी ! एक-दूसरे का घर जलाने की आज़ादी ! एक-दूसरे की बहू-बेटियों की इज़्ज़त लूटने की आज़ादी !

'तोबा ! तोबा !! यह कुछ कभी नहीं सुना था। यह कुछ कभी नहीं देखा था। और रेडियो वाले कल भौंक रहे थे—जिस तरह चुपचाप, हंसते-खेलते; जिस तरह बिना हिंसा के, खून का एक कतरे बहाए बगैर, महात्मा गांधी ने देस आज़ाद करवा लिया है, इसकी मिसाल और कहीं नहीं मिलती। कुफ़ है, महज़ कुफ़। सारी दुनिया को ये लोग धोखा दे सकते हैं, क़ब्रिस्तान के चौकीदार से कोई कैसे छिपाए, दिन-रात जो क़त्ल हो रहे हैं। क़ब्रें खोदनेवालों को फ़ुरसत नहीं। क़ब्रिस्तान में तिल धरने की जगह नहीं बची।

'मैं तो कहता हूं, इन चूने-पत्थर की क़ब्रों पर 'कराह' फेर देना चाहिए ताकि औरों के लिए जगह बन सके। पैग़म्बर ने खुद कहा था कि क़ब्र कच्ची होनी चाहिए। आठ-दस बरस में फिर एकसार हो जाए। नाम-निशान बाक़ी न रहे। अगर पहले नहीं तो अब उन्हें करना होगा। अगर शहर में यूंही छुरेबाजी होती रही—हिन्दू मुसलमानों को काटते रहे, मुसलमान हिन्दुओं को छुरे घोंपते रहे तो फिर आज़ाद हिन्दुस्तान और आज़ाद पाकिस्तान, आजाद क़ब्रिस्तान बन जाएंगे।

'यह अंधेर कभी नहीं सुना था, कभी नहीं देखा था कि पड़ोसी, पड़ोसियों को काटने-मारने लगे। पहले जनाज़ा लाया जाता था, आधे उसमें मुसलमान होते थे, आधे हिन्दू होते थे। आजकल क्या मजाल कि कोई चोटी वाला नजर आ जाए ! लाख लानत। इसीको तो कहते हैं क़यामत ! क़यामत कोई और थोड़े ही होती है ! जब भाई अपने भाई की परवाह नहीं करेगा—पड़ोसी भाई ही तो होते हैं—तब क़यामत आ जाएगी। यही मेरे मुरशद ने कहा था। नीली कमली वाले मेरे पीर-दस्तगीर ने ! सदके जाऊं उसके ! मेरे मौला ने हिन्दू-मुसलमान में कभी फ़र्क़ नहीं किया था। हर किसीको एक नजर से देखता ! तभी तो उसके मजार पर हिन्दू शीरनियां चढ़ाने आते थे। सिजदे करते थे। अब कोई इधर नहीं फटकता, जब से पाकिस्तान का हल्ला मचा है। बनता रहे पाकिस्तान, पाकिस्तानियों का ! अपना घर, अपना देस भी कोई छोड़ सकता है ! कोई घर भी छोड़ जाए, अपना क़ब्रिस्तान कैसे छूट सकता है ?'

मजावर, नमाज पढ़ते हुए, सारा वक़्त कुछ इस तरह सोचता रहा,

सोचता रहा। इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था कि मग़रिब की नमाज़ ख़त्म हो गई। *'लाख लानत ! लाख लानत !!'* अपने-आपको लानत भेजता हुआ मजावर, हुजरे में से बाहर निकल आया। यह भी कोई नमाज़ हुई ! ध्यान कहीं-का-कहीं और अल्लाह के हुजरे में उठक-बैठक कर ली।

'यही तो बाबा नानक ने कहा था—बाबा नानक शाह फ़कीर; *हिन्दू का गुरु, मुसलमान का पीर।*—यही तो बाबा नानक ने सुलतानपुर के मौलवी से कहा था। मन उसका बछेरी में था और मस्जिद में नमाज़ पढ़ रहा था। बाबा नानक ने कहा—मैं तुम्हारे साथ क्या नमाज़ पढ़ता ? नवाब कहने लगा—तो फिर मेरे साथ नमाज़ पढ़ लेते। बाबा नानक ने उसका मुंह भी बंद कर दिया—तुम तो काबुल में घोड़े ख़रीद रहे थे।

'करमदीन ! तेरा भी यही हाल है ! तेरे सजदे भी झूठे ! बस, दिखावा ! बस, खानापुरी ! सजदा हो तो उस बीबी की तरह, कैसे गिरी हुई है, क़ब्र के ऊपर ! बाहें फैलाकर, जैसे सारी-की-सारी क़ब्र को अपने बाजुओं में भर लिया हो। सिर से पांव तक सफ़ेद चादर में लिपटी हुई। यह तो कोई सेय्यदों में से लगती है ! सेय्यदों की ही तो उधर क़ब्रें हैं—सारी-की-सारी चूने-पत्थर की। हर एक पर संगमरमर के गुम्बद !

'है ! यह तो रो रही है। यह तो कोई बड़ी दुखियारी है। फ़रियाद कर रही है। विलाप कर रही है। हिचकियां भर रही है। बार-बार अपना माथा क़ब्र पर पटकती है। उसका घरवाला होगा ! उसको पुकार रही है—मेरे सिरताज ! मेरे सिरताज !! मैं क्या करूं ? मैं कहां जाऊं ?'

अंधेरा होने लगा था। इधर-उधर वीरान क़ब्रिस्तान को देखकर औरत जैसे घबरा-सी गई हो। आजकल कोई दिन है, अकेले बाहर निकलने के ? और फिर इस वक्त ? सफ़ेद चादर में लिपटी बेगम ने [illegible] कि वह सामने हुजरे में से मजावर को अपने साथ ले लेगी। वह उसे घर तक पहुंचा आएगा। आजकल बेचारी किसी औरत का अकेले बाहर निकलने का ज़माना नहीं है।

और फिर वह सोचने लगी, [illegible] कोई [illegible] इससे तो चाहे कोई हिन्दू [illegible] या [illegible] फेंके, और वह झुलस जाए। [illegible] चाहे कोई हिन्दू [illegible]

उसका मटका कर जाए। अब जीने को क्या रखा है?

वह सोचती, अपने शौहर की क़ब्र पर फ़रियाद करके, आंसू बहाकर, शायद उसका जी हल्का हो जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ था। उसके कलेजे में वैसी-की-वैसी आग धधक रही थी। वैसे-के-वैसे जैसे कोई उसका कलेजे नोंच रहा हो। लहू-लुहान हुई पड़ी थी। उसे यूं लगता, जैसे पूरे-का-पूरा उसका कोई अंग किसीने कैंची से कतर लिया हो। जैसे किसी मस्जिद की कोई मीनार गिर जाए। जैसे उसका सारा ताना-बाना उलझ गया हो। आहत-सी औंधी पड़ी थी। मुंह-सिर झुलसा हुआ। वह तो अब किसी-के सामने खड़ी तक नहीं हो सकती थी। वह तो अब किसीको मुंह दिखाने लायक नहीं थी।

हुजरे के पास वह पहुंची, तो मजावर के पांव तले से जैसे जमीन निकल गई हो। यह तो बेगम मुजीब थी। बड़े शेख़—अल्लाह उनकी रूह को बख्शे—उनकी बीबी! कई बरस हो गए, जब वह अल्लाह को प्यारे हुए थे। बड़ा ख़ुदापरस्त बंदा था। नमाज-रोजा का पक्का। लोग उसका नाम लेकर राह पाते थे। सारा शहर उसकी इज्जत करता था। क़ौमपरस्त। आजादी का दीवाना। फ़िरंगी का वैरी। तो भी तहसीलदार और थानेदार उसके घर का पानी भरते थे। अंग्रेज कलक्टर उसके बंगले में आता था। उसकी मेम की, एक बार बेगम मुजीब के साथ बैठे हुए, तसवीर छपी थी। मोमिन लोग बेशक कहते—मुसलमान पर्दादार औरत को किसी फ़िरंगन के साथ यूं बैठकर तसवीर नहीं छपवानी चाहिए थी। लेकिन बेगम मुजीब तो अपने शौहर के साथ दिल्ली, कलकत्ता, लाहौर और पेशावर तक हो आई थी। इतना बड़ा लीडर था उसका घरवाला। कई लोग तो यह भी कहते थे कि गोरे उससे डरते थे। इतना माना हुआ वकील था। जिस मुक़दमे को हाथ में लेता, उसकी कभी हार न होती। बंगला कितना बड़ा बनवाया था। कितने एकड़ जमीन घेर रखी थी। आगे-पीछे मजिस्ट्रेटों और पुलिस अफ़सरों की कोठियां थीं।

जैसे रो-रोकर बेगम मुजीब का गला बैठ गया हो। उसके गले में से आवाज नहीं निकल रही थी। एक बार उसने कोशिश की, दूसरी बार कोशिश की। और फिर मजावर आप-ही-आप बोल उठा,

"बिसमिल्ला ! बिसमिल्ला !! बेगम साहिबा हैं ! अपने शेख साहब के घर से ! मैं आपके साथ चलता हूं। आजकल अकेले बाहर निकलने के कौन-से दिन हैं ?"

और फिर करमदीन अपनी टूटी हुई जूती पाव में अटकाकर बेगम मुजीब के साथ हो लिया। चलने से पहले, उसने बरामदे के कोने में रखे डंडे को उठा लिया। यह डंडा उसके पीर मुरशद का था। करमदीन को जब भी हुजरे से बाहर जाना होता, यह डंडा जरूर अपने हाथ में ले लेता। उसके मुरशद का डंडा उसके हाथ में हो तो क्या मजाल कोई उसकी ओर देख भी जाए—चाहे कोई हिन्दू हो, चाहे कोई सिख हो [illegible] और।

रंगी को यहां से खदेड़ना है, यही हम लड़...
में फ़साद कराता है। सारे हिन्दुस्तानी भाई-भाई हैं....
ावर यूं बोल रहा था कि बेगम मुजीब ठोकर खाकर एक ओर
ा गिरी।

## २

बेगम मुजीब की जवान-जहान, कालेज में पढ़ रही, परियों जैसी ख़ूबसूरत लड़की सीमा ने किसी सिख लड़के से ब्याह कर लिया था। बेगम मुजीब बेहाल थी। जिस समय उसे तार मिला, उसकी आंखों में से जैसे आंसुओं की धारा फूट निकली हो। मछली की तरह वह तड़प रही थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था, क्या करे, क्या न करे। बेचारी बेसहारा विधवा!

कई बरस हुए, उसका शौहर चल बसा था। ऊंची हस्ती। सारे देश में उसका नाम था, इज्जत थी। बेगम मुजीब ने रत्ती भर परवाह नहीं की। भला-चंगा था। शाम को उसे दिल का दौरा पड़ा, रात को सिधार गया। बेगम मुजीब ने अपने मन को समझा लिया था—कुदसिया! तेरे बच्चे सलामत रहें, अल्लाह का दिया बहुत कुछ है। एक बेटा, दो बेटियां भरा-पूरा परिवार—सुघड़ और सुशील। तुझे अल्लाह ने क्या नहीं दिया बंदे को उसका शुक्र अदा करना चाहिए, उसकी रज़ा में रहना चाहिए

और बेगम मुजीब ने, रब को जो मंजूर था, सिर-आंखों पर लिया। तीन बच्चों की मां, उसकी जवानी चाहे ढल चुकी थी, ले सिर का बाल एक भी सफ़ेद नहीं हुआ था। अधेड़ उम्र की कद उसके चेहरे पर एक बेपनाह हुस्न था।

लेकिन अब तो एक दिन में वह निढाल हो गई थी; जैसे उसकी शक्ति जाती रही हो। सीमा का तार देखकर, जैसे उसके कलेजे ने गोली दाग़ दी हो। वह सामने दीवान पर औंधी जा गिरी

अल्लाह का शुक्र था कि उसकी छोटी बेटी अभी घर में थी, पढ़ने नही गई थी। उसने अपनी अम्मी को सभाल लिया। सामने कोठी से, डाक्टर गोपाल को बुलवाकर टीका लगवाया। एक टीका, फिर दूसरा टीका।

डाक्टर गोपाल को बाहर गेट तक पहुंचाकर लौटते हुए, जेबा अपने-आपसे कहने लगी—'सीमा आपा को अगर इश्क मारनी ही थी तो किसी हिन्दू को चुन लेती। डाक्टर गोपाल कितना अच्छा आदमी है।'

फिर उसने सोचा—'प्यार सिख से हो और कोई हिन्दू के साथ कैसे भाग जाए ?' और जेबा के मुंह का स्वाद कड़वा-कड़वा हो गया।

'लेकिन हर बात के लिए कोई वक्त होता है। आजकल भला कोई *ज़माना है, कोई मुसलमान लड़की किसी गैर-मुस्लिम से शादी कर ले ?* और फिर सिख के साथ? तोबा ! तोबा ! !' जेबा चाहे स्कूल में पढ़ती थी, लेकिन उसकी सोच उम्र से कहीं आगे थी।

यूं सोचते-सोचते वह कोठी में लौट आई। उसने देखा, उसकी अम्मी की जैसे आंख लग गई हो। आंखें मींचे, वह पड़ी हुई थी।

आंख कैसे लगती ? बेगम मुजीब ने तो जानबूझकर पलकें मूंद ली थी। उसकी हिम्मत नही पड रही थी कि अपनी छोटी बेटी की ओर देख सके। जिस लडकी की बडी बहन ने यूं मुंह काला करवाया था, अब छोटी को कौन पूछेगा ? उसके साथ कौन ब्याह करेगा ? इस्लाम को छोड़कर किसीका किसी सिख के पीछे चल देना, उसे विश्वास नही हो रहा था। और फिर आजकल, जब सिखों ने पूर्वी पजाब मे मुसलमानो के गाव-के-गाव लूट लिए थे। गांव-के-गांव तबाह कर दिए थे। हजारों को मौत के घाट उतार दिया था। हजारो की इस्मत लूटी थी। इधर से जा रहे मुहाजरों की ट्रेनों पर टूट-टूट पडते थे। और सरहद के पार, उस तरफ बस लहू से लथपथ खाली गाडियां पहुचती थी। मास्टर तारासिह ने भरे लाहौर शहर मे तलवार नगी करके मुसलमानो को ललकारा था। बेगम मुजीब ने सुन रखा था कि बब्बर सिख हकलाए हुए से पूर्वी पजाब मे फिर रहे थे। कही किसी मुसलमान की भनक पड जाए, तो 'मानस-गध, मानस-गंध' कहते टूट पडते थे। पजाब ही क्यो, उन्होंने तो *दिल्ली मे भी अपना नगा-नाच शुरू कर दिया था।*

आजकल किसी मुसलमान लड़की का, किसी सिख के साथ अपनी रज़ामंदी से व्याह कर लेना एक अनहोनी वात थी। कुफ्र था। कुफ्र तो हमेशा था, लेकिन आजकल तो यह अल्लाह का क़हर नाज़िल कराने वाली वात थी।

और फिर वेगम मुजीव मन-ही-मन पछताने लगी। उसे अपने पाकिस्तानी रिश्तेदारों का कहना मान लेना चाहिए था। वंटवारे से कितने दिन पहले उसका पाकिस्तानी देवर वार-वार उसे संदेश भेजता रहा। उसकी ननद मिन्नतें करती रही, वंटवारे से कुछ दिन पहले आप उसे लेने के लिए आई, 'कोई अपना घर भी छोड़ता है ?' हमेशा वेगम मुजीव यही कहती रही। उसका सवसे वड़ा वेटा लंदन में डाक्टरी पढ़ रहा था। वह पाकिस्तानी वनने के लिए तैयार नहीं था।

वेगम मुजीव का देवर, लाहौर में इंजीनियर था। उसकी इच्छा थी कि अगर हमेशा के लिए नहीं, तो दंगे-फ़साादों के चंद-दिन वेगम मुजीव उनके यहां चली आए। लेकिन वह नहीं मानी। वार-वार यही कहती, 'अगर लाहौर ही वंटवारा-कमीशन ने भारत को दे दिया तो फिर क्या होगा ?'

अव वंटवारा-कमीशन का फ़ैसला भी हो चुका था। लाहौर पाकिस्तान के हिस्से में आ गया था। पाकिस्तान के चप्पे-चप्पे में से हिन्दू-सिखों को वटोरकर हिन्दुस्तान खदेड़ दिया गया था या फिर उन्हें ख़त्म कर दिया गया था। पाकिस्तान सचमुच पाक होगा। सव अहले-सुन्नत। कोई दूसरा नहीं। वेशक कुछ ईसाई थे, लेकिन ईसाई तो अहले-किताव हैं। उनकी और वात है। वह तो फ़िरंगी का मज़हव है। फ़िरंगी ने ही पाकिस्तान वनाया था वरना हिन्दू तो सारे-के-सारे हिन्दुस्तान को हथियाना चाहता था। लोग कहते, 'गांधी वड़ा काइयां है, कट्टर हिन्दू। मुसलमान क़ौम, जिसने सैकड़ों वरस हिन्दुस्तान पर राज किया था, फिर उसे हिन्दुओं का ग़ुलाम वनाना चाहता था। कोई वात भी हुई !'

सीमा अगर दिल्ली में होती तो कोई उसे समझाने-वुझाने भी जाता। इन दिनों कोई अमृतसर कैसे जा सकता है ? पंजाव तो आजकल जैसे क़त्लगाह वना हुआ हो। पश्चिमी पंजाव में हिन्दू-सिखों का वीज-नाश

किया जा रहा था, पूर्वी पंजाब में मुसलमानों के खून की होली खेली जा रही थी। अमृतसर कोई नहीं जा सकता था। ट्रेनों पर हमले हो रहे थे। चुन-चुनकर मुसलमानों को कत्ल किया जा रहा था। पता नहीं सीमा अकेली कैसे वहां पहुंची थी? इससे तो अच्छा होता, कि उसे रास्ते में ही कोई पकड़कर खत्म कर देता। उन्हें यूं ज़लील तो न होना पड़ता। हज़ारों मुसलमान लड़कियां शहीदी का जाम पी गई थी। वह भी उनमें शामिल हो जाती।

'अब मैं इस देस में नहीं रहूंगी।' बेगम मुजीब सोच रही थी—'बेशक जायदाद है, भट्ठी में जाए। बेशक रिश्तेदार हैं, जहन्नुम में जाए। उधर पाकिस्तान में भी तो रिश्तेदार हैं। और बनाए जा सकते हैं। एक बेटी तो भाग गई। पता नहीं, दूसरी क्या कर बैठे? इस्लाम जैसा मज़हब बार-बार नहीं मिलता। हाथों में आई जन्नत कोई कैसे गवा दे? जब मेरी ननद इस्मत लाहौर से मुझे लेने आई थी, तो मुझे उसके साथ चले जाना चाहिए था। पर जाती कैसे? दोनों बेटियां, इधर पढ़ रही थी। सीमा कालेज में थी, जेबा स्कूल में।

'कैसे जाती? कैसे जाती?? इतना बड़ा बंगला है यहां। इतनी सारी दुकानें किराये पर चढ़ी है। बहनें हैं, भाई है। सारा शहर मुझे जानता है। हर गली में कुदसिया बेगम को याद किया जाता है। सारा मुहल्ला मुझ-पर जान छिड़कता है। सुबह-शाम 'कुदसिया बीबी, कुदसिया बीबी' कहते लोगों की ज़बान नहीं थकती। यहां हमारा कब्रिस्तान है, जिसमें मेरा शौहर दफन है, ससुर दफन है, सास दफन है। पिछली बार चुनाव में मैंने कांग्रेस को वोट दिया था। खुद, महात्मा गांधी के नाम पर्ची डाली, दूसरों से डलवाई। इस उम्र में आकर खुद हिन्दी पढ़ना शुरू किया, अपने बच्चों को हमेशा हिन्दी पढ़ने के लिए कहा। पड़ोसी के साथ रहना हो तो पड़ोसी की ज़बान सीखने में क्या हर्ज है?

'लेकिन अब मैं इस देस में नहीं रहूंगी। हिन्दी! हिन्दू!! हिन्दुस्तान!!'

आजकल किसी मुसलमान लड़की का, किसी सिख के साथ अपनी रज़ामंदी से व्याह कर लेना एक अनहोनी वात थी। कुफ्र था। कुफ्र तो हमेशा था, लेकिन आजकल तो यह अल्लाह का क़हर नाज़िल कराने वाली वात थी।

और फिर वेगम मुजीव मन-ही-मन पछताने लगी। उसे अपने पाकिस्तानी रिश्तेदारों का कहना मान लेना चाहिए था। वंटवारे से कितने दिन पहले उसका पाकिस्तानी देवर वार-वार उसे संदेश भेजता रहा। उसकी ननद मिन्नतें करती रही, वंटवारे से कुछ दिन पहले आप उसे लेने के लिए आई, 'कोई अपना घर भी छोड़ता है ?' हमेशा वेगम मुजीव यही कहती रही। उसका सवसे वड़ा वेटा लंदन में डाक्टरी पढ़ रहा था। वह पाकिस्तानी वनने के लिए तैयार नहीं था।

वेगम मुजीव का देवर, लाहौर में इंजीनियर था। उसकी इच्छा थी कि अगर हमेशा के लिए नहीं, तो दंगे-फ़सादों के चंद-दिन वेगम मुजीव उनके यहां चली आए। लेकिन वह नहीं मानी। वार-वार यही कहती, 'अगर लाहौर ही वंटवारा-कमीशन ने भारत को दे दिया तो फिर क्या होगा ?'

अव वंटवारा-कमीशन का फ़ैसला भी हो चुका था। लाहौर पाकिस्तान के हिस्से में आ गया था। पाकिस्तान के चप्पे-चप्पे में से हिन्दू-सिखों को वटोरकर हिन्दुस्तान खदेड़ दिया गया था या फिर उन्हें ख़त्म कर दिया गया था। पाकिस्तान सचमुच पाक होगा। सव अहले-सुन्नत। कोई दूसरा नहीं। वेशक कुछ ईसाई थे, लेकिन ईसाई तो अहले-किताव हैं। उनकी और वात है। वह तो फ़िरंगी का मज़हव है। फ़िरंगी ने ही पाकिस्तान वनाया था वरना हिन्दू तो सारे-के-सारे हिन्दुस्तान को हथियाना चाहता था। लोग कहते, 'गांधी वड़ा काइयां है, कट्टर हिन्दू। मुसलमान क़ौम, जिसने सैकड़ों वरस हिन्दुस्तान पर राज किया था, फिर उसे हिन्दुओं का गुलाम वनाना चाहता था। कोई वात भी हुई !'

सीमा अगर दिल्ली में होती तो कोई उसे समझाने-वुझाने भी जाता। इन दिनों कोई अमृतसर कैसे जा सकता है ? पंजाव तो आजकल जैसे क़त्लगाह वना हुआ हो। पश्चिमी पंजाव में हिन्दू-सिखों का वीज-नाश

कर्तार सिंह दुग्गल

# मन परदेसी



सरस्वती विहार

किया जा रहा था, पूर्वी पंजाब में मुसलमानों के खून की होली खेली जा रही थी। अमृतसर कोई नहीं जा सकता था। ट्रेनों पर हमले हो रहे थे। चुन-चुनकर मुसलमानों को कत्ल किया जा रहा था। पता नहीं सीमा अकेली कैसे वहां पहुंची थी? इससे तो अच्छा होता, कि उसे रास्ते में ही कोई पकड़कर खत्म कर देता। उन्हें यूं ज़लील तो न होना पड़ता। हज़ारों मुसलमान लड़कियां शहीदी का जाम पी गई थीं। वह भी उनमें शामिल हो जाती।

'अब मैं इस देस में नहीं रहूंगी।' बेगम मुजीब सोच रही थी—'बेशक जायदाद है, भट्ठी में जाए। बेशक रिश्तेदार हैं, जहन्नुम में जाएं। उधर पाकिस्तान में भी तो रिश्तेदार हैं। और बनाए जा सकते हैं। एक बेटी तो भाग गई। पता नहीं, दूसरी क्या कर बैठे? इस्लाम जैसा मज़हब बार-बार नहीं मिलता। हाथों में आई जन्नत कोई कैसे गंवा दे? जब मेरी ननद इस्मत लाहौर से मुझे लेने आई थी, तो मुझे उनके साथ चले जाना चाहिए था। पर जाती कैसे? दोनों बेटियां, इधर पढ़ रही थीं। सीमा कालेज में थी, ज़ेबा स्कूल में!

'कैसे जाती? कैसे जाती?? इतना बड़ा बंगला है यहां। इतनी सारी दुकानें किराये पर चढ़ी हैं। बहनें हैं, भाई है। सारा शहर मुझे जानता है। हर गली में कुदसिया बेगम को याद किया जाता है। सारा मुहल्ला मुझ पर जान छिड़कता है। सुबह-शाम 'कुदसिया बीबी, कुदसिया बीबी' कहते लोगों की ज़बान नहीं थकती। यहां हमारा कब्रिस्तान है, जिसमें मेरा शौहर दफन है, ससुर दफन है, सास दफन है। पिछली बार चुनाव में मैंने कांग्रेस को वोट दिया था। खुद, महात्मा गांधी के नाम पर्ची डाली, दूसरों से डलवाई। इस उम्र में आकर खुद हिन्दी पढ़ना शुरू किया, अपने बच्चों को हमेशा हिन्दी पढ़ने के लिए कहा। पड़ोसी के साथ रहना हो तो पड़ोसी की ज़बान सीखने में क्या हर्ज है?

'लेकिन अब मैं इस देस में नहीं रहूंगी। हिन्दी! हिन्दू!! हिन्दुस्तान!!'

# ३

'मेरी प्यारी अम्मी !' कुछ दिनों के बाद सीमा की अपनी मां के नाम चिट्ठी आई। 'आपको मेरा तार मिला होगा। मैं सोच सकती हूं कि आपको कैसा सदमा पहुंचा होगा। यह जानकर कि मैंने इन्द्रमोहन से व्याह कर लिया है, हमारे घर में कुहराम मच गया होगा। लाख-लाख आप लोग मुझे लानतें सुना रहे होंगे। मुझे इस बात का एहसास है, कि मैं आपके लिए मर गई हूं। अब मेरी उस घर में कोई जगह नहीं है। आप लोग कभी मेरा मुंह देखने के लिए तैयार नहीं होंगे। मेरी वहन, मेरे भाई मुझसे छूट गए हैं। मैं उनसे बहुत दूर निकल आई हूं। जो फ़ैसला मैंने किया है, उसके लिए मैं यह सारी क़ीमत चुकाने के लिए तैयार हूं।

'मुझे यह भी डर है कि आप मेरी यह चिट्ठी पूरी पढ़े बिना, शायद चूल्हे में फेंक दें। लेकिन मेरी एक ही तमन्ना है, एक बेटी की अपनी मां से यह एक आख़िरी चाहत है कि आप इस चिट्ठी को ज़रूर पढ़ें। इसके बाद, जो फ़ैसला आप मुनासिब समझें, कर लें। मुझे कोई शिकायत नहीं होगी। कोई गिला नहीं होगा।

'इन्द्रमोहन को आप जानती हैं, एक बार हमारे यहां आया था। एक रात हमारे यहां रहा भी था। मेरे साथ पढ़ता था। हमारी दोस्ती की चारों ओर चर्चा थी। हमारे कालेज में हर कोई यही कहता था कि हम किसी दिन भी व्याह करवा लेंगे। चाहे इसमें कोई सच्चाई नहीं थी। लोगों का कोई मुंह थोड़े ही पकड़ सकता है।

'इन्द्र के साथ मुझे हमदर्दी थी। उनका घर पाकिस्तान में लूटा गया था। उनके गांव को जलाकर ख़ाक में मिला दिया गया था। उसके बूढ़े मां-बाप को क़त्ल कर दिया गया था। उसकी जवान-जहान बहन को फ़सादी अगवा करके ले गए हैं। अभी तक उसकी कोई ख़बर नहीं मिली। चाहे इन्द्र ने मुझसे कभी कहा नहीं, लेकिन मुझे यूं लगता, जैसे इन्द्र मुझमें अपनी बहन को देखता था। अम्मी ! शायद आपको याद हो, एक बार मैंने आपको बताया था, इन्द्र की बहन का नाम सीमा है। शायद मेरा नाम सीमा होने की वजह से, इन्द्र का मुझसे इतना प्यार था।

'हमने आम हिन्दुस्तानी लड़के-लड़कियों की तरह एक-दूसरे को बहन-भाई नहीं बनाया था। हम एक-दूसरे के दोस्त थे। हर शाम हमारी एकसाथ गुज़रती थी। मुझे यह सब कुछ कभी अजीब नहीं लगा। आख़िर मैं शेख़ मुजीब की बेटी हूं। मेरे अब्बा हुज़ूर की नज़रों में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सब बराबर थे।

'आप यह भूली नहीं होंगी कि अब्बा पहली बार नाभा में क़ैद हुए थे। सिखों का चलाया हुआ कोई आंदोलन था। कई महीने उन्हें फ़िरंगी की जेल में काटने पड़े—अपने पंजाबी हम-वतनों के लिए, जिन्होंने जलियानवाला बाग़ में फ़िरंगी की गोलियां सीनों पर झेली थीं। हिन्दू-मुसलमान-सिखों ने मिलकर अंग्रेज़ों को ललकारा था। सबका लहू मिलकर अमृतसर की नालियों में बहा था।

'मेरे अब्बा रोज़ा-नमाज़ के पक्के थे। लेकिन सारी उम्र उन्होंने कांग्रेस का साथ दिया। सारी उम्र वे देश की आज़ादी के लिए लड़ते रहे। हिन्दू-मुसलमान एकता के लिए जान देते रहे।

'मैं यह कभी नहीं भूली कि मैं उस अब्बा की बेटी हूं। बेशक कांग्रेस के साथ उनका मतभेद हो जाता। कई बार लोगों ने उन्हें फ़िरक़ापरस्त भी कहा। लेकिन उन्होंने महात्मा गांधी का साथ कभी नहीं छोड़ा। बरतन-से-बरतन टकराता ही है। ग़लतफ़हमियां हो जाती हैं। लेकिन मरते दम तक वे क़ौमपरस्त रहे। इंक़लाब ज़िन्दाबाद का नारा उनके होंठों पर था जब वे अल्लाह को प्यारे हुए।

'अम्मी! मुझे अब्बा का जनाज़ा कभी नहीं भूलेगा। कैसे हिन्दू उनकी बेवक़्त मौत पर रो रहे थे! कैसे सिख आगे बढ़-बढ़कर उनकी मैयत को कंधा दे रहे थे! लाख मुसलमान पड़ोसी बुदबुदाते रहे, अब्बा हुज़ूर को मेरठ के शहरियों ने तिरंगे में लपेटकर दफ़नाया था। हिन्दू, मुसलमान और सिख—सभीकी यही ज़िद थी।

'अम्मी! मैं उस अब्बा की बेटी हूं, और अब मैं आपको बताने जा रही हूं कि मैंने कैसा शौहर चुना है। कैसा जीवनसाथी मैंने ढूंढा है, जिसके साथ मैं ज़िंदगी गुज़ारने जा रही हूं। मैं किस बाप की बेटी हूं और किस शौहर की बीवी हूं!

'आपको शायद याद होगा, उस दिन इन्द्र हमारे यहां मेरठ आया था। रात को हमारे यहां रुका भी था। अगले दिन शाम की गाड़ी से हम दिल्ली लौट रहे थे। हम लोग मेरठ से ट्रेन में बैठे, पहले दर्जे के हमारे पास टिकट थे। गाड़ी चलने से पहले चार-छः नौजवान हमारे डिब्बे में घुस आए। कालेज के लड़के मालूम होते थे। देखने में शरीफ़, अंग्रेज़ी बोल रहे थे। आते ही बातें करने लगे।

'गाड़ी चली ही थी कि इन्द्र टायलेट में गए। गाड़ी प्लेट-फ़ार्म से बाहर निकल आई थी। यार्ड से भी बाहर। काफ़ी रफ़्तार पकड़ चुकी थी। और फिर मेरी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। मैंने देखा, दो लड़के टायलेट के सामने जाकर खड़े हो गए। उन्होंने टायलेट को बाहर से बंद कर दिया। और बाक़ी मुझपर टूट पड़े। 'पाकिस्तान ज़िंदाबाद' के नारे लगाते हुए मुझसे उन्होंने बेहूदगी करनी शुरू कर दी। कोई मेरे गाल नोचता, कोई मेरी चोटियों को। उन्होंने मेरे कपड़े उतार दिए। जो नहीं उतरे, उन्हें फाड़ दिया। और फिर वे अपनी मनमर्ज़ी करने लगे। जैसे हलकाए हुए कुत्ते हों।

'मैं बार-बार उनसे कहती रही कि मैं मुसलमान हूं। मैं बार-बार अब्बा का नाम लेकर उन्हें बताती रही। लेकिन उन्होंने एक नहीं सुनी। यही कहते रहे, अगर तुमने शोर मचाया, कोई गड़बड़ की तो तेरे उस सिख को भी जान से मार डालेंगे। तुझे भी ख़त्म कर देंगे। आपकी बेटी मेरठ से लेकर दिल्ली तक पाकिस्तान के नाम पर मुसलमान गुंडों की बर्बरता सहती रही। दिल्ली के पास, जब गाड़ी धीमी हुई तो वे लोग छलांगें लगाकर गाड़ी से उतर गए। जाते हुए मेरे गले में पड़ा हुआ लाकेट भी उतारकर ले गए।

'जो कपड़े बचे थे, मैंने अपने-आपको उनसे ढका। इतने में इन्द्र भी टायलेट से बाहर निकल आया था। हम एक-दूसरे के मुंह की तरफ़ नहीं देख पा रहे थे। दिल्ली से पहले गाड़ी कितनी ही देर सीटियां बजाती रही, चीख़ती-चिल्लाती रही। घुप अंधेरी रात थी। हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करें, क्या न करें। यही डर था कि गुंडे कहीं फिर डिब्बे में न आ घुसें, हमने अंदर से दोनों दरवाज़ों को बंद कर

लिया।

'कहानी यही खत्म नही होती। उस रात दिल्ली पहुचकर हम अपने-अपने होस्टल की जगह, होटल मे रुके। इन्द्र बार-बार अपने-आपको कोसने लगता। आखिर वह मुझे अकेला छोड़कर टायलेट मे क्यों गया? कभी कहता—क्योंकि मैं सिख था, इसलिए इसकी सजा उसकी मुसलमान दोस्त को भुगतनी पड़ी। मैं जान पर खेल जाता—अगर मे बाहर होता, और वे तुम्हारी तरफ बुरी नजर से देखते—यूं लगता है, टायलेट मे खतरे की ज़ंजीर काम नही कर रही थी। इन्द्र बार-बार उसे खोचता रहा।

'अगली सुबह हम एक लेडी डाक्टर के यहा गए। इन्द्र की जिद थी। मुझे तो इसकी कोई जरूरत महसूस नही हो रही थी। लेडी डाक्टर ने हमारी कहानी सुनी और बड़े गौर से मुझे देखा। बार-बार यही कहती रही, खतरे की कोई बात नही।

'खतरे की बात क्यो नही थी? कुछ हफ्ते बीते तो मुझे महसूस हुआ कि कोई गड़बड़ जरूर है। मेरी तबीयत खराब रहने लगी। हर वक्त मेरा जी मतलाता रहता। और फिर मेरा डर ठीक निकला। किसके आगे मैं अपना दु ख रोती? उन दिनों आपके यहा इस्मत फूफी आई हुई थीं। सारा दिन पाकिस्तान के गुण गाती रहतीं। आपको अपने साथ लाहौर ले जाने के लिए मना रही थीं।

'बस, इन्द्र ही मेरा हमराज था। एक के बाद एक, हमने कई जगह कोशिश की। कोई लेडी डाक्टर हमारी मदद करने को तैयार नही हुई। हम लोग आगरा भी गए। शायद छोटी जगह, कोई डाक्टर मान जाए। इन्द्र मुझे इस बला से छुटकारा दिलवाने के लिए कुछ भी खर्च करने को तैयार था। लेकिन कोई कामयाबी नही हुई। बस, एक ही चिन्ता उसे खाए जा रही थी, कही मेरी सेहत को कुछ हो न जाए।

'दिन बीतते गए। हफ्ते बीतते गए। फिर एक दिन मैं इन्द्र के मुह की तरफ देखती रह गई; वह मुझे परेशान देखकर कहने लगा—मैं इस बच्चे की जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार हू।—मैंने सुना और मेरे हाथ-पाव ठडे हो गए। इन्द्र की यही जिद थी—हमें जो कुछ करना था, कर चुके।

अब और दर-दर की ठोकर हम नहीं खाएंगे। अब और मैं तुम्हें डाक्टरों की नज़रों में ज़लील नहीं होने दूंगा—एक कुंवारी लड़की, जिसके पेट में बच्चा था! हर डाक्टर फीस लेती। मेरा मुआयना करती और जब हम उसे बताते कि मैं कुंवारी हूं, यूं मेरी तरफ देखती जैसे मैंने कोई पाप किया हो। कूड़े का ढेर। किसीको मेरी आप-बीती पर यक़ीन न आता। मेरी कहानी सुनकर, इन्द्र को कोई मुंह लगाने के लिए तैयार न होता। हर कोई यही सोचता, कुसूर उसीका था। एक दिन तो एक डाक्टर ने हमें धमकी दी—अगर आप एक मिनट और मेरे क्लिनिक में नज़र आए तो मैं आपको पुलिस के हवाले कर दूंगी।

'उस दिन इन्द्र ने पक्का फ़ैसला कर लिया कि वह मेरे साथ ब्याह कर लेगा। चाहे कोई भी क़ीमत देनी पड़े, वह मुझे और ज़लील नहीं होने देगा।

'अम्मीजान! आज मैं उस इन्द्र की बीवी हूं।

'मुझे अभी आपको और बहुत कुछ बताना है। डाक का वक़्त हो गया है, इसलिए यह चिट्ठी यहीं ख़त्म करती हूं। आपकी बेटी, सीमा।'

## ४

बेगम मुजीब अभी चिट्ठी पढ़ ही पाई थी कि शेख़ मुजीब का बड़ा भाई शेख़ शब्बीर दनदनाता हुआ उसके कमरे में आ घुसा। लाल-पीला हो रहा था। उसे अभी-अभी ख़बर मिली थी। बेगम मुजीब ने चिट्ठी को अपने तकिया के नीचे छिपा लिया। उसका जेठ निहायत दकियानूसी विचारों का जागीरदार था, कट्टर फ़िरकापरस्त।

"मैं न कहता था कि लड़कियों को पढ़ाने की कोई ज़रूरत नहीं। इन्हें किसीके पल्ले बांधकर अपनी जान छुड़ाओ। अब तुमने देख लिया कि आजकल की औलाद क्या गुल खिलाती है? एक तुम्हारा मियां, मुंह-ज़ोर था, सारी उम्र अपने-आपको धोखा देता रहा। हिन्दू का पिट्ठू बना

रहा। हिन्दू-मुस्लिम एकता ! देख लिया न हिन्दू-सिखों की दोस्ती का नतीजा ? इस लड़की के तौर-तरीके तो मुझे कभी एक आख नहीं भाए। पहले, इसे दिल्ली पढ़ने के लिए भेजा ही क्यों गया ? क्या यहां अपने शहर में कोई कालेज नहीं था ? और लोगों की बेटियां क्या तालीम नहीं पाती ? कोई बात हुई कि मुझे जो मजमून पढ़ना है, वह यहां पढ़ाया नहीं जाता। देख लिया तुमने कि वह कौन-सी पढ़ाई करने गई थी ? कौन-सा मज़मून पढ़ने गई थी ?

"मेरी बेटी होती तो मैं गोली से उड़ा देता। अब भी मैं कौन-सा उसे माफ करूंगा ? अपने ख़ानदान की आबरू, मैं जान पर खेलकर भी, उसके उस 'सिख' से बदला लूंगा। अगर उसकी कोई बहन है तो उसे निकालकर लाऊंगा। अगर उसकी कोई मां है तो उसे अगवा करवाऊंगा। चाहे मुझे हज़ारों न लुटाने पड़ें। हमारे शहर के गुंडे दूर बंबई और कलकत्ता तक वार करते हैं। ढेरों रुपये का चंदा मैं उन्हें देता हूं। आज एक बरस से ऊपर हो गया है। कितनी हिन्दू और सिख लड़कियों की उन्होंने इज्जत लूटी है। बदज़ात लड़कियां चूं तक नहीं करतीं। मुंह से शिकायत तक नहीं करतीं। हिन्दू धर्म भी कोई धर्म है, जैसे रद्दी की टोकरी हो ! सब तरह का कूड़ा इसमें समा जाता है।

"मैं कहता हूं कि पहला कुसूर तेरे शौहर का है। 'महात्मा गांधी ! महात्मा गांधी' रटता रहता था। अब गांधी को बुलाकर लाओ कि छुड़ाए तुम्हारी बेटी को किसी सिख दरिन्दे के चंगुल से ! बड़ा 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' की डींगें हांकता था। जब जवाहरलाल की बहन, विजय लक्ष्मी डाक्टर महमूद से ब्याह करना चाहती थी, उसने आप बीच में पड़कर लड़की को रोक दिया, तब कहां गई थी उसकी हिन्दू-मुस्लिम एकता ? मुसलमान लड़की हिन्दू से ब्याह कर सकती है, हिन्दू लड़की मुसलमान से नहीं ब्याही जा सकती—आखिर क्यों ?"

इतने में बेगम मुजीब की जेठानी आ गई। बाहर-आंगन से ही माथा पीट रही थी। कमरे में घुसते ही उसने दहाड़ना शुरू कर दिया। बाल नोच रही थी और छाती पर घूंसे मार रही थी। जैसे घर में किसीकी मौत हो गई हो। बार-बार सीमा को बुरा-भला कह रही थी। उसे इस

अब और दर-दर की ठोकर हम नहीं खाएंगे। अब और मैं तुम्हें डाक्टरों की नज़रों में ज़लील नहीं होने दूंगा—एक कुंवारी लड़की, जिसके पेट में बच्चा था! हर डाक्टर फीस लेती। मेरा मुआयना करती और जब हम उसे बताते कि मैं कुंवारी हूं, यूं मेरी तरफ देखती जैसे मैंने कोई पाप किया हो। कूड़े का ढेर। किसीको मेरी आप-बीती पर यक़ीन न आता। मेरी कहानी सुनकर, इन्द्र को कोई मुंह लगाने के लिए तैयार न होता। हर कोई यही सोचता, कुसूर उसीका था। एक दिन तो एक डाक्टर ने हमें धमकी दी—अगर आप एक मिनट और मेरे क्लिनिक में नज़र आए तो मैं आपको पुलिस के हवाले कर दूंगी।

'उस दिन इन्द्र ने पक्का फ़ैसला कर लिया कि वह मेरे साथ ब्याह कर लेगा। चाहे कोई भी क़ीमत देनी पड़े, वह मुझे और ज़लील नहीं होने देगा।

'अम्मीजान! आज मैं उस इन्द्र की बीवी हूं।

'मुझे अभी आपको और बहुत कुछ बताना है। डाक का वक़्त हो गया है, इसलिए यह चिट्ठी यहीं ख़त्म करती हूं। आपकी बेटी, सीमा।'

## ४

बेगम मुजीब अभी चिट्ठी पढ़ ही पाई थी कि शेख़ मुजीब का बड़ा भाई शेख़ शब्बीर दनदनाता हुआ उसके कमरे में आ घुसा। लाल-पीला हो रहा था। उसे अभी-अभी ख़बर मिली थी। बेगम मुजीब ने चिट्ठी को अपने तकिया के नीचे छिपा लिया। उसका जेठ निहायत दकियानूसी विचारों का जागीरदार था, कट्टर फ़िरकापरस्त।

"मैं न कहता था कि लड़कियों को पढ़ाने की कोई ज़रूरत नहीं। इन्हें किसीके पल्ले बांधकर अपनी जान छुड़ाओ। अब तुमने देख लिया कि आजकल की औलाद क्या गुल खिलाती है? एक तुम्हारा मियां, मुंह-ज़ोर था, सारी उम्र अपने-आपको धोखा देता रहा। हिन्दू का पिट्ठू बना

रहा। हिन्दू-मुस्लिम एकता! देख लिया न हिन्दू-सिखों की दोस्ती का नतीजा? इस लड़की के तौर-तरीके तो मुझे कभी एक आख नहीं भाए। पहले, इसे दिल्ली पढ़ने के लिए भेजा ही क्यों गया? क्या यहा अपने शहर मे कोई कालेज नहीं था? और लोगों की बेटियां क्या तालीम नही पाती? कोई बात हुई कि मुझे जो मजमून पढ़ना है, वह यहां पढ़ाया नहीं जाता। देख लिया तुमने कि वह कौन-सी पढ़ाई करने गई थी? कौन-सा मजमून पढ़ने गई थी?

"मेरी बेटी होनी तो मैं गोली से उड़ा देता। अब भी मैं कौन-सा उसे माफ़ करूंगा? अपने खानदान की आबरू, मैं जान पर खेलकर भी, उसके उस 'सिख' से बदला लूंगा। अगर उसकी कोई बहन है तो उसे निकालकर लाऊंगा। अगर उसकी कोई मा है तो उसे अगवा करवाऊंगा। चाहे मुझे हजारों न लुटाने पड़ें। हमारे शहर के गुंडे दूर बबई और कलकत्ता तक वार करते हैं। ढेरों रुपये का चदा मैं उन्हे देता हू। आज एक बरस से ऊपर हो गया है। कितनी हिन्दू और सिख लड़कियों की उन्होंने इज्जत लूटी है। बदजात लड़किया चू तक नहीं करतीं। मुंह से शिकायत तक नहीं करतीं। हिन्दू धर्म भी कोई धर्म है, जैसे रद्दी की टोकरी हो! सब तरह का कूड़ा इसमें समा जाता है।

"मैं कहता हू कि पहला क़ुसूर तेरे शौहर का है। 'महात्मा गाधी! महात्मा गाधी' रटता रहता था। अब गाधी को बुलाकर लाओ कि छुड़ाए तुम्हारी बेटी को किसी सिख दरिन्दे के चगुल से! बड़ा 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' की डींगें हांकता था। जब जवाहरलाल की बहन, विजय लक्ष्मी डाक्टर महमूद से ब्याह करना चाहती थी, उसने आप बीच मे पडकर लड़की को रोक दिया, तब कहा गई थी उसकी हिन्दू-मुस्लिम एकता? मुसलमान लड़की हिन्दू से ब्याह कर सकती है, हिन्दू लड़की मुसलमान से नहीं ब्याही जा सकती—आखिर क्यों?"

इतने मे बेगम मुजीब की जेठानी आ गई। बाहर-आगन से ही माथा पीट रही थी। कमरे मे घुसते ही उसने दहाड़ना शुरू कर दिया। बाल नोच रही थी और छाती पर घूसे मार रही थी। जैसे घर मे किसीकी मौत हो गई हो। बार-बार सीमा को बुरा-भला कह रही थी। उसे इस

तरह रोते-चिल्लाते देखकर, बेगम मुजीब की आंखों में भी आंसू उमड़ आए। उसने भी रोना शुरू कर दिया। यह देखकर उसकी जेठानी, बेगम मुजीब के गले से लिपटकर और ऊंचा रोने लगी। विलाप करने लगी। सारे घर में कुहराम मच गया। नौकर-चाकर इकट्ठे हो गए। जेबा छल-छल आंसू बहाती, एक कोने में आकर खड़ी हो गई।

और फिर पड़ोसियों का जमघट लग गया। दूर-पास के रिश्तेदार इकट्ठा हो गए। घर में जैसे मातम छा गया। बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करे और क्या न करे! पहली बार उसने देखा कि उसके घर के दुःख-सुख में उसका कोई हिन्दू पड़ोसी शामिल नहीं हुआ था, जान-पहचान का कोई सिख नहीं आया था। सारे-के-सारे मुसलमान थे। क्या दोस्त-रिश्तेदार और क्या अड़ोसी-पड़ोसी!

बेगम मुजीब के सामने बैठकर अजीब-अजीब कहानियां गढ़ी जा रही थीं। कभी कहीं खुसर-फुसर होती, तो कभी कहीं। और फिर लोग बेगम मुजीब के घर में बैठकर, उसके सामने कुछ इस तरह के ताने-बाने बुनने लगे। सुन-सुनकर उसके पांव तले से ज़मीन निकल जाती।

"यहां, इस घर से लड़की को अगवा किया गया है।"

"हिन्दू और सिख गुंडे आए। घर में औरतें अकेली थीं। छुरा दिखाकर बड़ी बहन को मोटर में बिठाकर ले गए।"

"लड़की खुद भागी है। लड़के के साथ उसकी आशनाई थी। मां मानी नहीं, उसके सिर पर खाक डालकर चली गई।"

"वह तो कब की ताक में थी। घर के सारे गहने साफ़ करके निकली है।"

"और बैठी भी जाकर अमृतसर है, जहां आजकल कोई पहुंच ही न पाए।"

"आजकल अमृतसर की तरफ़ कोई मुसलमान मुंह कर सकता है? किसीको जान नहीं चाहिए!"

और फिर शेख़ मुजीब के बड़े भाई की सलाह से पड़ोसियों, रिश्तेदारों और दोस्तों ने फ़ैसला किया कि थाने में रपट लिखाई जाए—मुसलमान लड़की को हिन्दू-सिख गुंडे अगवा करके ले गए थे। लड़की के साथ घर का

सारा जेवर भी लूटकर ले गए थे। और फिर यह भी फ़ैसला हुआ कि एक प्रतिनिधि-मंडल दिल्ली जाकर रोए-पीटे। क्या पता, कुछ सुनवाई हो जाए! लड़की के अब्बा के कई साथी कांग्रेस सरकार में ऊंचे पदों पर थे। खुद जवाहरलाल उसे जानते थे।

विट-विट, बेगम मुजीब हर किसीके चेहरे की ओर देख रही थी। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उसकी आंखों के आगे चक्कर-चक्कर, अंधेरा-अंधेरा-सा छा रहा था। बेगम मुजीब को लगता, जैसे वह किसी गहरे कुएं में उतरती जा रही हो। उसका दिल बैठता जा रहा था। कुछ देर के बाद उसका सिर एक ओर लुढ़क गया। वह बेहोश हो गई।

सबके हाथ-पांव फूल गए। कोई उसकी हथेलियां रगड़ने लगा तो कोई उसके मुंह पर पानी के छींटे मार रहा था। कोई डाक्टर को बुलाने दौड़ा। घर में अफ़रा-तफ़री मच गई। कुछ देर बाद जब बेगम मुजीब ने आंख खोली तो उसने देखा, उसके पलंग के पास कुर्सी पर डाक्टर गोपाल की जगह डाक्टर सलीम बैठा था। सड़क पार डाक्टर गोपाल का क्लिनिक था। हमेशा वही उनके यहां इलाज करता था। अभी तो उस दिन इनके घर से होकर गया था। लेकिन अब एक हिन्दू डाक्टर उनके लिए पराया हो गया था। तीन किलोमीटर दूर से डाक्टर सलीम को बुलाया गया था ताकि एक मुसलमान मरीज़ का एक मुसलमान डाक्टर इलाज करे!

बेगम मुजीब ने इधर-उधर नज़र घुमाकर देखा, कालू कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। कालू उनका हिन्दू नौकर था। उसकी मां इनके यहां काम किया करती थी। उसका बाप सारी उम्र इनके यहां नौकरी करता रहा। दोनों इनके घर में ही मरे थे। कालू इनके घर में बच्चों की तरह पला था। बच्चों के साथ खेलकर बड़ा हुआ था। शेख साहब ने लाख कोशिश की थी कि चार अक्षर पढ़ जाए, लेकिन कमबख्त की किस्मत में पढ़ना नहीं लिखा था। और आजकल वह ऊपर का काम करता था, जैसे उसका बाप सारी उम्र करता रहा। कालू, इधर-उधर कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। कालू तो बेगम मुजीब के साथ परछाईं की तरह रहता था। क्या मजाल जो पल के लिए आंख से ओझल हो जाए। खास तौर

थे, जब से साम्प्रदायिक दंगे शुरू हुए थे, रात को बरामदे में खाट बिछा-कर सोता। किसकी मजाल थी कि उनकी कोठी की ओर आंख उठाकर देख जाए ? कितना बड़ा ख़ूंख़्वार बुल्ली-कुत्ता उसने पाल रखा था।

और फिर ज़ेबा जल्दी-जल्दी डग भरती हुई आई। वह हांफ रही थी। अम्मी के कान में गुप-चुप कहने लगी, "कालू, घर के पिछवाड़े, तांगों में सामान रखकर जा रहा है। बुल्ली को भी साथ ले जा रहा है।" बेगम मुजीब ने सुना, और एकदम उठकर ज़ेबा के साथ बाहर निकल गई।

कमरे में इकट्ठे हुए अड़ोसी-पड़ोसी, दोस्त-रिश्तेदार बातें बनाने लगे।

"अभी तक इस औरत को अक़्ल नहीं आई है।"

"औरत की अक़्ल गुद्दी में होती है।"

"आख़िर जो हालात आजकल मुल्क के हैं, क्यों कोई हिन्दू नौकर किसी मुसलमान के यहां रह सकता है ?"

"हो न हो, इस लड़की को ख़राब करने में इस कालू का हाथ है।"

"फ़िक्र न करो। मैं दो-चार गुंडे भेजकर इसका काम तमाम करवा दूंगा।"

"इस घर की बरबादी की वजह ही इस घर के लोगों की बेहूदगियां हैं।"

"अब हिन्दू-मुसलमान का क्या रिश्ता ? हमने अपना पाकिस्तान बनवा लिया है। जैसा क़ायदे-आज़म ने फ़रमाया है, बस अब पंजाब को बंगाल से मिलाना है।"

"इसीलिए हमें और क़ुरबानियां देनी होंगी। ख़ास तौर पर हमें, जो यू० पी० में रहते हैं। हमारा काम अभी अधूरा है।"

"सैकड़ों बरस हमने इस देस पर राज़ किया है। इंशाअल्लाह ! सारे-के-सारे हिन्दुस्तान पर एक बार फिर चांद-तारे का झंडा लहराएगा।"

"मैं तो कहता हूं कि अब दूसरी लड़की को बचाओ। अपने-आप पढ़ती रहेगी। कल कोई मुसलमान लड़का ढूंढ़कर इसका निकाह पढ़वाओ।"

"जवान न मिले तो अधेड़ उम्र का चलेगा; कुंवारा न मिले तो रंडुवा चलेगा; या फिर कोई जिसने पहली छोड़ रखी हो।"

"दूसरी भी होगी तो क्या फ़र्क़ पड़ता है। अपने इस्लाम में तो चार तक जायज़ हैं। मेरा मतलब है कि लड़की को ठिकाने लगा देना चाहिए।

आजकल की लड़कियों का कुछ पता नहीं होता।"

"और फिर ऐसे घर की लड़कियों को आम तौर पर खतरा रहता है। घर में कोई मर्द जो नहीं है। घर में कोई डर नहीं, मुझे किसीका डर नहीं···"

इतने में बेगम मुजीब, वैसी-की-वैसी नंगे पांव लौट आईं। छम-छम आंसू बहा रही थी। उसके पीछे-पीछे जेबा भी सिसकियां भर रही थी। कालू ने एक नहीं सुनी थी, और मुंह-जोर होकर चला गया था। बेगम मुजीब ने ज्यादा मनाया तो बुल्ली को पीछे छोड़ गया।

## ५

जैसे मातम वाला घर हो, इस तरह शहर के लोग बेगम मुजीब के यहां आ रहे थे। जैसे एक बाढ़ आ गई हो, और इस तूफान में सीमा की चिट्ठी एक तिनके की तरह कहीं खो गई। हिन्दुस्तानी मुसलमानों में जैसे एकदम भाई-चारा बढ़ गया था। इस तरह सारे-के-सारे एकजुट हो गए थे कि बेगम मुजीब देख-देखकर हैरान होती रहती। जो कोई भी आता, घंटों अपने हिन्दू पड़ोसियों की बुराई करता रहता। लोगों ने अजीब-अजीब मनसूबे बनाए हुए थे। हर किसीकी नजर जैसे पाकिस्तान पर लगी हो। कोई जा चुके थे, कोई जा रहे थे, कोई जाने की सोच रहे थे। कोई मां-बाप इधर थे, और बच्चे उधर जा पहुंचे थे। कोई बच्चे इधर थे और मां-बाप उधर पहुंच चुके थे। बहनें उधर थीं, भाई इधर। बहनें इधर ब्याही हुई थीं, भाई उधर नौकर थे।

बेगम मुजीब सुन-सुनकर हैरान होती रहती। जो भी आता, कोई जायदाद का बंधा हुआ इधर रह गया था, कोई व्यापार में फंसा हुआ मजबूर था, किसीकी पक्की नौकरी थी। जैसे जिस्म इधर हो और रूह उधर। बेगम मुजीब सोचती, जैसे उनका शौहर सारी उम्र अपने-आपको धोखा देता रहा था; जैसे सारी उम्र अंधेरे में भटकता रहा था, जैसे रेत

की दीवारें खड़ी करता रहा हो, एक झटका लगा, और सब-की-सब ढह गईं।

फिर बेगम कश्मीर की ख़बरें पढ़ती। पाकिस्तानी कबाइलियों का मुक़ाबला, कश्मीरी मुसलमान अपने हिन्दू और सिख भाइयों के साथ मिलकर कर रहे थे। कंधे-से-कंधा मिला लुटेरों के साथ जूझ रहे थे। उधर महात्मा गांधी नवाखली और बिहार में गांव-गांव फिरकर फ़सादियों को लज्जित कर रहे थे। मुसलमान, अल्पसंख्यकों की हर तरह से सहायता की जा रही थी। उनको फिर से उनके गांवों को बसाया जा रहा था। जिनके घर जला दिए गए थे, सरकार उनके लिए नये घर बनवा रही थी। जो लुट गए थे, उनको हरजाना दिया जा रहा था। जगह-जगह अमन कमेटियां बन रही थीं। मस्जिदों की मरम्मत हो रही थी। मदरसों की मदद की जा रही थी। मुसलमान बच्चों के वजीफ़े लगाए जा रहे थे।

उस दिन सुबह यू० एन० ओ० में शेख़ अब्दुल्ला ने बयान दिया था— 'कश्मीर भारत का अटूट अंग है। कश्मीर के लोगों का भारत में शामिल हो जाने का फ़ैसला आख़िरी है। हम पाकिस्तानी हमलावरों से कश्मीर का चप्पा-चप्पा ख़ाली करवाकर सांस लेंगे।'

अहिंसा के दूत महात्मा गांधी ने कश्मीर की लड़ाई को उचित ठहराया था। यह लड़ाई न्याय के लिए लड़ी जा रही थी। झूठ और फरेब, हिंसा और ज़ुल्म से यह जंग थी। सोच-सोचकर बेगम मुजीब का सिर चक्कर खाने लगता। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था, क्या ठीक है, क्या ठीक नहीं।

टहलते-टहलते बेगम मुजीब नौकरों के क्वार्टर की ओर जा निकली। कालू के कमरे का दरवाज़ा खुला था। सामने खिड़की भी खुली थी। जाने से पहले कमरे को साफ़ करके गया था। सफ़ाई का दीवाना—हिन्दू। क्या मजाल जो काग़ज़ की एक कतरन भी कहीं नज़र आ रही हो। कहीं धूल-धब्बा नहीं। बेगम हैरान रह गई। अपने कमरे के एक कोने में कालू के भगवान की मिट्टी की मूर्ति वैसी-की-वैसी पड़ी थी। मूर्ति के पास अगर-बत्ती और दियासलाई भी पड़ी थी। इन्हें अपने साथ लेकर नहीं गया था। फिर बेगम मुजीब को ध्यान आया कि हिन्दुओं में शायद एक जगह पर

स्थापित मूर्ति को उठाया नहीं जाता।

कालू के भगवान की मूर्ति को देखकर बेगम मुजीब एकाएक भावुक हो गई। आप-ही-आप उसके कदम आगे बढ़े, और पता नहीं कब उसने दियासलाई जलाई, और अगरबत्ती को दिखाकर, मूर्ति के सामने टिका दिया। बिल्कुल उसी तरह, जैसे कालू किया करता था।

कालू के भगवान की मूर्ति के सामने सुलग रही अगरबत्ती के धुएं में बेगम मुजीब को एक पुराना दृश्य दिखाई देने लगा। इसी कमरे में कालू का जन्म हुआ था। उसके बाप ने नाचते-उछलते हुए यह खबर आकर उन्हें दी थी। और सब घरवाले नये जन्मे बच्चे को देखने आए थे। जैसे जोंक-सी हो। जन्म के समय बड़ा कमजोर था। शायद पूरे दिनों का नहीं था। लेकिन शेख साहब ने उसकी देखभाल का खास ध्यान दिया और उसे बचा लिया और फिर कैसे वह घर के बच्चों के साथ खेल-खेलकर बड़ा हुआ। सीमा जितना। हमेशा उसे छेड़ा करता—मैं तुमसे पूरे पन्द्रह दिन बड़ा हूं, तुम मुझे भाईजान कहा करो। अपने बच्चों की तरह ही तो बेगम मुजीब ने उसे पाला था। और कैसे वह इस घर पर जान देता था! क्या मजाल कि कोई तिनका भी इधर-उधर हो जाए। क्या मजाल कि कोई नौकर घर का कोई नुकसान करे। खाली कमरे में बत्ती नहीं जल सकती थी। बेकार नल नहीं बह सकता था। जब कोई बाहर निकले, पंखा बन्द करके निकले। फसाद के दिनों में वह कैसे तड़पता था! हिन्दुओं के साथ हिन्दू, और मुसलमानों के साथ मुसलमान। जहां किसीको मुसीबत में देखता, वहीं जा पहुंचता। हमेशा कहता, कालू नाम होने का यही तो फायदा है। हिन्दू समझते हैं कि मैं हिन्दू हूं और मुसलमान समझते हैं कि मैं मुसलमान हूं।

"लेकिन तुम हो कौन?" एक दिन बेगम मुजीब ने उससे पूछा।

"न मैं हिन्दू हूं, न मुसलमान," वह छूटते ही बोला, जैसे रटा-रटाया हुआ जवाब दे रहा हो। "हिन्दू मां-बाप के घर जन्मा। मुसलमान मालिक के टुकड़ों पर पला। मैं न हिन्दू हूं, न मुसलमान, मैं तो बस हूं इक इंसान।"

कालू के कमरे से लौटते हुए बेगम मुजीब को अचानक ध्यान आया कि सीमा ने लिखा था कि वह उसे एक और चिट्ठी लिखेगी। अभी तक

उसकी चिट्ठी नहीं आई थी। आजकल की अफ़रा-तफ़री में डाक का भी क्या एतवार। पता नहीं, कहां गाड़ी रोक ली जाए ! पता नहीं, किस गली में डाकिया को छुरा घोंप दिया जाए।

अभी वेगम मुजीव अपने कमरे में पहुंची ही थी कि शेख़ मुजीव का वड़ा भाई उस दिन की तरह दनदनाता हुआ उसके कमरे में आ धमका। "वीवी ! तुम्हें चुल्लू-भर पानी में डूव मरना चाहिए," वह चिल्लाया और अपने हाथ में पकड़े हुए उर्दू के एक अख़वार को घुमाकर अपनी भावज की ओर फेंका। वेगम मुजीव अपने जेठ के तमतमा रहे लाल सुर्ख चेहरे की ओर देख रही थी। अव और कौन-सी मुसीवत आई थी ! उसने न अख़वार उठाने की कोशिश की, न पढ़ने की। कोई फ़िरकापरस्त चीथड़ा था। " इस लड़की ने तो हमारी नाक काट दी। अगर तुझे एक सिख के साथ व्याह करना ही था तो कर लेती। अगर तुझे यह झक मारनी ही थी तो यह झक मार लेती। तुझे मजहव वदलने की क्या जरूरत थी ? तुझे सिख वनने की क्या मुसीवत थी ? कचहरी में जाकर सिविलमैरेज करवा लेते। कल जव उसका चाव ठंडा पड़ जाता, जव सिखों की करतूतें देख-देखकर उसका मन भर जाता, तो अपने घर लौट आती। कचहरी में अर्जी डालकर, तलाक़ ले लेती। इस लड़की ने तो वेड़ा ही डुवो दिया है।

" पहले सिख वनी। फिर वाक़ायदा आनन्द-कारज करवाया। शेख़ मुजीव अहमद की वेटी की सारी करतूत इस अख़वार में छपी है। कच्चा चिट्ठा। वाप चार वार हज कर चुका था। उमरा तो उसने कई वार किया होगा। और वेटी अपने वाप-दादा के मजहव को लात मारकर चली गई। हम तो किसीको मुंह दिखाने लायक नहीं रहे। मैं तो इस शहर में और नहीं रह सकता। किस मुंह से मैं मस्जिद में नमाज़ पढ़ने जाया करूंगा ? आज जुम्मा है, मैं जमात में खड़ा होकर सजदा नहीं कर सकता। तोवा ! तोवा !! यह कैसी ज़हरीली नागिन हमने इस घर में पाली थी ! कुछ तो उसे लिहाज होता, अपने अव्वा का ! कुछ तो उसे ध्यान होता, अपने इतने वड़े ख़ानदान का ! कुछ तो वह सोचती कि हमारे आंगन में अभी एक और वैठी है ! उस जैसी। जवान-जहान। उसे कौन मुंह लगाएगा ? अख़वार में अच्छी हमारी मिट्टी पलीद की गई है। शेख़ मुजीव

हिन्दू-मुस्लिम एकता का हामी था। सारी उम्र महात्मा गांधी का चमचा बना रहा। कांग्रेस का पिट्ठू। और अब उसकी बेटी ने सिख धर्म कबूल करके अपने अब्बा के ख्वाब को पूरा कर दिया है। सिख लड़के से ब्याह कर अपने अब्बा के मज़ार पर फूल चढ़ाए हैं! मैं तो रास्ते में वकील से मिलता आया हूं। सरकार ने नया क़ानून बनाया है। इधर हिन्दुस्तान में भी और उधर पाकिस्तान में भी। फ़साद के दौरान जिस किसीका मज़हब बदला गया है, उसे नहीं माना जाएगा। जिन किसीका ज़बरदस्ती ब्याह हुआ है, उसे मंसूख़ कर दिया जाएगा। सब मुसलमान लड़कियां जो इधर भगाई गई हैं, अपने घरों को लौटा दी जाएंगी। सब हिन्दू और सिख लड़कियां जो उस तरफ अगवा की गई हैं, अपने मां-बाप के पास भेज दी जाएंगी। मैं तो कहता हूं, बस अर्ज़ी-भर देने की देर है। पुलिस की टुकड़ी जाएगी और लड़की को बरामद करके अपने कब्ज़े में कर लेगी। मैं भी शेख़ शरीफ़ का बेटा नहीं जो चार दिनों में अपनी लड़की को निकालकर तेरे क़दमों पर न डाल दूं। वकील तो कहता है, इधर अर्ज़ी दोगे, उधर पुलिस को हुक्म मिल जाएगा। अगर किसीकी मुट्ठी गर्म करने की ज़रूरत हुई तो वह भी कर दिया जाएगा। मैं खुद पुलिसवालों के साथ अमृतसर जाऊंगा। मुझे डर है कि कहीं वह सिख का बच्चा, लड़की को इधर-उधर न छुपा दे। सुना है कि अगवा की गई लड़कियों को आंखों-ओझल कर दिया जाता है। जब पुलिस के छापे की लोग सुनते हैं, तो इस तरह की लड़कियों को बाहर खेतों में छुपा दिया जाता है। ढूंढना मुश्किल तो होगा, लेकिन कोशिश करने से क्या नहीं हो सकता!"

"भाईजान! सीमा को ढूंढने की आपको तकलीफ़ नहीं करनी होगी।" इतनी देर से अपने जेठ का लेक्चर सुन रही बेगम मुजीब आख़िर बोली, "यह उसकी चिट्ठी है, आप पढ़ लें।"

"सीमा की चिट्ठी?" शेख़ शब्बीर हैरान हो कर चिट्ठी पढ़ने लगा। जैसे-जैसे चिट्ठी पढ़ता जाता, उसके चेहरे का रंग उड़ता जा रहा था। और फिर वह दरवाज़े के पीछे, कोने में पड़े हुए सोफ़े पर जैसे ढह गया हो। चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते जैसे उसके होश उड़ गए हों।

"अम्मी! अम्मीजान!" इतने में ज़ेबा कमरे में आ घुसी, "अम्मी

जान ! अम्मीजान ! कालू के कमरे में जो मूर्ति है न, उसके सामने आप-ही-आप अगरवत्ती जलती रहती है। आज उसे गए हुए कितने दिन हो गए हैं। अगरवत्ती, आप-ही-आप हर रोज़ सुवह जल उठती है। सारे नौकर कमरे में इकट्ठा होकर यह अचरज देख रहे हैं। अव तो अड़ोसी-पड़ोसी भी आ रहे हैं···अरे ताऊ आए हैं। माफ़ करना।" अपने ताऊ को कोने में वैठे, सीमा की चिट्ठी पढ़ते हुए देखकर ज़ेवा झेंप गई।

## ६

शेख़ शव्वीर सीमा की चिट्ठी पढ़ते हुए मानो उसमें समूचा डूव गया हो। कुछ देर के वाद वेगम मुजीव ने देखा कि चिट्ठी उसके हाथ से गिर गई थी और उसका मुंह खुले-का-खुला रह गया था। फटी-फटी आंखों से वह अपनी भावज की ओर देख रहा था। उसके चेहरे पर एक अजीव-सी भयानकता उभर आई थी। "भाईजान, भाईजान ! यह आपको क्या हो रहा है !" वेगम मुजीव चिल्लाई। ज़ेवा कमरे में से जा चुकी थी।

शेख़ शव्वीर शहर का एक अमीर मुसलमान था। ढेर-सारी ज़मीन, रिहाइश के लिए पुरानी हवेली ! अड़ोस-पड़ोस में अच्छा नाम था। लाखों रुपये की आमदनी। घर में किसी चीज़ की कमी नहीं थी। शहर के मुसलमानों का वह चौधरी था। अपनी प्रतिष्ठा के लिए वह हर किसीकी मदद करता रहता था। कांग्रेस वालों के साथ कांग्रेसी, फ़िरक़ापरस्तों के साथ फ़िरक़ापरस्त। हर किसीको खुश रखता। हर किसीकी रुपये-पैसे से मदद करता। और राजनीतिज्ञ, जव तक उन्हें पैसा मिलता रहे, वह इस वात की चिन्ता नहीं करते कि देनेवाला कौन है, क्या करता है, उसका पैसा कहां से आता है। हज़ारों रुपये उसने कांग्रेस को चंदा दिया होगा और हज़ारों रुपये उसने लीग जैसी कट्टर फ़िरक़ापरस्त पार्टियों को। हर कोई उसे अच्छा-अच्छा कहता। सवकी नज़रों में वह एक रौशन-दिमाग़, सर-मायादार था। अव, जव से साम्प्रदायिक दंगे शुरू हुए थे, वह फ़सादियों

की सरपरस्ती कर रहा था, पैसे से, हथियारों से। और अगर [illegible] पड़े तो अपने किले जैसी हवेली में उन्हें [illegible] के लिए ठिकाना भी देता था।

जिन मुसलमान गुंडों ने सीना की इज्जत [illegible] के 'भुगतान' में थे। उन्हें तो वह कई महीनों [illegible] था। हर किसीको उसने देसी रिवाल्वर [illegible] को अच्छी तरह याद था कि इस घटना के [illegible] उसे सुनाया था। उन्होंने तो वह [illegible] शब्बीर ने जरूर उसे कहीं [illegible] "आज एक सिखनी की ऐसी-तैसी की है।" [illegible] बघार रहा था। कोई कहता, उसके [illegible] योजना उसकी थी। कोई कहता, [illegible] कोई कहता, अगर वह उसके [illegible] थोड़े ही थी। कोई कहता कि वह [illegible] उसकी छाती पर रखा। कोई कहता कि [illegible] उसके सोते सूख गए थे। बार-बार कह रही [illegible] बार अपने अब्बा का नाम बता रही थी, [illegible] हर कोई कहता—सिखनी थी, सिखनी। [illegible]

बेगम मुजीब, 'भाई जान! भाई जान!' कहती हुई गेट तक उसके पीछे गई। लेकिन उसने इसकी एक न सुनी। पता नहीं वह क्या बोलता जा रहा था! उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

हाथ मलती हुई वह कोठी में वापस आई। कमरे में घुसते ही उसने देखा कि ज़ेबा फर्श पर गिरी चिट्ठी को पढ़ रही थी। उसने अपनी जवान-जहान बेटी से कुछ नहीं कहा। ज़ेबा ने चिट्ठी पढ़कर अपने पास रख ली। बेगम मुजीब ने न उससे वह चिट्ठी कभी मांगी, न उसे ज़ेबा ने वह चिट्ठी कभी वापस की।

उस शाम बेगम मुजीब अपने जेठ के यहां गई। टेलीफ़ोन पर किसी-ने बताया था कि उन्हें तेज बुख़ार है। बुख़ार का प्रभाव दिमाग़ पर हो गया था। आप-से-आप वह बोलता जा रहा था। डाक्टर ने उसके सिर पर बर्फ़ की पट्टियां रखने के लिए कहा था लेकिन इसका कुछ फ़ायदा नही हुआ था।

बेगम मुजीब परेशान थी। यह बुख़ार कोई मामूली बुख़ार नहीं था। जिस हालत में, उसका जेठ सुबह उसके घर से निकला था, उसे तो कुछ भी हो सकता था।

शाम को जब बेगम मुजीब ने उसके कमरे में क़दम ही रखा तो शेख़ शब्बीर ने अपने तकिया के नीचे से सीमा का लॉकेट निकालकर उसके मुंह पर दे मारा। "तुम अपनी बेटी का लॉकेट लेने आई हो। यह लो उसका लॉकेट।" अंगारों की तरह दहकती हुई लाल-लाल आंखें, मुंह में से झाग निकल रही थी। न जाने वह क्या बके जा रहा था। उसकी बीवी, बच्चे, अड़ोस-पड़ोस वाले जो कोई भी उसकी बीमारी का सुनकर इकट्ठा हुए थे, एक-दूसरे के मुंह की ओर देख रहे थे। फिर शेख़ शब्बीर ने छल-छल आंसू रोना शुरू कर दिया। बेगम मुजीब को अपने पास बिठाकर, वह दहाड़ें मारता हुआ रो रहा था।

एक बार फिर डाक्टर को बुलाया गया। एक बार फिर उसे टीका लगाया गया। कहीं रात ढल जाने पर चैन आया और उसकी आंख लग गई।

हर कोई बेगम मुजीब से उस लॉकेट के बारे में पूछता। लॉकेट,

बेशक सीमा का था, लेकिन उसके ताऊ के पास कैसे जा पहुंचा, इस रहस्य का किसीको पता नहीं था, बेगम मुजीब को भी नहीं।

जब उसका जेठ लौट गया तो बेगम मुजीब घर लौट आई। शेख शब्बीर का घर शहर में था। बेगम मुजीब का बंगला सिविल लाइन में। घर पहुंची तो देखा कि सीमा की दूसरी चिट्ठी आई हुई थी।

'अम्मीजान ! मैं आपको इतने दिन चिट्ठी नहीं लिख पाई,' बेगम मुजीब ने अपने-आपको कमरे में बंद कर लिया और सीमा की चिट्ठी पढ़ने लगी। 'इसकी जगह कि लोग आपको मेरे बारे में कहानियां गढ़-गढ़कर सुनाएं, मैंने फ़ैसला किया है, और इसमें इन्द्र मेरे साथ सहमत है, कि अपनी शादी की सारी कहानी आपको बता दूं।

'जैसे पंजाब के हालात आजकल चल रहे हैं, शरणार्थी अभी तक आ रहे हैं, महाजर अभी तक जा रहे हैं। अभी तक लूट-खसूट हो रही है। अभी तक औरतों को अगवा किया जा रहा है। अभी तक पड़ोसी पड़ोसियों का क़त्ल कर रहे हैं। अभी तक आगजनी हो रही है। अभी तक गाड़ियां लूटी जा रही हैं। अमृतसर में, जिसे गुरु की नगरी कहते हैं, हर चौथे आदमी के हाथ मुझे खून से रंगे दिखाई देते हैं। हर शरणार्थी जो वाघा की सरहद पार करके आता है, जैसे उसका कोई-न-कोई अंग कटा हुआ हो। कोई बेटियां गवाकर आए हैं, कोई बेटे। कोई माएं जान पर खेल गई हैं, कोई बाप अपनी कुरबानी देकर अपने बच्चों को बचा लाया। जो लखपति थे, दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। बड़े-बड़े जमींदार भूखे मर रहे हैं, पैसे-पैसे को तरस रहे हैं।

'इन हालात में मेरा आपसे इजाज़त मांगना और आपका इसलिए रज़ामंद होना नामुमकिन था। और फिर मेरे पास वक़्त ही कहां था, जो आपकी रज़ामंदी का इंतज़ार करती ? मैं तो हर रोज़...।

'मुझे मालूम है कि यह जानकर कि मैंने एक ग़ैर-मुसलमान से शादी कर ली है, आपका दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया होगा। मुझे साफ़ दिखाई दे रहा है कि आपकी आंखों में से आंसुओं की धारा बह रही है। लेकिन अम्मी ! जो कुछ भी हुआ, मैं खुश हूं, बहुत खुश, शायद अल्लाह की यही मर्ज़ी थी।

' चार दिन, और मुझे पंजाबी बोली अच्छी लगने लगी है। इनका लहजा अब मुझे अजीब-अजीब नहीं लगता। मैंने शलवार-कमीज़ पहनना सीख लिया है। अब मैं पंजाबी खाना पकाना भी सीख रही हूं। लस्सी और मक्खन; पनीर और साग! हमारे यहां गोश्त बहुत कम पकता है, चावल बहुत कम खाए जाते हैं। अब मुझे इनकी कभी ज़रूरत भी महसूस नहीं होती। औरत कैसे अपने-आपको हालात के मुताबिक ढाल लेती है!

' हमारी शादी की यहां चारों ओर चर्चा है। अख़बारों में हमारी तसवीरें छपती रहती हैं। लोगों ने जैसे हमें सिर पर उठा लिया हो। इन्द्र को यहां नौकरी मिल गई है। रहने के लिए घर मिल गया है। यहां खालसा कालेज में शरणार्थी कैम्प खुला हुआ है। हम दोनों इसमें काम करते हैं। चाहे इस ओर भी बड़े जुल्म हुए हैं, लेकिन मैं तो सुन-सुनकर हैरान होती रहती हूं। और जो अत्याचार उस ओर हिन्दू-सिखों पर मुसलमानों ने ढाए हैं, दोनों ओर हमने अपना मुंह काला कर लिया है। कोई किसीको दोषी नहीं ठहरा सकता।

' कुछ भी हो, मैं खुश हूं, बहुत खुश! यह जानते हुए भी कि आप सब मुझसे छूट गए हैं, मैं इन्द्र जैसे शौहर की बीबी बनकर अपने-आपको खुश-किस्मत समझती हूं। जैसे मुझे जन्नत मिल गई हो।

' अम्मी! अब मैं उस दिन का इंतज़ार कर रही हूं, जब मैं इन्द्र के ाथ अपनी मां के घर में कदम रख सकूंगी। इन्द्र जैसे इंसान के साथ ब्याह करने के फ़ैसले में, मुझे यक़ीन है कि मेरे अब्बा की रज़ामंदी मेरे साथ है। आपकी बेटी—सीमा।'

## ७

"लेकिन सीमा को सिख बनने की क्या जरूरत पड़ी थी?" उस दिन सुबह नाश्ते के लिए अम्मी के साथ मेज़ पर बैठी हुई जेबा, बातों-बातों में तुनक गई। एक ज़हर-सा था उसके लहज़े में। उस दिन सीमा का जन्म-

दिन था और बेगम मुजीब को अपनी बिछुड़ी हुई बेटी याद आ रही थी। उसकी आवाज़ भर्रा रही थी। और वह देखकर ठिठक-सी गई कि ज़ेबा एकदम आग-बगूला हो गई थी। इतनी जोर से उसने अपने चाय के प्याले को मेज पर पटका कि प्याला टुकड़े-टुकड़े हो गया।

"सीमा की चिट्ठी पढ़कर भी तुम यह कह सकती हो?" कुछ देर बिट-बिट ज़ेबा के मुंह की ओर देखकर, बेगम मुजीब ने उसे याद दिलाया।

"उसकी चिट्ठी एक फ़रेब है, एक धोखा है।" ज़ेबा की आखों में जैसे खून उतर आया हो।

"क्या मतलब?" उसकी अम्मी तड़प उठी।

"यह सब मक्कारी है। एक कहानी गढ़ी गई है, हमारी हमदर्दी जीतने के लिए।"

"तुम यह क्या बके जा रही हो?" बेगम मुजीब को गुस्सा आ रहा था।

"अगर हालात आम दिनों जैसे होते, तो मैं आपको दिखा देती कि यह सरासर कुफ़्र है। सीमा हमें उल्लू बना रही है।"

"हालात आम दिनों जैसे होते तो जो कुछ उस मासूम-जान पर बीती, यह ज़ुल्म होना ही क्यों?" बेगम मुजीब की आखें सजल हो रही थीं।

"हालात के ज़िम्मेदार हिन्दुस्तानी हिन्दू हैं।"

"कोई भी हो, बुरी बात बुरी है।"

"कुछ भी हो, सीमा की कहानी कोरा झूठ है। जैसे किसी घटिया नावल का कोई किस्सा हो।"

बेगम मुजीब, घोर उपेक्षा से ज़ेबा की ओर देख रही थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह सीमा के लॉकेट के बारे में उसे कैसे बताए, जो उसका ताऊ कहीं से ढूंढ लाया था।

लेकिन लॉकेट शेख शब्बीर के हाथ कैसे लगा? बेगम मुजीब कुछ समझ नहीं पा रही थी। कई दिनों से वह यह सोच-सोचकर परेशान हो रही थी। उधर उसके जेठ की तबीयत अभी तक खराब थी। उसे भी

ज्यादा नहीं कुरेदा जा सकता था।

अभी उन्होंने नाश्ता किया ही था कि डाक आ गई। डाक में सीमा की चिट्ठी थी। कालू सीमा के पास पहुंच गया था। सीमा वहुत खुश थी। 'ऐसे लगता है, जैसे वो ही पुराना घर हो!' उसने लिखा था।

ज़ेवा ने जैसे ही सुना, वह और ग़ुस्से में आ गई। क्रोध में उसके मुंह से झाग वहने लगी। उसके होंठ कांप रहे थे। वह समझ नहीं पा रही थी कि वह अपने ग़ुस्से पर कैसे क़ावू पाए! वेगम मुजीव के मुंह का जायका भी कड़वा-कसैला हो रहा था। यह हो क्या रहा था? उसके घर में ही हिन्दुस्तान और पाकिस्तान वन गया था। उसके परिवार को दो भागों में वांटा जा रहा था। आख़िर कालू उनके घर का ही तो आदमी था। उन्होंने तो उसे कभी नौकर की तरह नहीं जाना था। क्योंकि देश का वंटवारा हो गया था, कालू भी अपनी सारी पुरानी मुहव्वत, सारी वफ़ा को भूलकर अपने 'भारत' में जा वैठा था।

"यह सव साजिश है सीमा आपा की! वही उसे समझाकर गई होगी। वही उसके कान भरकर गई होगी। नहीं तो कालू को इतनी अक़्ल कहां? कैसे अपने क्वार्टर को वुहार गया है! अपना भगवान भी पीछे छोड़ गया।" ज़ेवा आप-से-आप वोलती जा रही थी, "खुद ही चुपके से जाकर तांगा ले आया। खुद ही सामान लादा और किसीको वताए विना स्टेशन चला गया। क्या हममें से किसीका उसे लिहाज नहीं था? क्या हममें से किसीके लिए उसे हमदर्दी नहीं थी? आंख की शर्म भी तो कोई चीज़ होती है। मैं वार-वार मिन्नतें करती रही, आपने उसे समझाया; लेकिन उसने परों पर पानी नहीं पड़ने दिया। अगर उसे अपने ठिकाने का पता न होता तो क्या वह घर छोड़कर जा सकता था? आख़िर उसे हुआ भी क्या था? उसे किसीने क्या कहा था? किसीने बुरा-भला नहीं कहा। आख़िर उसका हमें यूं छोड़कर चल देना, इसका मतलव क्या है?"

अपनी वेटी की नाराज़गी देखकर, वेगम मुजीव सोच में पड़ गई। क्या पता जो ज़ेवा कह रही थी, वह ठीक ही हो। मेरठ से दिल्ली जा रही, खचाखच भरी गाड़ी में यूं किसी लड़की की इस्मत लूटना कोई मानने

वाली बात नहीं लगती थी। बेशक उन दिनों हालात असाधारण थे। लेकिन यूं किसीकी इज्जत पर डाका डालना, एक फ़िल्मी कहानी-सा लगता था। और फिर कालू का बिना कहे-सुने चल देना; बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। कालू तो सारी उम्र उसके इशारे पर चलता रहा था। क्या मजाल जो कभी सामने से जवाब दिया हो। लेकिन उस दिन तो वह नजर से नजर नहीं मिला रहा था। 'बेगम साहब, यही समझो कि कालू मर गया है,' बार-बार यह कह रहा था।

लेकिन कालू को कैसे भुलाया जाए ? अपनी संतान को बेगम मुजीब भूल सकती थी, लेकिन कालू को भूलना मुश्किल था। जब से वह गया था, कई समस्याएं बेगम मुजीब के लिए खड़ी हो गई थीं। नौकर का नौकर और बेटे का बेटा। जब कालू इस घर में था, तो उसने कभी महसूस नहीं किया था कि वह अकेली है। अबला औरत ! घर का राशन, कपड़ा-लत्ता उसके साथ जाकर ख़रीद लाता। दुकानों का किराया इकट्ठा करता। जायदाद का कोई-न-कोई मुकदमा लगा ही रहता था। कचहरियों की हाज़िरी भरना भी उसके ज़िम्मे था। फिर घर की सफ़ाई, बाग़-बगीचे की देख-भाल और सारा छिट-पुट काम उसने संभाला हुआ था। क्या मजाल जो एक सुई भी इधर-से-उधर हो जाए।

अब, जब से वह गया था, गली के बच्चे, बगीचे के अमरूद तोड़-तोड़कर खाते रहते थे। दिन में सड़क पर घूमते ढोर बगले के लॉन की घास को मुंह मारने लगते। ग्वाले ने दूध में पानी मिलाना शुरू कर दिया था। उसे बुरा-भला कहने वाला कोई न था। माली गायब रहने लगा था। जमादार इधर कोठी में दाखिल होता, उधर निकल जाता। न ढंग से झाड़ू देता, न फ़र्श रगड़ता। वही खानसामा था, लेकिन अब उसके पकाए खाने में स्वाद नहीं रहा था। जब कालू था, तो मेज़ पर खाना वक्त पर आ जाता था। खाना परोसने से पहले किस सलीके से वह उसे सजाता था !

उधर ज़ेबा थी, जैसे सीमा से उसे ख़ुदा-वास्ते का वैर हो। घर में कोई उसका नाम नहीं ले सकता था। हर वक्त उसकी बुराइयां करती रहती। उसे शिकायत थी कि सीमा ने अपने सोने के कमरे में जो कैलेण्डर

टांगा हुआ था, उसमें कृष्ण बंसी बजा रहा था। उसके शृंगार-मेज की दराज में कई तरह की बिंदिया निकली थीं। कालेज में जरूर माथे पर बिन्दी लगाती होगी। आम तौर पर उसकी दोस्ती हिन्दू लड़कियों से होती थी, कमला और विमला, मोहिनी और कल्याणी, सुन्दरी और सरोज; किस-किसका नाम कोई गिनवाए? पिछले रमजान उसने एक भी रोजा नहीं रखा था। ईद वाले दिन ईदी इकट्ठी करके अपनी हिन्दू सहेलियों के साथ सिनेमा देखने सबसे पहले चल दी थी। उसकी अलमारी में से ढेर सारी हिन्दी की किताबें निकली थीं।

जेबा ने धीरे-धीरे, सीमा की ओर से अपनी मां का दिल बिलकुल खट्टा कर दिया। उसकी चिट्ठियां आतीं, पर वह जवाब न देती। फिर उसकी चिट्ठियां आनी बंद हो गईं। जैसे-जैसे कालू के चले जाने से समस्याएं पैदा होतीं, वह भी उसके मन से उतरता जा रहा था।

उधर अपने जेठ का, शहर में उसे बड़ा सहारा था। उसकी तबीयत दिन-पर-दिन गिरती जा रही थी। शेख शब्बीर को आगरे के मानसिक रोगों के अस्पताल में भी दिखा लाए थे। कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा था। कभी मुसलमानों को बुरा-भला कहने लगता, कभी हिन्दुओं को। कभी पाकिस्तान को सलावतें सुनाने लगता, कभी हिन्दुस्तान को। बेगम मुजीब ने आजमाकर देखा था कि जब भी वह उसे मिलने के लिए जाती, उसकी हालत और बिगड़ जाती थी। और बुरी तरह से इधर-उधर की हांकने लगता था। न सिर, न पैर। अब इनके यहां वह कभी नहीं आता था। पहले जब आता था, तो दस काम संवारकर जाता था। हर बात में बेगम मुजीब उससे सलाह लेती, फिर कोई काम करती थी। अब कोई नहीं था जो उसको घर के बारे में मशवरा दे।

लंदन में रहने वाला उसका बेटा टस-से-मस नहीं हुआ था। उसकी बहन ने किसी इधर-उधर के आदमी से ब्याह कर लिया था, यह उसकी राय में एक जाती मामला था। अगर उसने ग़लती की थी, तो खुद भुगतेगी। अगर उसने ठीक किया है तो सुखी रहेगी। हर कोई अपने दुःख-सुख का आप जिम्मेदार होता है। बेगम मुजीब ने परेशान होकर उसे इतनी लंबी चिट्ठी लिखी थी, उसका दो सतरों का जवाब आया, जैसे

कुछ हुआ ही न हो।

अपने पाकिस्तानी रिश्तेदारों ने बस इतना ही लिखा था, कि अब छोटी को तो किसी तरह बचाकर ले आओ, नहीं तो यह भी किसी हिन्दू के साथ फेरे ले लेगी।

ज़ेबा को, ज़ुबैर चाचा की यह चिट्ठी पढ़कर, चारों तरफ़ आग लग गई थी। इससे तो ज़ाहिद भाईजान कहीं अच्छे थे। बड़े प्यार से उन्होंने लिखा था कि जब ज़ेबा मैट्रिक पास कर ले तो आगे पढ़ाई के लिए उसे लंदन भेज देना।

बेगम मुजीब को हैरानी इस्मत की ओर से हो रही थी। पाकिस्तान बनने से पहले तो वह इस उधर से जाने के लिए इतनी बेचैन थी, मगर, अब इतना बड़ा तूफ़ान इसके सिर से गुज़र गया था, बस एक-आध चिट्ठी लिखकर ख़ामोश हो गई थी, जैसे भारतीय भावना के साथ उसका कोई रिश्ता ही न हो। शायद इसलिए कि उसके घरवाला फ़ौज का अफ़सर था, और पाकिस्तान की हिन्दुस्तान के साथ खटपट जारी थी।

बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करे, क्या न करे! कहां जाए, कहां न जाए!

वक़्त, जबकि मुसलमान क़ौम ने लाख क़ुरबानियां देकर पाकिस्तान बनवाया था। उसका एक सिख से ब्याह करना, पूरे पाकिस्तान के मुंह पर चपत लगाने के बराबर था। क़ायदे-आज़म का फ़रमान था कि पाकिस्तान में कोई सिख नज़र नहीं आना चाहिए।

इस्मत ने अपनी भावज को लिखा कि उसके मियां कर्नल इरफ़ान ने, मोटर में अपनी एक दोस्त को अमृतसर भेजा था। वह सीमा से मिला भी था। उसने बहुत कोशिश की कि सीमा किसी तरह उसके साथ लाहौर चली जाए। इस्मत ने अपनी चिट्ठी में बार-बार लिखा था कि वह लाहौर में, अपने चाचा-चाची, फूफा-फूफी और बाक़ी रिश्तेदारों से मिल जाए। लेकिन उसने एक ही ज़िद पकड़ी हुई थी—'मैं लाहौर तब आऊंगी जब मेरे साथ 'इन्द्र' भी आ सकेगा।'

इस्मत के मियां ने उधर अपने तौर पर पूछताछ की थी। उसकी इत्तिला थी कि इन्द्रमोहन का बाप कट्टर अकाली था। मुसलमान मुजाहिदों ने उनकी सारी जायदाद जलाकर ख़ाक कर दी थी। उनके घर की ईंट-से-ईंट बजा दी थी। उसके माता-पिता मारे गए थे। उसके बाक़ी परिवार का, किसीको कुछ पता नहीं था। लोग कहते, उसकी एक बहन थी—पाकिस्तान में किसीके साथ उसकी आशनाई थी। वह पाकिस्तान में ही अपने मनपसंद लड़के के यहां टिक गई। उसकी किसी और को ख़बर नहीं थी। इन्द्र बच गया, क्योंकि वह दिल्ली में पढ़ रहा था।

इस्मत को यही अफ़सोस था कि सीमा लाहौर जाने को राज़ी नहीं हुई। 'एक बार वह मेरे यहां आ जाती, तो फिर मैं उसे यहां से जाने ही न देती। किसी-न-किसीके साथ उसका निकाह पढ़वा देती।' इस्मत ने लिखा था, 'ख़ैर, मेरी कोशिश अभी जारी है। हम लड़की को निकलवाकर ही सांस लेंगे। इरफ़ान ने क़सम खाई है कि वह सीमा को एक सिख के घर नहीं बसने देगी, चाहे जो कुछ हो जाए।'

कुछ दिनों के बाद इस्मत की फिर चिट्ठी आई। बड़ी खुश-खुश लग रही थी। कह रही थी—अब कुछ दिनों की बात है। फिर सीमा हमारे यहां आ जाएगी। पाकिस्तान और भारत में समझौता हुआ था। अगवा

की गई हिन्दू-सिख लड़कियों को उधर से निकालकर इधर भेजा जा रहा था। जिन मुसलमान लड़कियों के साथ इस ओर जबरदस्ती ब्याह करवा लिए गए थे, उन्हें बरामद करके, पाकिस्तान भेजा जा रहा था। और कर्नल इरफ़ान ने मिल-मिलाकर सीमा का नाम अगवा की गई औरतों को बरामद करने वाले विभाग को पहुंचा दिया था। उन्होंने वायदा किया था कि वह सीमा के घर छापा मारकर उसे निकलवा लाएंगे। उस विभाग के लोग पूर्वी पंजाब में, किसी शहर, किसी गांव में जा सकते थे। अपने साथ स्थानीय पुलिस को लेकर, जिन घर में कोई मुसलमान लड़की होती, उसका घेरा डाल देते और फिर भारतीय पुलिस की मदद से लड़की को अपने कब्ज़े में कर लेते। 'अब किसी भी दिन सीमा यहां लाहौर आ जाएगी।' इस्मत ने लिखा था, 'आप मेरी अगली चिट्ठी का इन्तज़ार करें। कुछ दिनों में मैं आपको खुशखबरी दूंगी।'

लेकिन कई दिन बीत गए, इस्मत की कोई चिट्ठी नहीं आई। बेगम मुजीब की बुरी हालत थी। उसको समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वह सब कुछ जो इस्मत कर रही थी, उसे करना चाहिए था या कि नहीं? कभी यह सोचकर वह खिल-सी जाती कि उसकी बेटी सीमा अपनी फूफी इस्मत के पास पहुंच जाएगी। कभी यह सोचकर कि वह पाकिस्तानी बन जाएगी, उसका दिल डूबने लगता। पाकिस्तान को अपना सकना, उनके लिए अभी तक संभव नहीं था। उसका घरवाला हमेशा पाकिस्तान के विरुद्ध बोलता रहा, हमेशा उसने अन-बंटे भारत का साथ दिया था। बेगम मुजीब सोचती कि वह अब कैसे पाकिस्तान को क़बूल कर ले? लेकिन फिर यह सोचकर कि उसकी बेटी ने एक ग़ैर-मुसलमान के साथ उसकी रज़ामंदी के बिना ब्याह कर लिया था। उसका मन डावांडोल हो जाता। उसके क़दम डगमगाने लगते। उसकी पलकें मुंद जातीं। न इधर की, न उधर की। अपने-आपको परिस्थितियों के हवाले कर देती। जैसे कोई बिना पेंदे का लोटा हो। जैसे एक खोखली शहतीर समुद्र की लहरों में हिचकोले खा रही हो। कभी इधर, कभी उधर। जिधर रेला ले जाता, उधर ही वह जाती।

कितने दिन हो गए, इस्मत की लाहौर से कोई चिट्ठी नहीं आई थी।

कोई पता नहीं चला कि सीमा का क्या हुआ था। बेगम मुजीब को डर खाए जा रहा था। सीमा साधारण लड़कियों जैसी नहीं थी। वह तो अपने इरादे की बड़ी पक्की थी। एक बार जिसका हाथ थाम ले, अपने अब्बा की तरह उसे कभी छोड़ने वाली नहीं थी। उसे ख़तरा था कि सीमा कोई ख़राबी न कर बैठे।

बेगम मुजीब से ज़्यादा ज़ेबा परेशान थी। हर रोज़ बेताबी से इस्मत फूफी की चिट्ठी का इंतज़ार करती। स्कूल से लौटते ही, पहली बात मां से पूछती—लाहौर से कोई चिट्ठी आई?

चिट्ठी तो कोई नहीं आई थी। जैसे-जैसे दिन गुज़र रहे थे, बेगम मुजीब की परेशानी बढ़ रही थी। ज़ेबा बेचैन थी। उधर कश्मीर में लड़ाई जारी थी।

"आख़िर कश्मीर पर हिन्दुस्तान का क्या हक़ है?" एक दिन बैठे-बैठे ज़ेबा के मुंह से यह बात निकली। अभी-अभी वह अख़बार पढ़ रही थी।

"क्या मतलब?" बेगम मुजीब ने आग बबूला होकर अपनी बेटी के मुंह पर चपत दे मारी। पांचों की पांचों उंगलियां उसके गाल पर खुभ गईं।

"इसमें क्या शक है? भारत की यह सीनाज़ोरी है।" ज़ेबा जैसे चिढ़कर बकने लगी। "हिन्दुस्तानी हिन्दुओं का कश्मीर को अपने साथ मिला लेना एक धोखा है। जब यह फ़ैसला हुआ कि मुसलमान बहु-गिनती वाले इलाके पाकिस्तान में शामिल किए जाएंगे, तो कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल होने से रोकना, फ़रेब है, कुफ्र है—पाकिस्तान के साथ।"

"कश्मीर के महाराजा ने, हिन्दुस्तान में शामिल होने का ऐलान किया है।" बेगम मुजीब बेटी को समझा रही थी।

"क्या इस तरह का फ़ैसला करने का अधिकार हैदराबाद के निज़ाम को दिया जाएगा? क्या जूनागढ़ का फ़ैसला हिन्दू नेता मानने के लिए तैयार हैं?" ज़ेबा हमेशा की तरह ज़हर उगल रही थी।

"कश्मीर का फ़ैसला शेख़ अब्दुल्ला ने किया है। उसके दल ने किया है।"

"शेख़ अब्दुल्ला नेहरू के हाथों में एक कठपुतली है। जो कुछ नेहरू कहता है, वही वह बोलता है।" ज़ेबा वहन जारी रखे हुए थी।

"मैं पूछती हूं, तुझे यह अजीब-अजीब बातें कौन सिखाता रहता है? शेख़ मुजीब की बेटी होकर तुम तो यूं सोचने लगी हो, जैसे किसी मुस्लिम लीगी के घर में कोई जन्मा-पला हो।"

"मैं मुसलमान हूं, अम्मी!" ज़ेबा बड़े अहकार से ऐलान कर रही थी। "अपने अधिकारों के लिए हम मुसलमान नौजवान लड़के-लड़कियां जान की बाज़ी लड़ा देंगे।"

बेगम मुजीब ने अपनी बेटी की ओर एक नज़र देखा और फिर अपनी आखें फेर ली। यह तो और-की-और ज़बान बोल रही थी। यह तो और-की-और तरह सोच रही थी। बेगम मुजीब को लगा, जैसे ज़ेबा उनसे बहुत दूर निकल गई थी, उससे, अपने अब्बा से। वह तो अपनी एक बेटी के लिए रो रही थी, सीमा का ग़म उसे खाए जा रहा था, इधर दूसरी भी उसे छोड़कर कही-की-कही जा पहुंची थी। मा-बेटी में कोई बात मेल नही खाती थी। सीमा ने इस्लाम को छोड़ा था, ज़ेबा अपने देश से बेवफ़ाई कर रही थी। अपने बाप के आदर्शों से मुह फेर रही थी।

उस शाम के बाद मा-बेटी में जैसे एक खाई-सी पैदा हो गई। वे एक-दूसरे से दूर-दूर रहने लगी। बिना मतलब के कोई बात नही। और फिर यह खाई दिन-पर-दिन बढ़ने लगी। एक छत के नीचे रहते हुए, एक मेज़ पर खाते हुए, उनमें मा-बेटी जैसी कोई बात बाकी नही रही थी।

इस्मत की ओर से कोई खबर नहीं आई थी। एक दिन बैठे-बैठे ज़ेबा फिर उत्तेजित हो उठी।

"मैं कहती हूं, सीमा आपा को कोई और झूठ सूझा होता, कि मेरे पेट में मुसलमान फसादियों का बीज था और एक सिख ने मेरे साथ ब्याह करने का फ़ैसला कर लिया, यह कोई मानने वाली बात है?"

"ज़ेबा! ज़ेबा!! ख़ुदा के वास्ते मुझे और न सताओ," बेगम मुजीब उसे हाथ जोड रही थी।

"चलो, यह भी मान लिया कि उसके पेट में पराया बीज था।" ज़ेबा बदतमीज़ी पर तुली हुई थी, "क्या आजकल के ज़माने में उसे निकलवाया

कोई पता नहीं चला कि सीमा का क्या हुआ था। वेगम मुजीव को डर खाए जा रहा था। सीमा साधारण लड़कियों जैसी नहीं थी। वह तो अपने इरादे की वड़ी पक्की थी। एक वार जिसका हाथ थाम ले, अपने अव्वा की तरह उसे कभी छोड़ने वाली नहीं थी। उसे ख़तरा था कि सीमा कोई ख़रावी न कर वैठे।

वेगम मुजीव से ज्यादा ज़ेवा परेशान थी। हर रोज वेतावी से इस्मत फूफी की चिट्ठी का इंतजार करती। स्कूल से लौटते ही, पहली वात मां से पूछती—लाहौर से कोई चिट्ठी आई ?

चिट्ठी तो कोई नहीं आई थी। जैसे-जैसे दिन गुज़र रहे थे, वेगम मुजीव की परेशानी वढ़ रही थी। ज़ेवा वेचैन थी। उधर कश्मीर में लड़ाई जारी थी।

"आख़िर कश्मीर पर हिन्दुस्तान का क्या हक़ है?" एक दिन वैठे-वैठे ज़ेवा के मुंह से यह वात निकली। अभी-अभी वह अख़वार पढ़ रही थी।

"क्या मतलव ?" वेगम मुजीव ने आग ववूला होकर अपनी वेटी के मुंह पर चपत दे मारी। पांचों की पांचों उंगलियां उसके गाल पर खुभ गईं।

"इसमें क्या शक है ? भारत की यह सीनाज़ोरी है।" ज़ेवा जैसे चिढ़कर वकने लगी। "हिन्दुस्तानी हिन्दुओं का कश्मीर को अपने साथ मिला लेना एक धोखा है। जव यह फ़ैसला हुआ कि मुसलमान वहु-गिनती वाले इलाके पाकिस्तान में शामिल किए जाएंगे, तो कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल होने से रोकना, फ़रेव है, कुफ्र है—पाकिस्तान के साथ।"

"कश्मीर के महाराजा ने, हिन्दुस्तान में शामिल होने का ऐलान किया है।" वेगम मुजीव वेटी को समझा रही थी।

"क्या इस तरह का फ़ैसला करने का अधिकार हैदरावाद के निज़ाम को दिया जाएगा ? क्या जूनागढ़ का फ़ैसला हिन्दू नेता मानने के लिए तैयार हैं?" ज़ेवा हमेशा की तरह जहर उगल रही थी।

"कश्मीर का फ़ैसला शेख़ अव्दुल्ला ने किया है। उसके दल ने किया है।"

"शेख़ अब्दुल्ला नेहरू के हाथों में एक कठपुतली है। जो कुछ नेहरू कहता है, वही वह बोलता है।" ज़ेबा बहस जारी रखे हुए थी।

"मैं पूछती हूं, तुम्हें यह अजीब-अजीब बातें कौन सिखाता रहता है? शेख़ मुजीब की बेटी होकर तुम तो यूं सोचने लगी हो, जैसे किसी मुस्लिम लीगी के घर में कोई जन्मा-पला हो।"

"मैं मुसलमान हूं, अम्मी!" ज़ेबा बड़े अहंकार से ऐलान कर रही थी। "अपने अधिकारों के लिए हम मुसलमान नौजवान लड़के-लड़कियां जान की बाज़ी लड़ा देंगे।"

बेगम मुजीब ने अपनी बेटी की ओर एक नज़र देखा और फिर अपनी आंखें फेर लीं। यह तो और-की-और ज़बान बोल रही थी। यह तो और-की-और तरह सोच रही थी। बेगम मुजीब को लगा, जैसे ज़ेबा उससे बहुत दूर निकल गई थी, उससे, अपने अब्बा से। वह तो अपनी एक बेटी के लिए रो रही थी, सीमा का ग़म उसे खाए जा रहा था, इधर दूसरी भी उसे छोड़कर कहीं-की-कहीं जा पहुंची थी। मां-बेटी में कोई बात मेल नहीं खाती थी। सीमा ने इस्लाम को छोड़ा था, ज़ेबा अपने देश से बेवफ़ाई कर रही थी। अपने बाप के आदर्शों से मुंह फेर रही थी।

उस शाम के बाद मां-बेटी में जैसे एक खाई-सी पैदा हो गई। वे एक-दूसरे से दूर-दूर रहने लगीं। बिना मतलब के कोई बात नहीं। और फिर यह खाई दिन-पर-दिन बढ़ने लगी। एक छत के नीचे रहते हुए, एक मेज़ पर खाते हुए, उनमें मां-बेटी जैसी कोई बात बाकी नहीं रही थी।

इस्मत की ओर से कोई ख़बर नहीं आई थी। एक दिन बैठे-बैठे ज़ेबा फिर उत्तेजित हो उठी।

"मैं कहती हूं, सीमा आपा को कोई और झूठ सूझा होता, कि मेरे पेट में मुसलमान फ़सादियों का बीज था और एक सिख ने मेरे साथ ब्याह करने का फ़ैसला कर लिया, यह कोई मानने वाली बात है?"

"ज़ेबा! ज़ेबा!! ख़ुदा के वास्ते मुझे और न सताओ," बेगम मुजीब उसे हाथ जोड़ रही थी।

"चलो, यह भी मान लिया कि उसके पेट में पराया बीज था।" ज़ेबा बदतमीज़ी पर तुली हुई थी, "क्या आजकल के ज़माने में उसे निकलवाया

हीं जा सकता था?"

"ज़ेवा, शर्म करो! तुम अपनी मां के सामने बैठी हो।" बेगम मुजीब उसे चुप करने के लिए कह रही थी।

"इसमें शर्म की क्या बात है? मेरी एक सहेली इस तरह की कोई ग़लती कर बैठी, परसों गली-मुहल्ले की दाई ने उसे फ़ारिग कर दिया। लड़की ने बस सौ रुपये का नोट उसकी हथेली पर रखा।"

बेगम मुजीब ने परेशान होकर अपने कानों में उंगलियां दे लीं।

"अगर यह भी मान लिया जाए कि उसके सिख दोस्त ने एक मुसीबतज़दा लड़की के साथ हमदर्दी दिखाकर शादी कर ली, तो शादी के बाद पराया हमल गिरवा सकते थे। कोई चाहेगा कि किसीके आंगन में गुंडे का बच्चा खेले? कोई सिख चाहेगा कि वह किसी मुसलमान फ़सादी की औलाद को अपनाए? और फिर आजकल के ज़माने में!"

बेगम मुजीब ने उठकर ज़ेवा के मुंह पर हाथ रख लिया और फिर रो-रोकर फ़रियाद करने लगी, "तुम यूं मुझे परेशान मत करो। अल्लाह ने पहले ही कोई क़सर नहीं छोड़ी है। अगर तुम मुझे मार डालना चाहती हो तो एक बार में ख़त्म कर दो।" और फिर बेगम मुजीब ने चादर उठाई, और अपने ख़ानदानी क़ब्रिस्तान की ओर चल दी।

"उस दिन एक बेटी का रोना लेकर आई थी, आज दूसरी का लेकर हाज़िर हुई हूं।" बेगम मुजीब अपने शौहर की क़ब्र पर गिरकर फ़रियाद कर रही थी।

## ९

ज़ेवा में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन आ रहा था। उसने नमाज़ पढ़ शुरू कर दी थी। बेगम मुजीब को यह अच्छा-अच्छा लगता था। शहर मुसलमानों के एक मुहल्ले में, उसने अनपढ़ औरतों को पढ़ाना शुरू कर दि था। हर रोज़, स्कूल से लौटते हुए उधर चली जाती। बेगम मुजीब को

अच्छा-अच्छा लगता था। उसके सहपाठी नवयुवक उनके यहां आए रहते। मीटिंगें करते रहते। मुसलमान शहरियों को भलाई का सोचते रहते। बेगम मुजीब को यह अच्छा लगता था।

"और तो सब कुछ ठीक है," एक दिन बेगम मुजीब ज़ेबा के एक साथी लड़के महमूद को समझा रही थी, "लेकिन तुम लोग अपने साथ हिन्दू लड़के-लड़कियों को क्यों नहीं मिलाते ?"

"हिन्दू हमें हिन्दी पढ़ने के लिए कहेंगे। हमें तो अनपढ़ मुसलमानों को उर्दू पढ़ाना है, जिसका कोई माकूल इंतज़ाम नहीं है," महमूद कहने लगा। लड़का खूबसूरत था, खाते-पीते परिवार का। जो बात वह कह रहा था, उसमें बेशक वज़न था। जब से सूबे की सरकारी भाषा हिन्दी बनी थी, उर्दू की ओर सरकार ध्यान नहीं दे रही थी। बेगम मुजीब ने सुन रखा था कि स्कूलों में मुसलमान बच्चों को भी हिन्दी पढ़ाई जा रही थी। जहां कोई उर्दू का उस्ताद रिटायर होता, उसकी जगह नहीं भरी जाती थी। नये स्कूल सिर्फ़ हिन्दी पढ़ाने के लिए खोले जा रहे थे। उर्दू में किताबें नहीं छप रही थी। उर्दू की पत्रिकाएं बंद हो रही थीं। उर्दू के अख़बार इक्का-दुक्का ही दिखाई देते थे। अगर कोई थे तो उनपर भी हिन्दुओं का कब्ज़ा था। 'मिलाप' क्या और 'प्रताप' क्या, 'हिन्दू समाचार' क्या और 'तेज' क्या ?

"और अम्मीजान ! हम तो मुसलमानों की नौकरियों के लिए कोशिश कर रहे हैं," महमूद कैसे प्यारी तरह बेगम मुजीब को समझा रहा था. "इसमें हिन्दू लड़के-लड़कियां हमारी क्या मदद करेंगे ? वे तो पुलिस, फौज, सिविल महकमों और सरकारी कारखानों में, मुसलमानों को उनकी आबादी के हिसाब से नौकरियां दिलवाना चाहते थे। जो सरकारी मुलाज़िम पाकिस्तान चले गए थे, उनकी जगह, यहां मुसलमानों को ही नौकरियां दिलाना ज़रूरी था।"

बेगम मुजीब को लगता कि जो बात महमूद कह रहा था, उसमें किसी हद तक सच्चाई थी।

"और अम्मीजान ! सबसे बड़ी ज़रूरत यह है कि मुसलमानों को व्यापार और इंडस्ट्री में पूरे-पूरे मौके दिए जाएं। उन्हें सरकार की तरफ

से आसान शर्तों पर क़र्ज़ दिए जाएं। नये कारख़ानों और मिलों के लिए उन्हें लाइसेंस दिए जाएं। नहीं तो हिन्दुस्तानी मुसलमान हिन्दू का गुलाम होकर रह जाएगा। हमेशा उसके रहम पर पड़ा रहेगा। दो वक़्त की रोटी के लिए भी उसे उसके मुंह की तरफ़ देखना पड़ेगा।"

बेगम मुजीव सोचती कि जो महमूद कह रहा था, वह बिल्कुल सच था। यह सब कुछ देश के हक़ में है।

"हिन्दुस्तानी मुसलमानों को हिन्दुस्तान में जीना और मरना है। यह ज़रूरी है कि वे मुंह उठाकर पाकिस्तान की तरफ़ देखना बंद करें।"

"आप ठीक फ़रमा रही हैं अम्मीजान! लेकिन जब तक हमें हमारे अधिकार नहीं मिलते, हमारी नज़र पाकिस्तान की ओर जाएगी ही। पाकिस्तान को देखकर हमारा हौसला बढ़ता है। पाकिस्तान दुनिया के दूसरे मुल्कों की तरह एक मुल्क नहीं है। पाकिस्तान, मुसलमान क़ौम के सपनों की ताबीर है। कुछ दिन बीतने दें, पाकिस्तान एक ज़ियारत-गाह बन जाएगा—एक चश्मा, जिसके आबे-हयात से दुनिया-भर के मुसलमान अपनी आक़बत संवारेंगे। क़ायदे-आज़म जैसा लीडर किसी क़ौम को कहीं सदियों में नसीब होता है। पाकिस्तान की तरफ़ तो हमें देखना ही होगा।"

"तो क्या तुम्हारी अपने देश के लिए कोई ज़िम्मेदारी नहीं?" बेगम मुजीब ने हैरान होकर पूछा।

"अपना देश!" महमूद एक ज़हर-बुझी हंसी हंसा। "अम्मीजान! हिन्दुस्तान को दो क़ौमों की थियूरी पर बांटा गया है—हिन्दू और मुसलमान! जब तक हिन्दुस्तान में बाक़ी बचे मुसलमानों को यहां के हिन्दू इज़्ज़त और आबरू के साथ जीने नहीं देते, हम यहां रहेंगे या नहीं, इस बात का फ़ैसला नहीं हो सकता।"

बेगम मुजीब फटी-फटी आंखों से उसके मुंह की ओर देख रही थी।

"भारतीय मुसलमान अंग्रेज़ों की गुलामी की बेड़ियां उतारकर हिन्दू की गुलामी मोल लेने के लिए तैयार नहीं। हमें ज़रूरत पड़ी तो हम इसके लिए लड़ेंगे। हमें ज़रूरत पड़ी तो हम इसके लिए कुरबानियां देंगे। अपने-आपको हम इसके लिए तैयार कर रहे हैं।"

"भारत के सारे मुसलमान आज एक-मठ हैं।" महमूद की आवाज ऊंची हो रही थी।

"तो बेटा, तेरा मतलब यह है कि ज़ेबा का अब्बा सारी उम्र अपने-आपको धोखा देता रहा?"

"हां; हिन्दू के फ़रेब का शिकार। महात्मा गांधी जैसा कट्टर हिन्दू, इस देश में कोई पैदा नहीं हुआ। महात्मा गांधी जैसा घुटा हुआ सियासतदान कौन होगा? वह तो कभी पाकिस्तान न बनने देता अगर सरदार पटेल और नेहरू ने उसे मजबूर न किया होता। हिन्दुस्तानी मुसलमानों की सब मुसीबतें उसीकी पैदा की हुई हैं। कहीं किसी आजाद, कहीं किसी किदवई, कहीं किसी जाकिर हुसैन को अपने पीछे लगाए रखता है। उसका इरादा यह है कि भारत के मुसलमानों को बांध के रख दो। इनसे इनकी ज़बान छीन लो, नौकरियों में इनके साथ भेद-भाव करो। कामधन्धे, व्यापार में तो ये पहले ही मार खाए हुए हैं। वक़्त के साथ आप-ही-आप हिन्दू-धारे में खो जाएंगे। एक क़ौम की कौम को नकारा करने का यह एक मनसूबा है।"

"मुझे तुम्हारी बात समझ में नहीं आ रही है।" बेगम मुजीब, उलझी-उलझी-सी, फटी-फटी आंखों से महमूद को देख रही थी।

"अम्मीजान! मोटी बात यह है कि आपकी बेटी को स्कूल में हिन्दी पढ़ाई जाती है कि नहीं? आज ज़ेबा उर्दू से ज़्यादा हिन्दी जानती है। हर किसीको हाथ जोड़कर नमस्ते करती है। मुसलमान लड़कियों की तरह गर्दन झुकाए बाहं उठाकर आदाब करते मैंने उसे कभी नहीं देखा। लखनऊ रेडियो से कभी 'नात' और 'हम्द', क़व्वालियां और ग़ज़लें ब्राडकास्ट की जाती थीं। आजकल आपको कहीं इक्का-दुक्का उर्दू का प्रोग्राम सुनने को मिलता है। आल इंडिया रेडियो के समाचारों की ज़बान हर रोज़ मुश्किल होती जा रही है। कोई कह रहा था कि रेडियो वाले आजकल हिन्दी में ख़बरें नहीं सुनवाते, ख़बरों में हिन्दी सुनाते हैं। मेरे तो पल्ले कभी कुछ नहीं पड़ता। मैं तो दोनों वक़्त पाकिस्तान से ख़बरें सुनता हूं।"

बातों-बातों में पसीना पोंछने के लिए महमूद ने जेब में से रूमाल

निकाला और बेगम मुजीब देखती-की-देखती रह गई कि सौ-सौ के नये नोटों की गड्डी उसके सामने फ़र्श पर जा गिरी। महमूद ने जल्दी से उसे उठाकर अपनी जेब में रख लिया।

और फिर महमूद किसी वहाने उठ खड़ा हुआ। इतने में उसे लेने के लिए एक मोटर आ गई। बेगम मुजीब ने देखा—जहाज़ जैसी मोटर चमचम कर रही थी। एक नौजवान लड़का उसे चला रहा था। मोटर में एक-दो लड़के, एक-दो लड़कियां बैठी हुई थीं।

उस दिन के बाद बेगम मुजीब ने ज़ेबा को जैसे बिल्कुल माफ़ कर दिया हो। कैसे इस्लाम और पाकिस्तान पर किताबें इकट्ठा करती रहती थी! लाहौर रेडियो के उर्दू प्रोग्राम कितने प्यारे होते थे! सुवह-शाम ज़ेबा आप भी सुनती, अपनी अम्मी को भी सुनवाती।

आजकल बेगम मुजीब को लाहौर रेडियो से तलावते-क़ुरान शरीफ़ सुनकर जैसे चैन-सा महसूस होने लगता। उसकी ज़िन्दगी में अचानक इतनी उलझनें आ गई थीं; अल्लाह का नाम सुनकर जैसे उसे एक तसकीन-सी मिलती। और फिर क़व्वालियां और नातें, जैसे ही एक वार सुनने बैठती, उसका रेडियो के पास से उठने को मन न करता। और इधर अपने देश का रेडियो था, हर वक़्त पक्के गाने और कठिन हिन्दी, या फिर भारत की योजनाएं। इस तरह का राग अलापता रहता। किसीके पल्ले कुछ न पड़ता।

और फिर किसीके हाथ, लाहौर से इस्मत की चिट्ठी आई। चिट्ठी पढ़कर ज़ेबा को जैसे आग लग गई।

अमृतसर की पुलिस ने, पाकिस्तान से भेजी गई पुलिस की टुकड़ी द्वारा सीमा को बरामद करने की इजाज़त नहीं दी। अमृतसर शहर और निकट के गांव में से ट्रकें भरकर, अगवा की गई मुसलमान लड़कियों को वे ले गए थे; पर सीमा के घर की ओर जाने के लिए स्थानीय पुलिस राज़ी नहीं हुई थी। एक ही ज़िद कि बी० ए० पास लड़की का कोई अपहरण नहीं कर सकता। और फिर सीमा की मां अभी हिन्दुस्तान में थी। उसकी एक बहन हिन्दुस्तान में थी। उसका एक भाई लंदन में था, लेकिन हिन्दुस्तान का शहरी था। लाखों रुपये की उनकी जायदाद थी—इधर

हिन्दुस्तान में । इनके ख़ानदान में, पाकिस्तान बनने के बाद कोई भी तो उधर नही गया। बेशक कुछ रिश्तेदार उधर पाकिस्तान में थे, लेकिन वे तो पहले ही उधर रह रहे थे।

लेकिन इस्मत ने लिखा था—'मेरा शौहर भी हार मानने वाला नही है। उसने पाकिस्तान की पुलिस में से किसीको तैयार किया है। अगली बार जब वह अमृतसर गए तो किसी-न-किसी तरह सीमा को जबरदस्ती उठाकर ले आएंगे। एक बार यह सरहद से पार आ गई तो फिर हम उसे संभाल लेंगे।' इस्मत को पूरा भरोसा था कि वह इस साज़िश में कामयाब हो जाएगी।

लेकिन वह सफल नही हुई। इतने दिन बीत गए थे। यूं लगता, सीमा के चारों ओर इस्पात का एक जंगला बना दिया गया था। उसे कोई हाथ नही डाल सकता था। इधर उसने अपनी अम्मी को चिट्ठी लिखना भी बंद कर दिया था। वास्तव में स्वयं बेगम मुजीब का जी नही चाहता था कि उससे कोई वास्ता रखे।

बेगम मुजीब का मन खट्टा हो चुका था। कई दिनों से वह महसूस कर रही थी कि उसका शौहर शायद गलत राह पर था। उसकी बेटी ज़ेबा जो कुछ कहती थी, वही ठीक था। और फिर ज़ेबा और उसके मिलने-जुलने वाले लड़के-लड़कियां हर रोज़ उसके कान भरते रहते। आजकल उनका बेगम मुजीब के घर आना-जाना लगा ही रहता था।

और फिर शेख़ शब्बीर का इलाज कर रहे डाक्टर ने मशवरा दिया कि उसे पाकिस्तान भेज देना चाहिए। हो सकता है कि उसकी बीमारी का इसीमें इलाज हो। बेगम मुजीब सोचती कि वह भी पाकिस्तान चली जाएगी। जहन्नुम में जाए जायदाद। जान है तो जहान है। इधर भारत में तो, उसे यूं लगता था कि कहीं उसका भी वही हाल न हो जो उसके जेठ का हो रहा था। कभी तोला, कभी माशा। कभी एक पलड़ा भारी हो जाता, कभी दूसरा। कभी हिन्दुस्तान, कभी पाकिस्तान। उसकी समझ में कुछ नही आ रहा था।

## १०

पक्का फ़ैसला था कि वेगम मुजीव पाकिस्तान चली जाएगी। उसने अपनी जायदाद के ग्राहक भी ढूंढ़ने शुरू कर दिए थे। कुछ सौदे भी हो चुके थे। कुछ रक़मों की पेशगी भी ले ली थी।

ज़ेवा खुश थी। वहुत खुश। उधर इस्मत के मानो जमीन पर पाव नहीं टिक रहे थे। जुवैर खुश था। अपनी भावज की ओर से अव वह सुर्खरू हो जाएगा। भारत में जव कहीं साम्प्रदायिक दंगे होते, पाकिस्तान का कोई लीडर जव भारत के विरुद्ध वयान देता, उसे वेगम मुजीव को और भी चिन्ता होने लगती थी।

शेख़ शव्वीर ने अपनी लाखों की जायदाद कौड़ियों के भाव वेच डाली थी। उसने अपने नगदी को, अपने सोने-चांदी को उधर पाकिस्तान भिजवाने का डौल भी कर लिया था। लेकिन सवाल यह था कि वह जाएगा कहां ? किस शहर में जाकर वसेगा ? पाकिस्तान के किसी शहर में तिल धरने की जगह नहीं थी। इधर से गए शरणार्थी अभी तक सड़कों पर पड़े हुए थे। उन्हें फिर से बसाने की किसीको चिन्ता नहीं थी। दस दिन, महीना, दो महीने, वे चाहें तो अपने किसी रिश्तेदार के यहां टिक सकते थे, लेकिन उसके वाद क्या करेंगे, वेकार वैठे तो कारूं का खज़ाना भी ख़त्म हो जाता है। आख़िर उन्हें कोई धंधा पकड़ना होगा। खेती-वाड़ी के लिए तो जमीन चाहिए। यह सव कुछ कहां से आएगा ? ज़मीनें उधर वांटी जा चुकी थीं। मकान अलाट हो चुके थे। और अभी लाखों लोग वेघर थे। कोई उनकी वात तक नहीं पूछ रहा था।

लेकिन शेख़ शव्वीर ने फ़ैसला कर लिया था। उसके घरवाले सोच रहे थे कि अगर भूखों भी मरना है तो पाकिस्तान में जा मरेंगे। अव वे और भारत में नहीं रह सकते थे। शेख़ शव्वीर की हालत दिन-पर-दिन विगड़ती जा रही थी।

उधर वेगम मुजीव के लंदन-स्थित पुत्र ने जव यह सुना कि उसकी मां पाकिस्तान जाने की सोच रही थी, उसने चिट्ठी लिखी और वेगम मुजीव को समझाया कि वह यह भूल कभी न करे। पाकिस्तान के हालात वड़े

खराब थे। जो लोग वहां महाजर बनकर गए थे, वे पछता रहे थे। पाकिस्तान के पंजाबी किसीके पांव नहीं जमने दे रहे थे। यू॰ पी॰ वालों को तो वे ख़ास तौर पर 'भैये' कहकर छेड़ते थे। उनका मजाक़ उड़ाते थे।

बेगम मुजीब को समझ में कुछ नहीं आ रहा था। इधर ज़ेबा थी कि हर समय पाकिस्तानी लड़कियों के फ़ैशन के गुण गाती रहती। ढेरसारी सलवार-कमीज़ें उसने मिलवा ली थीं। पाकिस्तानी पायंचों की 'पीड़ियां', पाकिस्तानी कमीज़ों के घेरे। पाकिस्तानी रंग। चुनरियों पर पाकिस्तानी बेल-बूटे। "लाहौर के अनारकली बाज़ार में एक दुकान का नाम 'पाज़ेब' है। एक का नाम 'कहकशां' है।" एक दिन बैठे-बैठे ज़ेबा अपनी मां से कहने लगी।

पिछले कुछ दिनों से बेगम मुजीब हर रोज़ अपने शौहर की क़ब्र पर जाकर घंटों अपने-आपसे बातें करती रहती। अपना दुखड़ा रोती। कहीं उसे अपनी समस्या का हल मिल जाए। उसकी गहरी अंधेरी दुनिया में कहीं रोशनी की कोई किरण दिखाई दे जाए।

कहीं उसका विश्वास नहीं टिक रहा था। जैसे घुप-अंधेरी रात छाई हो। उसे दिखाई नहीं दे रहा था। उसे कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। जब से शेख़ शब्बीर बीमार पड़ा था, वह बिल्कुल बेसहारा हो गई थी। कोई नहीं था जो उसे सलाह दे। कोई नहीं था जिसके मशवरे पर उसे भरोसा हो। ज़ेबा बेशक बड़ी हो रही थी, लेकिन थी अभी लड़की ही। उसकी किसी बात पर मां का मन नहीं टिकता था। जो कुछ वह बोल रही होती, एक क्षण-भर के लिए उसे ठीक-ठीक लगता लेकिन फिर वह डावांडोल हो जाती।

और फिर जैसे एक वज्रपात हुआ हो। एक दिन, तीसरे पहर जब बेगम मुजीब सोकर उठी तो किसी काम से वह गोल कमरे की ओर गई। उसने पर्दा हटाया और उसकी आंखें फटी-की-फटी रह गईं। सामने सोफ़े पर महमूद बैठा था, और उसके गोद में सिर रखे हुए ज़ेबा लेटी थी। उन्हीं क़दमों से वह अपने कमरे में लौट आई और औंधे मुंह अपने पलंग में जा धंसी।

कुछ देर बाद ज़ेबा उधर आई और उसने देखा कि अम्मी तो बेहोश पड़ी थी। उसकी जीभ दांतों में आ गई थी। और उसमें से ख़ून बह रहा था। पलंग की चादर पर एक बड़ा-सा धब्बा पड़ गया था। बेगम मुजीब के हाथ-पांव ठंडे पड़ गए थे। मुड़ गए थे। ज़ेबा ने अम्मी के दांतों को अलग किया। उसके मुंह में पानी डाला। उसके हाथ-पांव की मालिश की। कितनी ही देर तक वह अपनी मां से जूझती रही। फिर कहीं जाकर उसकी चेतना लौटी।

बेगम मुजीब होश में तो आ गई लेकिन उसकी आंखों में से अविरल अश्रुधारा फूट रही थी। बार-बार वह ज़ेबा की ओर देखती जैसे उसने उसके साथ घोर अन्याय किया हो, और ज़ेबा की ढिठाई की यह हद थी कि अपने परों पर पानी नहीं पड़ने दे रही थी। बार-बार कहती, 'अम्मी, आपको ग़लतफ़हमी हुई है। मैं महमूद से अपनी आंख में लोशन डलवा रही थी।' लेकिन मां अपनी आंखों पर विश्वास करती या अपनी बेटी की हठधर्मी पर?

बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, क्या करे! कहां जाए! आख़िर उसने फ़ैसला किया कि चाहे कुछ हो, वह पाकिस्तान चली जाएगी। ज़ेबा को किसीके हवाले करके सुर्खरू हो जाएगी। जहां तक उसका अपना सवाल था, शौहर की मौत के बाद, एक औरत अपने बेटे की जिम्मेदारी होती है। अगर जरूरत हुई तो वह लंदन भी जा सकती थी।

बेगम मुजीब स्वयं दिल्ली गई ताकि पाकिस्तान जाने के लिए परमिट बनवा लाए। एक दिन के लिए गई, उसे कई दिन लग गए। परमिट बनने में देर लग रही थी। हर रोज टेलीफ़ोन पर ज़ेबा को बताती रहती कि देर क्यों हो रही थी, क्या अड़चन थी। आख़िर कह-सुनकर उसने अपना और अपनी बेटी का परमिट बनवा लिया।

इतने दिन टाल-मटोल हो रही थी, जब बनने लगा तो एक किसीके टेलीफ़ोन करने पर मिनटों में बनकर तैयार हो गया। उस शाम बेगम मुजीब जब अपने घर लौटी तो ज़ेबा मुंह फुलाए बैठी थी। कह रही थी कि मैं तो पाकिस्तान नहीं जाऊंगी। पीछे हिन्दुस्तान में बाक़ी बचे मुसलमानों

की जगह भारत में है। पाकिस्तान की अपनी समस्याएं क्या कम हैं? उस देश पर और बोझ नहीं डालना चाहिए। और फिर भारत के सारे मुसलमान तो पाकिस्तान जा नहीं सकते। अगर ऊपरी तबके के लोग चले गए तो निचले तबके के ग़रीब अनपढ़ मुसलमानों का कौन सहारा होगा ?

"हमने कोई किसीका ठेका लिया है?" वेगम मुजीब नाराज़ होकर बोलीं। लेकिन ज़ेबा अपनी ज़िद पर अड़ी हुई थी। टस-से-मस नहीं हो रही थी।

बेचारी विधवा औरत ! वेगम मुजीब को अपनी जवान-जहान पढ़ी-लिखी लड़की के सामने हार माननी पड़ी। और उसने अपने बंद किए हुए सन्दूक खोलने शुरू कर दिए। बेशक शेख़ सब्बीर और उसका परिवार चला जाए, वेगम मुजीब सोचती, उसके भाग्य में मेरठ में ही मरना लिखा हुआ है। यही उसकी कब्र बनेगी।

बहुत दिन नहीं बीते थे कि शहर में सनसनी फैल गई। कालेज के *मुसलमान लड़कों के एक ठिकाने पर छापा मारकर पुलिस ने हथियार भी* बरामद किए थे और लिट्रेचर भी जो मुसलमान, अल्पसंख्यकों को भड़काने के लिए तैयार किया गया था। कुछ लड़के भाग गए थे। जो पकड़े गए थे, उनमें महमूद भी था।

ज़ेबा से किसीने कहा था कि उसे पाकिस्तान खिसक जाना चाहिए। महमूद या उसके साथियों पर जब पुलिस सख़्ती करेगी, तो वह सब कुछ बक देंगे। और इसमें कोई संदेह नहीं था कि ज़ेबा उनकी पार्टी की एक मुख्य सदस्या थी। हर साज़िश में शामिल वह होती थी। हर कार्यवाही में वह भाग लेती थी।

अब ज़ेबा ज़िद करने लगी कि उन्हें पाकिस्तान चले जाना चाहिए। इससे पहले कि उनके परमिट की तारीख़ निकल जाए, उन्हें भारत छोड़ देना चाहिए।

"यह देश मुसलमानों के रहने के हरगिज़ क़ाबिल नहीं।" उठते-बैठते ज़ेबा अपनी मां के कान भरती रहती। "जब पाकिस्तान बना ही इस उसूल पर है कि मुसलमान एक अलग कौम है, और उनके लिए एक अलग

देश वना है तो फिर किसी मुसलमान का भारत में रहने का कोई मतलव नहीं है।"

"लेकिन यह वात मुस्लिम-लीगी कहते हैं, हिन्दुस्तानी कोई नहीं कहता, कांग्रेसी कोई नहीं कहता, महात्मा गांधी कभी नहीं कहता, जवाहर-लाल कभी नहीं कहता कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग क़ौमें हैं।" वेगम मुजीव अपने शौहर के वोल याद कर रही थी, "भारत में हिन्दू और मुसलमान दोनों रहेंगे। दोनों वरावर के शहरी हैं। भारत एक सैक्यलूर लोक-राज होगा।"

"सव कहने की वातें हैं।" जेवा अपनी मां को वहस में हमेशा हरा देती। "सव कहने की वातें हैं। जगह-जगह मुसलमानों के क़त्ल हो रहे हैं। आर० एस० एस० वाले और जनसंघी मुसलमानों के ख़ून के प्यासे हैं। और कुछ वरस, और फिर भारत में कोई मुसलमान दिखाई नहीं देगा। या सारे हिन्दू हो जाएंगे या हिन्दुओं जैसे। हिन्दी भाषा वोलेंगे, हाथ जोड़कर नमस्ते किया करेंगे। मुसलमान लड़कियां माथे पर विंदियां लगाएंगी और हिन्दू और सिखों के लिए वच्चे पैदा किया करेंगी। जैसे अमृतसर में मेरी एक वहन कर रही है।"

वेगम मुजीव ने तैयारी फिर शुरू कर दी। फिर सामान वांधना शुरू कर दिया। इतने में उनकी जान-पहचान का एक पुलिस अफ़सर आया और वेगम मुजीव को मशवरा देने लगा, "अगर हो सके तो जेवा को कुछ दिनों के लिए इधर-उधर कर दें।"

जवान-जहान लड़की को कहां छिपाती? वेगम मुजीव ने फ़ैसला किया कि वह कल की जाती, आज पाकिस्तान चली जाएगी।

रात की गाड़ी उन्हें पकड़नी थी कि शाम को ख़वर आई, महात्मा गांधी की छाती में किसीने तीन गोलियां दाग कर उसे ख़त्म कर दिया था। क्योंकि वह मुसलमानों का पक्ष लेता था। क्योंकि उसने पाकिस्तान को, करोड़ों रुपये का उनका हिस्सा दिलवाया था, क्योंकि उसने पाकिस्तान को कोयला दिलवाया था, जिसकी कमी के कारण वह देश हाथ-पर-हाथ धरकर वैठ गया था। एक कट्टर हिन्दू ने उसे गोली से उड़ा दिया था।

बेगम मुजीब का सामान—वैसे-का-वैसा बधा—धरा-का-धरा रह गया।

## ११

महात्मा गाधी की हत्या का समाचार सुनकर जेबा पर जैसे एक जादू का सा प्रभाव हुआ हो। क्या मजाल जो किसीको गाधीजी के बारे में कोई अपशब्द मुह से निकालने दे। बापू की एक बहुत बड़ी तसवीर मगवाकर उसने अपने कमरे मे लगा ली थी। प्राय. उस तसवीर के सामने फूल रखे रहते। ख़ुशबूदार गुलाब की कलिया, मोतिया के हार। अपने-आपसे महात्मा गाधी की बातें किया करती। कोई बापू के विरुद्ध एक शब्द कहता तो उसकी आंखों में आसू भर आते।

गाधी की अतिम यात्रा मे मा-बेटी दोनो शामिल हुई। लाखों लोग थे। उनमे वे भी थी। हजारो आखें रो रही थी। उनमे उनकी पलकें भी नम थी।

उस दिन से जेबा महात्मा गाधी को हमेशा 'बापू' कहकर याद करने लगी। महात्मा गांधी को 'बापू' कहती और उसके होठो से एक बेटी का प्यार, एक बेटी का आदर, एक बेटी की श्रद्धा झर-झर पड़ती। उसने तो अपने अब्बा के प्रति कभी इतना सत्कार नही दर्शाया था। गाधीजी को 'बापू' कहकर याद करते हुए, शेख़ मुजीब की बेटी जेबा को यू लगता, जैसे समूचा भारत उसका अपना घर हो। वह अपने आगन मे खेल रही थी, खा-पी रही थी, परवान चढ रही थी। महात्मा गाधी की अस्थिया जब विसर्जित की जा रही थी, तो वह अपनी कुछ सहेलियों के साथ इलाहाबाद गई। जब लौटी तो कितने ही दिनो तक बेगम मुजीब को सगम पर बापू के प्रति लोगों की अपार भक्ति और श्रद्धा की कहानिया सुनाती रही।

इस तरह दिन, महीने, साल बीतने लगे।

आजकल शहर में जिन मुसलमान पर्दानशीन औरतों को जेबा पढ़ाने

जाया करती थी, उनसे कुछ और तरह की बातें करने लगती, जिन्हें सुन-सुनकर वे हैरान होती रहतीं। वह तो अपने अब्बा शेख़ मुजीब की भाषा बोलने लगी थी।

आजकल जेबा उन्हें बताया करती—हमारे देश में मुसलमानों के आने से पहले भी एक से ज़्यादा धर्म होते थे। उन लोगों में भी ग़लत-फ़हमियां हुआ करती थीं। असल में सब धर्म एक जैसे होते हैं। सब धर्म बराबरी और सच का प्रचार करते हैं। ईमानदारी की जिन्दगी जीने की प्रेरणा देते हैं। बाहर से आए मुसलमान शासकों को इस बात का एहसास था कि कोई धर्म न तो जड़ से मिटाया जा सकता है और न कोई हमलावर किसी देश के लोगों पर उनकी रज़ामंदी के बिना ज़्यादा दिन राज्य कर सकता है। इसलिए ज्यादातर मुसलमान हुक्मरान हिन्दू धर्म की इज्ज़त करते थे।

इस्लाम और हिन्दू धर्म को क़रीब लाने में सूफ़ियों और संतों ने बड़ी मदद की। इनमें ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी ने दिल्ली में, बाबा फ़रीद शकरगंज ने अजोधन (पंजाब) में और हजरत मोइनुद्दीन चिश्ती ने अजमेर (राजस्थान) में अपने-अपने केन्द्र बनाकर प्रचार शुरू किया। इधर चैतन्य महाप्रभु, भक्त कबीर और गुरु नानक जैसे कई और संतों ने उनके स्वर-में-स्वर मिलाया। उन्होंने कहा—जात-पांत सब झूठ है। सब बन्दे एक ख़ुदा की औलाद हैं। ईश्वर की भक्ति ही आदमी को पार उतार सकती है।

आपसी मेल-जोल की इस लहर को अकबर के राज्य में बढ़ावा मिला। अकबर ने सब धर्मों की अच्छी-अच्छी बातों को अपनाया। हर मज़हब में दूसरे किसी मज़हब से टकराव वाली बातों को नजरअंदाज़ किया। अबुलफ़ज़ल ने अकबर के सिद्धान्त को इस तरह बयान किया है : 'एक ही अलौकिक सौन्दर्य है, जो अलग-अलग ढंग से जलवा दिखाता है।'

अकबर से पहले उसके दादा बाबर ने अपने बेटे हुमायूं को इस तरह की ही हिदायत की थी :

१. कभी मज़हबी तास्सुब में मत पड़ना। अपनी प्रजा के धर्म और

रीति-रिवाजों का खयाल रखना।

२. गोहत्या से परहेज करना। इस तरह यहा के लोग तुम्हारे शुक्र-गुज़ार होंगे।

३ किसी धार्मिक स्थान का निरादार मत करना। हमेशा इन्साफ़ करना ताकि तुम्हारे राज्य मे अमन-शान्ति बनी रहे।

४ इस्लाम का प्रचार मुहब्बत से ही हो सकता है।

तभी तो हुमायू ने हिन्दू रानी कर्णवती की राखी कबूल की और उसे अपनी बहन बनाया। अकबर और उसके बाद मुग़ल बादशाहों की हिन्दू रानियों के साथ शादिया होने लगी। मुग़ल महलों मे हिन्दू रीति-रिवाज आ गए। एक ओर मस्जिद में अज़ान दी जा रही होती, दूसरी ओर मन्दिर मे घंटे-घड़ियाल बज रहे होते। वेद और शास्त्रों के, रामायण और महाभारत के फ़ारसी मे अनुवाद हुए। फ़ारसी और अरबी ग्रंथों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया गया।

उस ज़माने के एक शायर ने कहा है

'चश्मे वहदत से गर कोई देखे
बुत परस्ती भी हक़ परस्ती है।'

इसी तरह १८वीं और १९वी सदी मे कई उर्दू शायरों ने हिन्दू देवी-देवताओं के बारे मे लिखा। 'बेदिल' ने अपनी एक नज़्म मे रामचन्द्रजी का बखान किया। नज़ीर अकबराबादी ने शिव, कृष्ण और नानक के गुण गाए।

सारी ख़राबी शुरू हुई जब फ़िरंगी हमारे देश मे आया। वही हममे फूट डालकर खुश था। अंग्रेज़ों के आने के बाद हिन्दू और मुसलमानों के बीच खाई डाली गई। फिर यह खाई बढ़ने लगी। कोई-न-कोई शह देकर फिरंगी इस आग को भड़काते रहते।

लेकिन कई सदियों से एकसाथ रहते हुए हिन्दू और मुसलमान भारत मे एक-जान हो गए थे। वक़्त ने उनके भेद-भाव मिटा दिए थे। समाज की भट्ठी मे ढलकर वे एक क़ौम बन चुके थे। एक-से सपने, एक-से रिवाज।

हिन्दुओं की तरह अब भारतीय मुसलमानो मे भी जात-पात का फ़र्क़

माना जाने लगा है। सैयद ब्राह्मणों की तरह हैं और मुसलमान राजपूत, क्षत्रियों की तरह। शूद्रों की तरह किसी भंगी का मस्जिद में घुसना बुरा समझा जाता है।

इस तरह की बातों के साथ-साथ ज़ेबा उन्हें अपने देश को छोड़कर गए महाजरों की कहानियां भी सुनाती। उसके अपने ताऊ सब कुछ बेच-बाचकर पाकिस्तान चले गए थे। इधर उनका बोलबाला था, उधर दर-दर की ठोकरें खा रहे थे। कोई पूछने वाला नहीं था। न रहने के लिए घर मिल रहा था, न खेती के लिए ज़मीन। न किसी और काम-काज की जुगत बन रही थी।

क़ायदे-आज़म मुहम्मद अली जिन्नाह अल्लाह को प्यारे हो चुके थे। लियाक़त अली को रावलपिंडी के एक जलसे में गोली मार दी गई थी। वहां की सरकार ने पूरी कोशिश की थी लेकिन किसीकी समझ में नहीं आ रहा था कि एक जनता के प्यारे लीडर को क्यों ख़त्म कर दिया गया था।

जब भी कोई अन्दरूनी मामला पाकिस्तानी हुक्मरानों के सामने आता, झट अपने लोगों का ध्यान कश्मीर की ओर दिलाने लगते। भारत की झूठी-सच्ची बातें उड़ाने लगते। बार-बार अपने लोगों से कहते कि भारत ने दो क़ौमों के सिद्धान्त को नहीं माना, किसी समय भी हमला करके वह पाकिस्तान को हड़प सकता है। भारत के विरुद्ध ज़हर फैलाते और इस नफ़रत को किसी-न-किसी तरह बनाए रखते।

सबसे ज्यादा हैरानी बेगम मुजीब को हो रही थी। उसे अपनी आंखों पर भरोसा नहीं हो रहा था। अपने कानों पर यक़ीन नहीं होता था। ज़ेबा तो अपने अब्बा से भी चार क़दम आगे निकल गई थी।

ज़ेबा और सीमा में पत्र-व्यवहार होता रहता। ज़ेबा अमृतसर जाकर अपनी बहन से एक से ज्यादा बार मिल भी आई थी। सीमा के यहां बेटा हुआ, लेकिन बच्चा वक़्त से पहले हो गया था। डाक्टरों ने पूरी कोशिश की मगर वह बच नहीं सका।

दूसरी बार सीमा के यहां बेटी हुई। उन दिनों ज़ेबा अपनी बहन के पास ही थी। वह हैरान रह गई। बच्ची हू-ब-हू अपनी नानी की शक्ल

थी। सीमा अपने अब्बा पर थी। अब्बा जैसी नाक, अब्बा जैसा माथा। अब्बा का रंग-रूप, कोई बात भी तो उसमें अम्मी की नहीं थी। और यह बच्ची जो उसने पैदा की थी, बेगम मुजीब की तरह गोरी-चिट्टी थी। बेगम मुजीब की तरह बड़ी-बड़ी काली आखें। बेगम मुजीब की तरह कोमलांगी, लम्बी-लम्बी उंगलियां, तीखी नाक, जब मुंह ऊपर उठाती तो बेगम मुजीब की तरह उसके गालों में गड्ढे पड़ जाते।

बेगम मुजीब सुन-सुनकर हैरान होती रहती। पता नहीं किस कोने में सीमा ने अपनी अम्मी को छिपाकर रखा हुआ था, और अपनी बेटी में फिर उसे मूर्तिमान कर दिया था।

ज़ेबा कहती —उस बच्ची में न तो कहीं कोई सिख था, न कहीं कोई पंजाबी था; न कहीं कोई अमृतसरी रंग था। वह तो हू-ब-हू अपनी नानी की नवासी थी। उसे देखती तो ज़ेबा का बच्ची के लिए प्यार छलक-छलक पड़ता।

लेकिन बेगम मुजीब थी कि टस-से-मस नहीं हुई। वह अभी तक सीमा को माफ़ नहीं कर पाई थी। अभी तक वह उसे मुंह नहीं लगा सकी थी।

## १२

फिर एक बार जब ज़ेबा अमृतसर गई, कालू को अपने साथ ले आई। वह फिर पहले की तरह घर में रच-बस गया।

महमूद उस दिन बेगम मुजीब से मिलने आया। कालू ने देखा और जल्दी से बेगम मुजीब के कमरे की ओर लपका।

"बेगम साहब, आपसे मिलने के लिए कोई लड़का आया है।"

"कौन है?"

"मैंने नाम तो नहीं पूछा, लेकिन कोई खूबसूरत-सा नौजवान है।"

बेगम मुजीब ब्लाउज़ और पेटीकोट में घूम रही थी। उसने झट्टे

पहनी। शृंगार-मेज़ के सामने पल-भर रुककर वालों को संवारा और लोग कमरे में चली गई। महमूद को देखकर वेगम मुजीव का चेहरा उतर गया। महमूद ने उठकर ज़ेवा की अम्मी को आदाव किया।

"फरमाइए !" कुछ देर चुप वैठे रहने के वाद वेगम मुजीव ने ख़ामोशी को तोड़ते हुए कहा।

महमूद अभी भी चुप था।

"आप कव रिहा हुए ?" वेगम मुजीव ने पूछा। पुलिस के छापे के वाद कई महीने महमूद पर मुक़दमा चला और फिर सज़ा हो गई।

उसे रिहा हुए कई दिन हो चुके थे, वेगम मुजीव को इसका पता नहीं था।

"वेटा...और सव कुछ मैं समझ सकती हूं..." महमूद को 'वेटा' कहते हुए वेगम मुजीव की जीभ ज़रा लड़खड़ाई। फिर जो वात वह कहना चाह रही थी, उसके होंठों पर जैसे रुकी रह गई।

"जी, अम्मीजान !" महमूद कैसे प्यारी तरह उसे संवोधित कर रहा था। उसके वोल वेगम मुजीव की छाती में छिपी मां के तारों को झनझना गए। लेकिन फिर सहसा उसकी आंखों के सामने उस दोपहर का दृश्य घूम गया जव उसने सोफ़े पर, ठीक वहीं, जहां वह वैठा हुआ था, ज़ेवा का सिर उसकी गोद में देखा था। आंखें मूंदे, एक उन्माद में वह लेटी हुई थी। वेगम मुजीव के अंग-अंग में एक कड़वाहट घुल गई।

"और सव कुछ मेरी समझ में आ सकता है," वेगम मुजीव ने फिर वोलना शुरू किया, "पर किसी आंदोलन का हिंसा पर उतर आना माफ़ नहीं किया जा सकता।" वेगम मुजीव अपने शौहर की ज़वान वोल रही थी। महात्मा गांधी की छाया में परवान चढ़ी, वह वापू का वाक्य दोहरा रही थी।

"अम्मी ! मैं आपकी वात समझा नहीं ?" यह लड़का कितना मीठा वोल रहा था ! जव होंठ खोलता, उसके वोल वेगम मुजीव की छाती में जा लगते, जैसे किसी साज़ के तारों को कोई छेड़ रहा हो। वेगम मुजीव न चाहते हुए भी उसकी ओर देखने को मजवूर हो जाती।

गेहुआं रंग, गालों पर एक गुलाव-सा खिला हुआ, आंखों में एक

आकर्षण। माथे पर एक संजीदगी, दूर-दृष्टि की झलक। होंठों पर शहद-सा घुला हुआ; मन की बात कहने की एक ललक। एक खुशबू की तरह, जैसे वह लड़का उसके प्राणों में उतरता जा रहा हो।

एक अजीब-सा संघर्ष बेगम मुजीब के मन में चल रहा था। यह लड़का जिसने उसकी बेटी को गुमराह किया था, उसे बुरा क्यों नहीं लग रहा था ?

"यह तो मैं मानता हूं कि हममें एक पूरी पीढ़ी का फ़ासला है, लेकिन अम्मी, हमने कोई ऐसी बात तो की नहीं, जिसके लिए हमें शर्मिंदा होना पड़े।" महमूद के बोलों में आदर था, श्रद्धा थी।

बेगम मुजीब के होंठों पर जैसे फिर ताला लग गया हो। इतने मिठ-बोले लड़के से विरोध प्रकट करने में उसे कठिनाई महसूस हो रही थी।

जब वह अपनी आखों से देख चुकी थी कि ज़ेबा का सिर उसके घुटनों पर था, उसकी चोटी उसके सीने पर अलसाई हुई-सी पड़ी थी। फिर ज़ेबा क्यों बार-बार कहती थी कि उसने गलत समझा था ? अपनी आखों में वह सोशन उलवा रही थी। क्यों ज़ेबा झूठ बोलती थी ? आज तक उसने अपना कुसूर नहीं माना था।

कुसूर ?

फिर ये शब्द एक प्रश्न-सूचक चिह्न बनकर बेगम मुजीब की आखों के सामने मंद-मंद मुसकराने लगे।

और बेगम मुजीब को अपनी जवानी के दिन याद आने लगे। शेख मुजीब के साथ अपनी मुहब्बत का बुखार। तोबा ! तोबा ! परदेवाली हवेली में क्या-क्या बहाने उसे गढ़ने पड़ते थे। अगर उसकी अन्ना मदद न करती तो यह मंज़िल उससे कभी पार न होती। शेख मुजीब की वह दीवानी थी। बातें करते-करते उसके माथे पर बालों की जो लट खेलने लगती, उसे बहुत भाती थी।

"आपने मुझे मेरा कुसूर नहीं बताया ?" बेगम मुजीब को एकाएक मौन देखकर महमूद ने प्रश्न किया।

बेगम मुजीब ने आंखें उठाकर उसके चेहरे की ओर देखा। उसके माथे पर, हू-ब-हू शेख मुजीब जैसी एक लट बेकरार हो रही थी। बेगम मुजीब को

जैसे किसीने झकझोर दिया हो। उसका चेहरा तमतमा उठा। "मेरा मतलब है···", वह ख़फ़ा होकर कुछ कहना चाहती थी, लेकिन फिर उसकी ज़बान जैसे रुक गई हो।

"अम्मीजान! अगर आपको अपनी नाराज़गी जाहिर करने में कोई मुश्किल हो, तो फिर कभी सही। मेरा इरादा आपको परेशान करने का नहीं है।" महमूद में असीम धैर्य छलक रहा था।

"नहीं, नहीं, बेटे," और फिर जैसे बेगम मुजीब ने हथियार डाल दिए हों। बेगम मुजीब के मुंह से ये शब्द निकलते ही मानो वह पूरी-की-पूरी प्रेम की मूर्ति बन गई हो।

"मेरा मतलब यह है कि तुम्हारी पार्टी के दफ़्तर में, ग़ैरक़ानूनी असलहे का मिलना मुझे बहुत बुरा लगा।"

"असलहा? अम्मीजान! आपने सारी उम्र फ़िरंगी से लड़ाई लड़ी है। आपको पुलिस के हथकंडे मालूम नहीं?" महमूद ने हैरान होकर कहा।

बेगम मुजीब फटी-फटी आंखों से उसके भरपूर जवानी के चेहरे की ओर देख रही थी। ऐसा मुंह कभी झूठ नहीं बोल सकता?

"पुलिस ने हमारे दफ़्तर को घेर लिया। हम सबको पहले एक अलग कमरे में बंद कर दिया। फिर वे चारों तरफ़ तलाशी लेने लगे। कुछ देर के बाद जब उन्होंने बंद कमरे का दरवाज़ा खोला तो सामने बरामदे में रिवाल्वर और हथ-गोले पड़े हुए थे। ढेर-सारे इश्तिहार पड़े हुए थे, जो हमने कभी देखे भी नहीं थे।"

"क्या मतलब?"

"पुलिस वाले आप ही यह सब कुछ कहीं से लाए और हमारा नाम लगा दिया। हम देख-देखकर हैरान हो रहे थे। एक-दूसरे के मुंह की ओर देख रहे थे।"

"इश्तिहार भी आपके नहीं थे?"

"यह मैं नहीं कहता कि सारे इश्तिहार हमारे नहीं थे, लेकिन कुछ इश्तिहार जिन्हें ख़ास तौर पर मुकदमे में पेश किया गया, वे हरगिज़-हरगिज़ हमारे नहीं थे। हमने तो उन्हें पहले कभी देखा तक नहीं था।"

"इतना झूठ !"

"झूठ-सा झूठ ! उन इश्तिहारों मे कुफ्र तोल रखा था। और सितम यह है कि ज़बान तक ग़लत थी।"

"फिर भी तुम लोगों को सज़ावार ठहराया गया ! जेल में ठूसा गया !"

"कैद काटना कोई इतना मुश्किल नही था, जितना तफ्तीश के दिनों मे हमें सताया गया। अम्मीजान ! आपने हिंसा का ज़िक्र किया था, हम पर कौन-कौन-सा ज़ुल्म पुलिस ने नही ढाया जब हम उनके कब्ज़े मे थे।"

"बेटा, मुझे बताने की ज़रूरत नही। फिरंगी के ज़माने मे हमारे सिर पर यह सब बीत चुकी है।"

"हमारी पुलिस अब उससे भी चार कदम आगे निकल गई है।"

और फिर महमूद ने अपनी एक आस्तीन उठाकर बेगम मुजीब को अपनी बाह दिखाई। जगह-जगह घाव के निशान थे। मास को जैसे जम्बूरों से नोचा गया हो।

"मेरे सारे जिस्म का यह हाल है।" महमूद ने कहा, "मुझे सबसे ज़्यादा पीटा गया। मुझपर सबसे ज़्यादा कहर ढाया गया ताकि मैं इस बात का इकबाल कर लू कि ज़ेबा भी हमारे साथ थी।"

"बेटा ! तुम इकबाल कर लेते। ज़ेबा तुम्हारे साथ शामिल थी, इसमें झूठ क्या है ?"

"हां-हां अम्मीजान ! यह बात बार-बार मेरे होंठों पर आकर रुक जाती। मैं नहीं चाहता था कि ज़ेबा को भी हमारी तरह परेशान किया जाए।"

"परेशानी से कोई नही डरता, जितनी मुझे इस बात पर शर्म महसूस होती कि मेरी बेटी किस कुसूर पर धर ली गई थी," बेगम मुजीब ने सोचते हुए कहा।

"क्या मतलब, अम्मी ?"

"मेरा मतलब है कि किसी हिन्दुस्तानी मुसलमान का अपने मुल्क को छोड़कर पाकिस्तान की ओर देखना देशद्रोह है।"

बेगम मुजीब ने देखा, महमूद के चेहरे का रंग उड़ गया था।

"महमूद आया था," उस दिन शाम को जब ज़ेबा से बेगम मुजीब की मुलाक़ात हुई, मां ने बेटी को बताया।

ज़ेबा ने जैसे उसे सुना-अनसुना कर दिया हो।

"अम्मी! जिन औरतों को मैं पढ़ाने जाती हूं, उनमें से एक मेवाती है," ज़ेबा मां को बता रही थी, "मेवाती आर्यों की नस्ल से है। इनका रहन-सहन, इनके रीति-रिवाज, मुसलमान होने के बावजूद आर्यों जैसे हैं। मेवाती बारह 'पालों' और बावन गोत्रों में बंटे हुए हैं। इस औरत का मायका, दिल्ली के पास बल्लभगढ़ में है। इनकी शादी हिन्दू रस्मों से होती है, निकाह भी इसमें शामिल है। बारात तीन दिन लड़की वालों के घर टिकती है। एक ही गोत्र में शादी नहीं हो सकती। आम तौर पर शादियां सावन के महीने में होती हैं। ये लोग देवी-देवताओं को पूजते हैं। होली भी मानते हैं, मुहर्रम भी!"

उस शाम सोने से पहले बेगम मुजीब अपनी मेज़ की दराज में कुछ टटोल रही थी कि पुराने काग़ज़ों में से उसके हाथ एक तसवीर आई। एक क्षण के लिए उसे लगा जैसे वह महमूद की तसवीर हो। वहां रोशनी काफ़ी नहीं थी। बेगम मुजीब ने तसवीर को देखा और सिर से पांव तक कांप गई। अगले ही क्षण वह मुसकराने लगी। वह तसवीर तो उसके शौहर की थी। उन दिनों वह हू-ब-हू महमूद जैसा लगता था। इकहरा बदन, ऊंचा-लम्बा कद, सांवला रंग, सोच में डूबा हुआ। जैसे नज़रें दूर किसी मंजिल पर लगी हुई हों। बालों की एक नटखट लट माथे पर जैसे मचल-सी रही हो। उनके होंठों की बनावट एक जैसी थी; बात करने का ढंग एक जैसा था; वही लहजा, वही मुहावरा। वैसी-की-वैसी मीठी ज़बान। अपने शौहर को कभी उसने ख़फ़ा होते नहीं देखा था, कभी ऊंची आवाज़ में बोलते हुए नहीं सुना था।

इन्हीं विचारों में खोई हुई बेगम मुजीब की आंख लग गई। गर्मी के दिन थे। ये लोग बाहर आंगन में ईंटों के फर्शी चबूतरे पर सो रहे थे। अपनी-अपनी मच्छरदानियों में बंद। ज़ेबा का पलंग बेगम मुजीब से काफ़ी

फ़ासले पर था। हर रोज सोने से पहले नहाती। बालों में कघी फेरती। कोल्ड-क्रीम लगाती। कितनी-कितनी देर तक हाथों, गालों, मुंह-माथे की मालिश करती रहती। और फिर वैसे-के-वैसे खुले बाल, ख़ुशबू-ख़ुशबू अपने पलग पर आकर लेट जाती। इधर लेटती उधर उसकी आख लग जाती।

उस रात सोने से पहले ज़ेबा पजाबी मे कुछ गुनगुना रही थी :

'मन परदेसी जे थिए सब देस पराया।'

बेगम मुजीब की छाती मे जैसे ये बोल चुभ रहे हों। "बेटी, ये बोल किसके है ?" अम्मी ने आवाज़ देकर ज़ेबा से पूछा। आप-से-आप वह यही गुनगुनाती जा रही थी।

"बाबा नानक के ये बोल है अम्मीजान !" और ज़ेबा ने फिर उन बोलों को गाकर दुहराया :

'मन परदेसी जे थिरा सब देस पराया।'

"बाबा नानक की यह वाणी मैं भारत के सारे मुसलमानों को सुनाना चाहती हूं। ये बोल सबको ज़बानी याद कराना चाहती हूं।" और फिर कितनी ही देर तक वह यही बोल गुनगुनाते-गुनगुनाते सो गई। बेगम मुजीब की भी यही बोल सुनते-सुनते आख लग गई।

सावन-भादों की रात थी। आकाश पर बादल मडरा रहे थे। बादलों मे चाद आख-मिचौनी-सी खेल रहा था, जैसे कोई मुसाफिर रास्ता भूल गया हो। रात कुछ और गहरी हुई और ठडी-मीठी हवा चलने लगी। ज़रूर कही पानी बरसा होगा। अलीगढ मे मेह पड जाता, दिल्ली मे बूदा-बादी हो जाती, लेकिन कितने दिनों से मेरठ वैसे-का-वैसा सूखा रह जाता। बादल आते और बिखर जाते।

सोते-सोते पानी की एक बूद बेगम मुजीब के गाल पर पडी। कोई एक भूली-भटकी बूद थी। वर्षा का कही नाम-निशान नही था। बेगम मुजीब जैसे पूरी-की-पूरी सरशार हो गई। एक स्वाद-स्वाद। आगन के बाहर, कालू देर-रात की फ़िल्म देखकर लौटा था। 'तू कौन-सी बदली में मेरे चाद है, आ जा।' फ़िल्म का कोई गीत गुनगुना रहा था।

'कुदसी !'

'कौन मुजीव ?'

'हां ।'

'मुजीव ! तुम यहां कैसे ?'

'तुम्हारी अन्ना ने रास्ता बताया है ।'

'अन्ना वड़ी ख़राव है ।'

'धीरे वोलो । आधी रात का वक़्त है। सव सो रहे हैं ।'

और फिर वह उसके पलंग पर वैठ गया । दूध-सी सफ़ेद चादर पर, दूध-सी सफ़ेद चांदनी में । धूप-सी सफ़ेद मच्छरदानी का दिल-फ़रेव पर्दा । दीवानों की तरह उसके वालों से खेल रहा था । कैसे उसके रेशम के लच्छों से उसके मुंह-माथे को वार-वार ढांपने लगता । उसकी आंखों को, उसके गालों को । कभी उसके वालों को उसकी गर्दन में लपेटता, दायें से वायें, वायें से दायें और फिर उसके गोरे-चिट्टे चेहरे को, मच्छरदानी से वाहर निकालकर, चांद को दिखाता । उसका मुंह-माथा जैसे दहक रहा हो । उसकी उंगलियां जैसे मचल रही हों । उसके हाथ जैसे वेकावू हो रहे हों । उसकी वांहें जैसे वेकरार हो रही हों । यह वह क्या कर रहा था ? उसके गले का एक वंद उसने खोल लिया था । उसके कंधे अनढके थे । उसकी अंगिया के वंधन एक-एक करके खुल गए थे । आंखें मूंदे वह मदहोश पड़ी हुई थी। जैसे संगमरमर की मूर्ति हो । दूध-सी सफ़ेद चांदनी में शवनम के मोतियों से उसे नहलाया जा रहा था । और फिर उसपर जैसे फूल-पत्तियां वरसने लगीं । खुशवू-खुशवू-सी चारों ओर फैल गई । एक स्वाद-स्वाद में वह मदमस्त हुई जा रही थी । एक नशा-नशा, एक मधुर-मादकता-सी ! वह तो जैसे आवे-हयात के किसी चश्मे में गोते लगा रही हो । मोतियों जैसा झिलमिल-झिलमिल करता पानी ! नीम-गरम-सा, जैसे मुहव्वत में मुग्ध होंठों का सेंक हो । और फिर चारों ओर जैसे साज़ वज उठे । तार झनझनाने लगे। कोई स्वर ऊंचा, और ऊंचा होता जा रहा था । यह कौन गा रहा था ? स्वर में स्वर मिल रहे थे । एक, दो, दस, वीस-सौ-पचास । मरद-औरतों के मिले-जुले सुर । और अव वे नाच रहे थे । दूध-से सफ़ेद कपड़े, वांहों में वांहें, नाच-नाचकर न थकते थे, न हारते थे । नाचते-नाचते आकाश में उड़ने लगते । नाचते-नाचते धरती पर उतर आते ।

ऊपर, नीचे। नीचे, ऊपर। तेज़ और तेज़। साज थक-थक रहे थे। ताल टूट-टूट रही थी, लेकिन नाच की चाल वैसी-की-वैसी थी। बाहों की उठान वैसी-की-वैसी थी। अब किसीने गुलाल लुटाना शुरू कर दिया था। रंगों में से रंग उभरते आ रहे थे। लाल और नीले। हरे और पीले। रंग और रंगों की आभा, रंग और रंगों की चमक-दमक, रंग और रंगों की गहराई; वह तो डूबती चली जा रही थी—कोई उसे अपने बाज़ू में भरकर नीचे और नीचे लिए जा रहा था। जैसे कोई सोए-सोए सागर पर तैर रहा हो। चिकने-चिकने पानियों पर जैसे कोई फिसलता चला जा रहा हो। ···

अचानक किसीके चीखने की आवाज़ सुनाई दी। यह तो ज़ेबा की चीख थी। इस वक्त। आधी रात इधर, आधी रात उधर। बेगम मुजीब झट अपनी मच्छरदानी से निकल, ज़ेबा के पलग पर जा पहुंची। ज़ेबा घबराई हुई थी, परेशान-हाल; फटी-फटी आखें, अपने पलग पर बैठी जैसे अपने-आपको अपनी बाहों में छुपा रही हो।

"वह था, वह।" ज़ेबा की आवाज़ नहीं निकल रही थी।

"कौन था, बेटी?" बेगम मुजीब ने मच्छरदानी हटाकर ज़ेबा को अपने गले से लगा लिया।

"वह था ··· वही था।" ज़ेबा ने अपनी अम्मी की ओर घूर-घूरकर देखा।

"कौन था, बेटी? यहां तो कोई भी नहीं।"

"वह था, महमूद!" ज़ेबा ने कहा और अपनी अम्मी की गोद में सिर रखकर लेट गई। एक क्षण, और फिर वह गहरी नींद सो गई थी।

सपना था। बेगम मुजीब को यकीन था कि यह सपना था। लेकिन फिर भी वह ज़ेबा का सिर उसके तकिये पर टिकाकर, आगन में चारों ओर देखने लगी। उसने बरामदे के कोने में झाका। फिर सामने पेड़ के पीछे। फिर दीवार की परछाईं में। कहीं भी तो कोई नहीं था। आगन की चारदीवारी के बाहर कालू सोया हुआ था। उसकी चारपाई के पास उसका कुत्ता मोती बैठा रहता था। उधर तो कोई चिड़िया भी पर नहीं मार सकती थी।

सपना था, सपना। और फिर बेगम मुजीब अपने पलग पर आकर

वैठ गई। वह भी तो सपना देख रही थी। कितना प्यारा था उसका सपना ! वेगम मुजीम वार-वार अपने विस्तर की चादर को हाथ लगाकर देखती। सपना था, केवल सपना।

## १४

वेगम मुजीव को महमूद अच्छा-अच्छा लगने लगा था। क्यों ? इसका कारण वह स्वयं नहीं जानती थी। अकेली, खिड़की में खड़ी वह अपने मन को टटोल रही थी।

लेकिन वह लड़का था किसका ? वेगम मुजीव ने एक-दो वार जेवा से उसके वारे में वात शुरू की। लेकिन वह तो जैसे उसका नाम तक सुनने को तैयार न हो। उस दिन मां-वेटी में वदमज़गी भी हो गई थी। मेज़ पर खाना खाते हुए, वातों-वातों में महमूद का ज़िक्र आ गया। वेगम मुजीव ने कहा, "मुझे तो यह लड़का वड़ा अच्छा लगता है।"

"तो फिर अम्मी ! आप ही क्यों नहीं ···" पता नहीं क्या वकने लगी थी। आजकल जेवा वहुत मुंहज़ोर होती जा रही थी। उसे जैसे एकदम क्रोध आ गया हो। वह खाना वीच में ही छोड़कर, मेज़ से उठ गई।

इस तरह की परिस्थितियों में वेगम मुजीव का एक नौजवान लड़के के वारे में सोचना, वेशक उसे अजीव-अजीव-सा लग रहा था। पर सच्चाई यह थी कि खिड़की में अकेली खड़ी, वंगले के विशाल लॉन को देखते हुए वह महमूद के वारे में सोच रही थी।

कालू घर के पिछवाड़े, आंगन में ग्वाले को छेड़ रहा था, "तुम कहीं दूध में 'हिन्दू पानी' मिलाकर तो नहीं लाते हो ? चुटिया वाले का कोई भरोसा नहीं। हमारी वेगम साहिवा का ईमान कहीं ख़राव न कर देना। पानी मिलाना हो तो मुसलमानी-मटके में से निकालकर मिलाया कर।"

"लो, मुझे आगे जाकर क्या जवाव नहीं देना पड़ेगा ? और फिर आजकल हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे को एक आंख देख नहीं सकते।"

ग्वाला सुन-सुनकर हंस रहा था, "मैं तो कमेटी के नल का पानी मिलाता हूं जितना भी मुझे मिलाना होता है।"

"नल की भी तो हिन्दू लोग शुद्धि कर लेते हैं।"

"मेरी गाय जो मुसलमान है, मैंने शेखों की मंडी से उसे ख़रीदा था।"

"गाय कैसे मुसलमान हो सकती है? वह तो पैदा भी हिन्दू होती है और मरती भी हिन्दू है।"

"तभी तो मैं कहता हूं, भैंस का दूध लिया करो। लेकिन बेगम साहिबा तो सारी उम्र गाय का दूध ही लेती रही।"

"शुक्र करो, महात्मा गांधी के इन चेलों ने बकरी का दूध शुरू नहीं कर दिया।"

खुद हंस रहे थे। बाक़ी नौकरों को हंसा रहे थे। इनमें बावर्ची था, जमादार था, माली था।

खिड़की में खड़ी बेगम मुजीब को ध्यान आया, कि उसी खिड़की में खड़े होकर वह अपने शौहर की राह देखा करती थी। उसका जीवन तो एक लम्बी प्रतीक्षा थी। इंतज़ार के लमहों की जैसे एक माला पिरोई हो। हर तरह की उसमें कड़ियां जुड़ी थीं। लम्बी प्रतीक्षा की, छोटी प्रतीक्षा की, प्रतीक्षा जो कभी समाप्त न हुई, प्रतीक्षा जो एक क्षणभर के मिलन से संतुष्ट हो गई। इस खिड़की में खड़े होकर वह इंतज़ार करती थी, और उसकी मोटर गेट में से होती हुई पोर्च में आ रुकती थी। कभी उसकी बग्घी के घोड़ों की टाप सुनाई देने लगती। इस खिड़की में खड़े होकर, कई बार उसने पुलिस की हिरासत में उसे जाते हुए देखा था। फूलों के हारों से लदा हुआ, उसे जुलूस में आते हुए देखा था। जब वह आता, इंक़लाब ज़िंदाबाद के नारे गूंज रहे होते, जब वह जाता, इंक़लाब ज़िंदाबाद के नारे गूंज रहे होते।

बेगम मुजीब, खिड़की में खड़ी, इन विचारों में डूबी हुई थी कि उसने देखा कि सामने कोठी का गेट खुला और महमूद आ रहा था। खादी का कुरता, खादी का दूध-सा सफ़ेद पायजामा, पांव में चप्पल। गेट में घुसते ही उसने अपने बढ़े हुए बालों को सिर झटककर पीछे किया। हू-ब-हू इसी तरह उसका शौहर किया करता था। नीचे ज़मीन को देखते हुए, हमेशा

किसी ख़याल में खोया रहता। यूं आंखें नीचे किए हुए, सिर झुकाए कोई देखे तो बाल मुंह पर आ पड़ते ही हैं। और वह कभी हाथों से, कभी सिर झटककर उन्हें पीछे करता रहता।

'आप इन्हें छोटा क्यों नहीं करवा लेते ?' बेगम मुजीब अपने शौहर से कहा करती थी।

'इसके लिए वक़्त कहां से लाऊं, बेगम ?' वह जवाब देता।

'तब तो आप आज़ादी मिलने पर ही बाल कटवाएंगे ?' बेगम मुजीब उसे छेड़ा करती थी।

और अगले क्षण, महमूद के साथ गोल कमरे में बैठी बेगम मुजीब उसे यह बात सुना रही थी। शर्म से महमूद का मुंह लाल-सुर्ख हो गया था। सचमुच उसके बाल कुछ ज़्यादा ही बढ़ गए थे। अपने बालों को, दायें हाथ से पीछे करते हुए वह बोला, "हमें तो आज़ादी अभी मिलनी है।"

"क्या मतलब ?" बेगम मुजीब जैसे तिलमिला उठी हो।

"अम्मी ! बेचारे हिन्दुस्तानी मुसलमान तो कसमपुर्सी की हालत में हैं। आपको मालूम है, अलीगढ़ में हिन्दू-मुसलमान फ़साद शुरू हो गए हैं ?"

"हाय अल्ला ! यह कब ?" बेगम मुजीब तड़प उठी। उसके मायके अलीगढ़ में थे।

"आज सुबह ही।" महमूद ने कहा। यह कहते हुए उसकी ज़बान ज़रा-सी लड़खड़ाई।

"लेकिन हुआ क्या ?" बेगम मुजीब परेशान थी।

"फ़िरक़ावाराना फ़साद शुरू करने के लिए, फ़सादियों की ज़रूरत होती है, बहाना कोई भी ढूंढ़ा जा सकता है।" महमूद बड़ी बेपरवाही से कह रहा था, जैसे एक फ़िरक़े का दूसरे फ़िरक़े से दंगा करना बच्चों का खेल हो।

"कोई वारदातें हुई होंगी ? मेरे तो मायके अलीगढ़ में हैं।"

"किस इलाक़े में वे लोग रहते हैं ?"

"यूनिवर्सिटी के पास।"

"फिर कोई ख़तरा नहीं। फ़साद तो शहर में शुरू हुए हैं।"

"लेकिन यह आग लगी कैसे ?"

"मामला सारा पेट का है। हिन्दू चाहता है कि मुसलमान के मुह की रोटी छीन ली जाए। अलीगढ़ के हिन्दू कहते है कि उनके देवी-देवताओ की पीतल की मूर्तिया जो मुसलमान कारीगर बनाते आ रहे है, अब वे नही बना सकेंगे।"

"यह भी कोई बात हुई ?"

"बस, इसी बात पर फसाद शुरू हो गए।"

"और पुलिस क्या कर रही है ?"

"उसका काम है तमाशा देखना, या फिर हिन्दुओं के साथ मिलकर मुसलमानों के घरों को आग लगाना, निहत्थे मुसलमानों को गोलियों से भूनकर रख देना।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"अम्मीजान ! यह हो रहा है। आपके मायके शहर की गलिया खून से लथपथ हैं। नालियो मे लाशें सड़ रही हैं। कर्फ्यू मे कोई बाहर नहीं निकल सकता।"

"ऐसा कभी नही सुना ! ऐसा कभी नही हुआ !"

"सारी पुलिस हिन्दू है। जो मुसलमान अफ़सर और सिपाही पाकिस्तान चले गए, उनकी जगह भी हिन्दुओ से भरी जाती रही। पुलिस और फ़ौज मे अब मुसलमानों को नौकरी नही मिल सकती।"

"यह मैं कैसे मान सकती हू ?"

"अम्मी ! आपको मानना पड़ेगा। आपकी बेटी बी० ए० पास करके बेकार बैठी है। आपके सामने एम० ए० पास एक नौजवान बैठा है जिसे नौकरी की तलाश है।"

"मै तो सुन-सुनकर हैरान हो रही हू।"

"आपका जवाहरलाल क्या और मौलाना आजाद क्या ? गद्दी पर बैठकर अपने सारे वायदे भूल गए हैं। कम-गिनती के लोगों की किसीको परवाह नही। इस देश मे मुसलमान का जीना हराम है···"

जितनी देर और बैठा रहा, महमूद इस तरह की बाते करता रहा। सुन-सुनकर बेगम मुजीब के कान पकने लगे। उसे अपना-आप मैला-मैला

लगता। आस-पास से एक बू-सी आ रही महसूस होती। महमूद के जाने के बाद वह कितनी देर गुमसुम बैठी रही।

इतने में ज़ेबा आ गई। अम्मी को यूं परेशान देखकर, उसने इसका कारण पूछा।

"लेकिन मैं तो बाहर से आ रही हूं, मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं सुनी। न ही रेडियो पर कोई ख़बर थी।" ज़ेबा हैरान हो रही थी।

"रेडियोवाले भी सरकार के नौकर हैं। जो सरकार कहती है, वही बोलते हैं।" बेगम मुजीब चिन्ताओं में डूबी हुई थी।

उसने जानबूझकर ज़ेबा को नहीं बताया कि महमूद उनके यहां आया था, और वही उसे यह ख़बर सुनाकर गया था।

जब शाम को भी रेडियो पर इसके बारे में कोई ख़बर नहीं आई तो ज़ेबा ने अलीगढ़ टेलीफ़ोन किया। अलीगढ़ में तो सुख-चैन था।

और मां-बेटी आराम की नींद सो गईं।

## १५

अगले दिन सुबह रेडियो की ख़बरों में अलीगढ़ के दंगों का ज़िक्र था। रेडियो बोल रहा था, फ़साद पिछली रात अचानक भड़क उठे। और फिर अख़बार भी साम्प्रदायिक दंगों की कहानियां लेकर आ गए।

शहर की तंग गलियों में घर लूटे जा रहे थे। मकान जलाए जा रहे थे। बाज़ारों में छुरेबाज़ी हो रही थी। बम फट रहे थे। गोलियां चल रही थीं। कोई कह रहा था, मुसलमानों का ज्यादा नुक़सान हो रहा था; कोई कहता, ज्यादा हिन्दू मारे जा रहे थे। कोई कहता, शरारत हिन्दुओं ने शुरू की थी। कोई कहता, इस बार दोष मुसलमानों का था। शहर में कर्फ़्यू लगा दिया गया था। पुलिस गुंडों की पकड़-धकड़ कर रही थी। उनमें से ज्यादातर लोग रू-पोश हो गए थे। विद्यार्थियों में तनाव था। विश्वविद्यालय बंद कर दिया गया था। परीक्षाएं स्थगित कर दी गई थीं।

फौज को तैयार रहने के लिए कह दिया गया था। [illegible] से पुलिस टुकड़िया अलीगढ़ रवाना [illegible] राज्य के कई मंत्री अलीगढ़ पहुंच रहे थे। [illegible] साम्प्रदायिक दंगों की भर्त्सना की थी। [illegible] कमेटियां बनाने के लिए कहा जा रहा था।

ख़बरें पढ़ते-पढ़ते, अख़बार उसके हाथों से [illegible] पहले, आजादी के बाद, हर साम्प्रदायिक [illegible] पुलिस को इसका पता होता, न उन्हें [illegible] जहा अल्पसंख्यक होते, उनपर [illegible] मुसलमानों पर, मुसलमान हिन्दुओं पर। [illegible] चौकस की जाती। फ़ौज को बुलाया जाता। [illegible] स्थल पर पहुचते। दिल्ली से बयान [illegible] बनाई जाती। बेगम मुबीन सोचती. [illegible] भी फसाद होते ही रहते। गरीबों का [illegible] बेकसूर लोग मरते ही रहते।

जब फ़साद रुकते, जांच-कमेटियां [illegible] कोई खबर नही आती थी। शायद उनकी [illegible] दी जाती।

कालू को शायद उसका पता मालूम होगा। पूरे शहर में कौन था, जिसे कालू नहीं जानता था। और वही वात हुई, इधर वेगम के मुंह से निकला, उधर कालू साइकिल पर जाकर महमूद को वुला लाया।

जितनी देर वेगम मुजीव के यहां वह वैठा, महमूद हिन्दू-फ़िरक़ापरस्ती की निन्दा करता रहा। क़ायदे-आज़म के गुण गाता रहा।

उसकी नज़र में, हिन्दुस्तान में मुसलमानों के साथ क़दम-क़दम पर सौतेला व्यवहार हो रहा था। साम्प्रदायिक दंगे तव तक चलते रहेंगे जव तक मुसलमानों को नौकरियों में उनका पूरा हिस्सा नहीं दिया जाता। जव तक हर तरह के उद्योग और व्यापार में उनका हौसला नहीं वढ़ाया जाता।

यह वात वेगम मुजीव की समझ में भी आ रही थी। अगर पुलिस में मुसलमान भरती किए जाएंगे तो वे अल्पसंख्यकों पर अत्याचार नहीं होने देंगे। और अगर मुसलमानों के अपने कारख़ाने और अपना व्यापार होगा तो गुंडागर्दी और आतिशज़नी से उनका भी उतना ही नुक़सान होगा, जितना और किसीका। लेकिन जो वात वेगम मुजीव को परेशान कर रही थी, वह महमूद का वार-वार पाकिस्तान का ज़िक्र करना था। जैसे किसीकी आंखें सरहद के पार लगी हों। उसे पाकिस्तानी लीडरों में कोई वुराई दिखाई नहीं देती थी। उसकी सहानुभूति पाकिस्तान की जनता के साथ थी। उस देश की हर भूल के लिए उसके पास कोई-न-कोई औचित्य था। अपने देश की हर ग़लती को वह वढ़ा-चढ़ाकर पेश करता था। उसका जिस्म भारत में था, मगर रूह पाकिस्तान में थी। इतनी देर से, उसके पास वैठे, वातें करते हुए उसने एक वार भी भारत को अपना देश नहीं कहा था।

वेगम मुजीव हैरान थी, फिर भी यह लड़का उसे नापसंद नहीं था। उसकी वातों में उसे एक तरह की दिलचस्पी महसूस हो रही थी। और फिर वेगम मुजीव ने उसे दोपहर के खाने लिए रोक लिया।

वातों-वातों में वेगम मुजीव को पता चला कि महमूद के अव्वा की शहर के वाहर ढेर-सारी ज़मीन थी। इसमें से कुछ ज़मीन सरकार ने विजली-घर के निर्माण के लिए अपने क़ब्ज़े में लेकर लाखों रुपयों का

मुआवज़ा दिया था, लेकिन फिर भी सरकार पर उन्होंने मुक़दमा कर रखा था। निचली अदालत में हार गए थे, अब हाई-कोर्ट में अपील कर रखी थी। उनका वकील कहता कि दो-चार लाख रुपया वह उन्हें और दिलाकर रहेगा। बाकी ज़मीन पर वे सब्ज़ी उगाते थे। पिछले साल भी उन्होंने ऐसा ही किया था—और उससे पिछले साल भी। "आख़िर सब्ज़ियां ही क्यों? और कुछ क्यों नहीं?" बेगम मुजीब ने पूछा।

"इसलिए कि जब जो चाहे, आदमी सब्ज़ी की फ़सल को बेचकर आगे चल सकता है।"

"क्या मतलब?"

"क्या पता हम मुसलमानों को कब यह मुल्क छोड़ना पड़े?"

बेगम मुजीब ने यह सुना तो उसके पांव के नीचे से मानो धरती सरक गई। कई लोग कैसी-कैसी बातें सोचते हैं?

"हम पहले गेहूं···और धान लगाते थे। अब टमाटर, गोभी और ऐसी ही सब्ज़ियां लगाते हैं। आज उगाओ, कल खा लो।"

महमूद यूं बोलता चला जा रहा था कि बेगम मुजीब ने उसका ध्यान बटाने के लिए उससे पूछा, "आपके दूसरे भाई-बहन क्या करते हैं?"

"बस, एक बहन है। जिसे अम्मीजान लेकर आजकल पाकिस्तान गई हुई हैं। अगर कोई ढंग का लड़का मिल गया तो उसका रिश्ता कर देंगे।"

"लेकिन उन्हें अपने देश में कोई लड़का दिखाई नहीं दिया?" बेगम मुजीब ने पूछा।

"अम्मी, क्या इस तरफ़ कोई काम का मुसलमान बाक़ी रह गया है?"

"क्यों, मेरे सामने एक बैठा है।" बेगम मुजीब ने अर्थ-भरी नज़रों से महमूद की ओर देखते हुए कहा। जैसे वह अपने मन की बात को कह डालने में सफल हो गई हो, वह खिल-सी गई। और फिर वह उठकर बावर्चीख़ाने की ओर चली गई।

बेगम मुजीब की इस बात पर महमूद जैसे विभोर हो उठा। एक नशे-नशे में, मदमस्त, उसकी आंखें मुंदी जा रही थीं। अकेला, बिल्कुल अकेला, गोल कमरे के सोफ़े पर बैठा हुआ वह सोचने लगा—'ज़ेबा के साथ उसकी

ग़लतफ़हमी अव जल्दी ही दूर हो जाएगी।' ज़ेवा की अम्मी का 'वोट' अव उसकी जेव में था। अव ज़ेवा भागकर कहीं नहीं जा सकती थी। वड़ी मुंहज़ोर लड़की थी। लेकिन हर हसीन औरत मुंह-ज़ोर होती है। हर हसीन औरत में खुद-दारी होती है, ग़रूर होता है। ज़ेवा जैसी लड़की अगर उसके हाथ लग जाए तो उसके मज़े हो जाएंगे। उनकी पार्टी को वड़ा सहारा मिलेगा। यूं कुछ दिन ऐसे ही, वह वेलगाम फिरती रही तो महमूद को डर था कि वह किसी ऐरे-ग़ैरे के साथ चल देगी। एक वहन पहले ही लुटिया डुवो चुकी थी। महमूद सोचता, दोष इन लड़कियों का नहीं था। एक तो उनके अव्वा की तवीयत ही ऐसी थी, और दूसरा, वेवा औरत की औलाद वड़ी वे-कावू होती है।

महमूद देखकर हैरान रह गया। खाने की मेज़ पर वेगम मुजीव ने इतना तक़ल्लुफ़ किया हुआ था। कवाव और कोरमा। विरयानी और दही की चटनी।

उन्होंने खाना शुरू ही किया था कि ज़ेवा आ टपकी। महमूद को खाने की मेज पर वैठे देखकर उसके माथे पर वल पड़ गए। कहने लगी, "मैं किसी सहेली के यहां खाने वैठ गई थी, इसलिए मुझे देर हो गई।" और फिर वह दो-चार मिनट इधर-उधर की वातें करने के वाद, अपने कमरे में चली गई।

महमूद को खाना खाकर गए हुए वहुत देर नहीं हुई थी कि वेगम मुजीव ने देखा कि खाने की मेज पर वैठी ज़ेवा खाना खा रही थी।

'हू-व-हू अपने वाप पर है।' वेगम मुजीव ने मन-ही-मन कहा।

## १६

खाना खाते हुए ज़ेवा को अचानक ध्यान आया कि पिछले रोज़ जव अम्मी ने अलीगढ़ के दंगों का ज़िक्र किया था, उन्हें इस वारे में महमूद ने

ही बनाया होगा। रेडियो और समाचारपत्रों के अनुसार साम्प्रदायिक दंगे पिछली रात शुरू हुए थे। उसे यह ख़बर पहले ही कैसे मिल गई, दंगे शुरू होने से पहले ही? ज़ेबा का बार-बार जी चाहता कि वह अम्मी से पूछे कि अलीगढ़ के फ़सादों की खबर उन्हें किसने दी थी। लेकिन फिर वह इसे टाल जाती। महमूद के लिए उसके मन में इतनी घृणा थी कि वह उसका नाम तक लेने को तैयार न थी। और इधर उसकी मां थी, मानो उसकी दीवानी हो। बुला-बुलाकर उसकी दावतें कर रही थी।

यूं लगता था, जैसे उस दिन कुछ होकर रहेगा। ज़ेबा, मेज़ पर बैठी, अकेली, खाना खा रही थी। नौकर छुट्टी कर गए थे। ज़ेबा स्वयं ही बावर्चीख़ाने में गई, और प्लेट परोसकर ले आई। मां-बेटी खाने के कमरे में अकेली थी।

"बेटी! तुम हमारे साथ ही खाना खा लेती! अब हर एक चीज़ ठंडी हो गई है।" बेगम ने ज़ेबा के सामने मेज़ पर बैठते हुए कहा।

"अम्मी! आपको मालूम है, यह आदमी मुझे अच्छा नहीं लगता।" ज़ेबा कहने लगी। वह कोशिश कर रही थी कि वह ख़फ़ा न लगे।

"लेकिन उसमें ख़राबी क्या है? मुझे भी तो पता चले?" अम्मी सचमुच यह भेद जानने को उत्सुक थी। कोई दिन थे, जब ज़ेबा महमूद पर फ़िदा थी। बेगम मुजीब ने ख़ुद अपनी आंखों से उन्हें गोल कमरे में अटपटी हालत में देखा था।

ज़ेबा ने अम्मी के सवाल का जवाब देना उचित न समझा। खाना खाते हुए उसने जग में से पानी गिलास में उडेला और फिर पीने लगी।

"खाते-पीते घर का लड़का है। पढ़ा-लिखा। ऊंचा-लंबा। खूबसूरत।" अम्मी बोल रही थी।

ज़ेबा चुप थी।

"आजकल अच्छे लड़के मिलते कहां हैं? ख़ुद महमूद की बहन के लिए लड़का ढूंढने वे पाकिस्तान गए हुए हैं।"

ज़ेबा वैसी-की-वैसी ख़ामोश, खाना खा रही थी। खाते-खाते, मां को ओर टुकुर-टुकुर देख रही थी।

"कित्ता मिठ-बोला लड़का है! कित्ता सलीके वाला! कैसे प्यारी

तरह मुझे अम्मी कहकर बुलाता है…"

ज़ेबा को अपनी मां पर तरस आ रहा था। यह वही मां थी जो एक दिन इसका सिर उसके घुटनों पर देखकर वेहोश हो गई थी।

"अगर तुम्हारी नजर में कोई और है, तो मुझे वता दो—अपनी अम्मी को। मैंने कव अपने वच्चों के मामलों में दख़ल दिया है?"

"अम्मीजान! आपको क्या जल्दी पड़ी है? अगर आप मुझसे जान छुड़ाना चाहती हैं तो मैं वैसे ही घर से चली जाती हूं।"

"जो मुंह में आता है—वक देती हो। क्या फ़िज़ूल वोले जा रही हो?"

ज़ेवा हंस दी।

"मेरा मतलव है, हर काम के लिए वक़्त होता है। तुम्हारी पढ़ाई अव ख़त्म हो गई है। अव तुम्हें अगले पड़ाव की तैयारी करनी चाहिए।"

"किसीका घर वसाना चाहिए। किसीके आंगन में वच्चे खेलने चाहिएं। फिर वच्चों के वच्चे। फिर उनके वच्चे। वेचारा मेरा देश हिन्दुस्तान।"

"फिर तुम यूंही वैठी रहना। तुम्हारे जैसी जो मीन-मेख निकालती हैं, उनकी गाड़ी छूट जाया करती है। अपने पड़ोस में खान-वहादुर की वेटी की तरफ़ देखो। वाल सफ़ेद हो गए हैं और अभी तक हाथ पीले नहीं हुए। कोई वक़्त था, लड़के वाले उनकी दहलीज पर माथा रगड़ते रहते थे। अव कोई उधर झांकता तक नहीं।"

"तो फिर क्या हुआ, अम्मी! कम्मो आपा स्कूल में पढ़ाती है। अपने काम में खुश रहती है।"

"देखती नहीं, कैसे साइकल पर टांग चलाती, हर रोज़ स्कूल जाती है। इतने वड़े वाप की वेटी, अगर उसने व्याह कर लिया होता तो आज उसके नीचे मोटर होती। अपना घर-वार होता। नौकर-चाकर होते। मजे करती। उसकी हमउम्र माएं वन चुकी हैं। उनके वच्चे भी उसके स्कूल में पढ़ते हैं। उस दिन मुझे वता रही थी—'आंटी-आंटी' कहते रहते हैं।'"

ज़ेवा का खाना ख़त्म हो चुका था। अम्मी अभी वोल रही थी, और वह सामने वाश-वेसन में हाथ धोने लगी।

"अम्मी! मैं वादा करती हूं," तौलिया से हाथ साफ़ करते हुए ज़ेवा,

बेगम मुजीब की ओर आई, और उसे कंधों से पकड़कर उसकी आंखों में आंखें डालकर कहने लगी, "अम्मी ! मैं वादा करती हूं कि शादी के मामले में मैं आपको परेशान नहीं करूंगी…नहीं करूंगी।"

बेगम मुजीब की आंखों में आंसू आ गए। "बेटी, अगर तुम्हारे अब्बा आज होते तो मुझे किसी बात की फ़िक्र नहीं थी। अब जिम्मेदारियां जो मेरे सिर पर आ पड़ी हैं। बेटा कहीं बैठा है। उसकी चिट्ठी के इंतजार में आंखें दुखने लगती हैं।"

अपनी मां की आंखों में आंसू देखकर ज़ेबा भी भावुक हो गई।

"लेकिन इस लड़के महमूद में ख़राबी क्या है?" अवसर देखते हुए बेगम मुजीब ने अपनी बात आगे चलाई।

ज़ेबा खामोश हो गई।

"मैं जब उसका नाम लेती हूं, तुम खामोश हो जाती हो। आख़िर मुझे भी तो पता चले कि असल में बात क्या है?" बेगम मुजीब दो-टूक फ़ैसले पर तुली हुई लगती थी।

"अम्मी ! मैंने महमूद को बहुत पास से देखा है। वह बहुत ग़लत आदमी है।"

"मर्द जात ! कोई-न कोई ऐब हर एक में होता है।" बेगम मुजीब के भीतर का अनुभव बोल रहा था।

"कई ऐब होते हैं जो नजरअंदाज किए जा सकते हैं, लेकिन कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें माफ नहीं किया जा सकता।"

"मुझे भी तो पता चले।" अम्मी अपनी जिद पर अड़ी थी।

"महमूद, उसकी अम्मी, उसके अब्बा, इस देश में यूं रहते हैं जैसे परदेसी हों।"

"यह तो मुझे भी महसूस हुआ है। उन लोगों की नजरें जैसे सरहद के पार लगी हों। लेकिन इसमें परेशान होने की बात क्या है? उन जैसे कई और हिन्दुस्तानी मुसलमान हैं। वक्त आने पर खुद ही समझ जाएंगे।"

"महमूद जैसे लोग कभी नहीं समझेंगे। ये लोग तो जैसे पर तोल रहे पखेरू हों। किसी वक्त भी उड़ान भरकर सरहद पार चले जाएंगे।"

"लेकिन हमारे बहु-गिनती वालों को भी कम-गिनती वालों के हक-

हुक़ूक़ का ख़याल होना चाहिए।"

"यह वात मेरी समझ में कभी नहीं आई," ज़ेवा चिढ़कर वोली, "सारे हक़ कम-गिनती वालों के ही क्यों होते हैं ? कोई हक़ वहु-गिनती वालों का भी होता है।"

"ज़वान को ही लो—उर्दू के मामले में हमारी सरकार की गफ़लत मुझे ज़्यादती लगती है।"

"उर्दू के वारे में गफ़लत उर्दू वोलने वालों की तरफ़ से हो रही है।"

"इसलिए कि सरकार उनपर ज़वरदस्ती हिन्दी थोप रही है।"

"यही तो मेरी शिकायत है। आख़िर वहु-गिनती वाले अपनी ज़वान की सरपरस्ती क्यों न करें ? जो हक़ हम अपनी ज़वान के लिए मांगते हैं, वह हक़ हम अपने पड़ोसी को क्यों नहीं देते ? इसलिए कि वो वहु-गिनती में हैं ?"

"मेरी नज़र में यही एक वजह है कि हिन्दुस्तानी मुसलमान पाकिस्तान पर अपनी आंखें जमाए हुए हैं।"

"क्या पाकिस्तानी हकूमत में पंजावी ग्रुप, पूर्वी पाकिस्तान में अपनी ज़वान नहीं ठूंस रहा ?···कि अगर आप वंगला नहीं छोड़ना चाहते तो उसे फ़ारसी लिपि में लिखना शुरू कर दो। उस दिन इसी वात पर ढाका में कई वंगालियों को गोली से उड़ा दिया गया। अगर पाकिस्तानी वंगालियों को उर्दू पढ़ने के लिए मजवूर कर सकते हैं फिर अगर हमें हिन्दी सीखने के लिए कहा जाए तो इसमें कौन-सी ज़्यादती है ? पाकिस्तानी कश्मीर को अपने साथ मिलाने की वात सोच रहे हैं। मुझे तो लगता है कि वो वंगाल को भी अपने हाथ से गंवा वैठेंगे।"

ज़ेवा आवेश में आ गई थी। वेगम मुजीव ने वात वहीं समाप्त कर देना उचित समझा।

अलीगढ़ में स्थिति अभी आम दिनों जैसी नहीं हुई थी। अभी रात को कर्फ़्यू लगता था कि एक सुबह, ज़ेबा अपने ननिहाल जाने के लिए तैयार हो गई। अगर यह उसकी इच्छा थी तो उसे कौन रोक सकता था ?

चाहिए तो यह था कि बेगम मुजीब भी अपनी बेटी के साथ मायके हो आतीं। लेकिन इन दिनों उनने घर छोड़कर जाना उचित नहीं समझा। उनके अब्बा की, सिविल लाइन में कोठी थी। इस क्षेत्र में अमन-चैन था। कोई ख़ास ख़तरे की बात नहीं थी।

वास्तव में महमूद उसकी आंखों को भा गया था, और वह चाहती थी कि उस लड़के को किसी तरह ज़ेबा से बांध दिया जाए। ज़ेबा नहीं मान रही थी; धीरे-धीरे उसे मनाया जा सकता था। लड़कियों का क्या है; खाते-पीते घर का पढ़ा-लिखा, ख़ुश-अक्ल लड़का था। किसीको और क्या चाहिए ? जहां तक उसके मज़हबी कट्टरपन का सवाल था, यह तो अच्छा ही था कि उसके कारण उसमें और कोई दोष नहीं था। उनका मियां कई बार परेशान होकर कहा करता था—'हर हिन्दुस्तानी हिन्दू महासभायी है, हर हिन्दुस्तानी मुसलमान मुस्लिमलीगी है। हर हिन्दुस्तानी सिख, अकाली है। मुझे कांग्रेसी तो कोई इक्का-दुक्का ही नज़र आता है। कांग्रेसी तो बस एक गांधी है या जवाहरलाल नेहरू या फिर मौलाना आज़ाद, या रफ़ी अहमद क़िदवई···'

उस शाम महमूद उनके यहां आया हुआ था। जब से ज़ेबा अलीगढ़ गई थी, वह प्रायः बेगम मुजीब से मिलने आ जाता था।

जवान-जहान बच्चों की मां, बेगम मुजीब में एक अकथनीय सौंदर्य था, जो उसने अभी तक सभाल-सभाल रखा था। एक सलीक़ा, एक उदारता, एक निष्कपटता। हंसती हुई मोटी-मोटी काली आंखें, विशाल खुला माथा, खिला हुआ, दमक रहा। आयु के साथ बीच-बीच में पके हुए बाल, उसके काली लटों को जैसे दुलरा रहे हों। गोरा रंग, अभी तक उसके गालों पर एक लालिमा का आभास था। ऊंची-लंबी, जैसे कोई मुग़ल-पटरानी हो। उस दिन उसने ग़रारा पहना हुआ था। चिकन का

कुरता। सिर पर फिसलती रेशमी चुनरी। एक ख़ुशबू-ख़ुशबू-सी उसके साथ आई, जब उसने कमरे में क़दम रखा।

महमूद पर एक जादू का-सा प्रभाव हो रहा था। एक नशा-नशा-सा उसे चढ़ता जा रहा था। चाय के बाद, बेगम मुजीब अपने हाथ से लगा-कर पान उसे खिला रही थी। पान लगाते हुए, उसके साथ इधर-उधर की बातें भी करती जा रही थी। पहली बार आज महमूद का जी चाहा कि वह बस आज जेबा की अम्मी को सुनता जाए, सुनता जाए। जैसे कोई संगीत के माधुर्य में एकरस हो जाता है, ऐसा उसे महसूस हो रहा था।

"क़ायदेआज़म जिन्नाह बेशक मुस्लिम लीग को क़ायम करने वालों में से थे, लेकिन वो लीगियों में सबसे ज्यादा तरक्कीपसंद थे। अगर वे ज़िंदा रहते तो पाकिस्तान को- एक इस्लामी राज कभी न बनने देते। वो तो हमेशा यही कहते रहे कि पाकिस्तान बनने के बाद वहां का कोई भी शहरी अब मुसलमान, हिन्दू, या ईसाई नहीं, सब पाकिस्तानी हैं।

"१९३४ में जिन्नाह ने कहा था—'मैं पहले हिन्दुस्तानी हूं, फिर मुसलमान।' ११ अगस्त, १९४७ को पाकिस्तान की आइन साज़ एसेम्बली के सामने उन्होंने फ़रमाया—'चाहे कोई मंदिर में जाए, या चाहे मस्जिद, या किसी और जगह इबादत करे, किसीका कोई मज़हब हो, कोई जात हो, कोई अक़ीदा हो उसके बुनियादी हक़ों से इसका कोई वास्ता नहीं है। हम सब एक मुल्क के, बराबर के शहरी हैं।'

"पाकिस्तान में हर पांच बच्चों में से एक भुखमरी का शिकार हो जाता है; मैं कहीं पढ़ रही थी कि १९४९-५० में पाकिस्तान के आम आदमी को २०१० कैलोरी नसीब होती थी, अब कम होकर ये १९७० हो गई हैं। पाकिस्तान टाइम्ज़ की एक ख़बर के मुताबिक, जेहलम में किसीने अपने बेटे को बाईस रुपये में बेच डाला ताकि उसके मां-बाप चार रोज़ पेट भरकर खाना खा सकें। पश्चिमी पाकिस्तान में ६००० किसान, तैंतीस लाख खेतिहर कुनबों से ज्यादा ज़मीन दाबे बैठे हैं।

"पाकिस्तान में प्रेस की कोई आज़ादी नहीं। पाकिस्तान टाइम्ज़, इमरोज़, लैलो-निहार जैसे अख़बारों को सरकार ने अपने कब्ज़े में ले लिया है। जनरल अयूब कहता है—गरम मौसम वाले देशों में जम्हूरियत

नहीं पनपती। जम्हूरियत बस ठंडे मुल्कों में ही जिन्दा रह सकती है। पाकिस्तान के किसी वजीर का जब मुल्क में अनपढ़ता की तरफ़ ध्यान दिलाया गया तो उसने जवाब दिया—आख़िर हमारे पैगंबर भी तो अनपढ़ थे।

"पाकिस्तान में पूर्वी बंगाल के साथ एक कालोनी जैसा सलूक किया जाता है, चाहे वो लोग पश्चिमी पाकिस्तान से गिनती में कहीं ज्यादा हैं। उनकी ज़बान को दबाया जा रहा है। हर साल पश्चिमी पाकिस्तान वाले पूर्वी पाकिस्तान के करोड़ों रुपये हड़प कर जाते हैं। १९४८ से १९५१ तक देश की तरक्की पर जितनी रक़म खर्च की गई, उसका बस २२'१ फ़ीसदी हिस्सा पूर्वी पाकिस्तान के लिए रखा गया। यह लूट-खसूट वो लोग कब तक सहेंगे? किसी दिन नाव डूब जाएगी। बंगाली कभी भी पंजाबियों की अजारादारी क़बूल नहीं करेंगे।

"और अब सुना है, उन्होंने अमरीका से दोस्ती गांठ ली है। दोस्ती क्या गांठी है, अपने-आपको अमरीकनों के हाथ बेच डाला है। खुराक़ की मदद के लिए, और हथियारों की ज़रूरत पूरी करने के लिए अपने देश को गिरवी रख दिया है। १९५० में लियाकत अली खां अमरीका दौरे पर गए। १९५१-५२ में अमरीकी डालर पाकिस्तान में पानी की तरह बहने लगे। इनके साथ सलाहकार भी आए और माहिर भी। अमरीका की विदेशी पालिसी, पाकिस्तान की विदेशी पालिसी बन गई। आज डालर पाकिस्तानी राजनीति पर पूरी तरह से हावी है। अमरीका से दोस्ती का मतलब है—अमरीका के दोस्तों के साथ दोस्ती, अमरीका की दक्षिणी वियतनाम, कोरिया, फारमूसा, पश्चिमी एशिया की पालिसी के साथ पाकिस्तान की सहमति।"

जैसे कोई तसवीर बोल रही हो, महमूद उन्मत्त-सा बेगम मुजीब को सुन रहा था। उसके चेहरे से जहानत टपक रही थी। बेगम मुजीब की एक-एक बात उसके दिल को छूती हुई प्रतीत होती थी। महमूद का दिमाग बेगम मुजीब की किसी बात को मानने के लिए तैयार नहीं था, लेकिन फिर भी वह यह सब कुछ सुनता जा रहा था। इससे इंकार करने को जैसे उसका जी न चाह रहा हो। कितनी प्यारी वह मां थी! कितना

अपनापन ! ग़ज़ब का हुस्न होगा इस औरत में, जब वह जवान रही होगी !

महमूद कहना चाहता था, अगर कांग्रेस फ़िरक़ापरस्त नहीं है तो हर चुनाव में मुसलमानों के इलाक़ों में से मुसलमान उम्मीदवार ही क्यों खड़े किए जाते हैं ? चाहे चुनाव कमेटी के हों, चाहे एसेम्बली के, चाहे पार्लियामेंट के। मौलाना आज़ाद तक को हरियाणा की मुस्लिम वोटों से जिताया जाता है। लेकिन महमूद के जैसे होंठ न खुल रहे हों। वह अवाक्-सा बेगम मुजीब के चेहरे की ओर देखता जा रहा था, जैसे कोई दोषी किसी कटहरे में खड़ा किया गया हो।

"मैं यह मानती हूं कि इधर हम हिन्दुस्तानी भी कोई फ़रिश्ते नहीं हैं।" बेगम मुजीब महमूद की मजबूरी को भांप कर बात आगे चला रही थी, " हम शिवाजी को हमेशा एक हिन्दू सूरमा के तौर पर पेश करते रहे हैं—जो सारी उम्र मुग़लों से लड़ता रहा। और यह बात हम भूल जाते हैं कि उसके बारूदख़ाने का दरोग़ा मुसलमान था। महाराजा रणजीतसिंह ने मुलतान के मुसलमान वैरी के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए अपनी फ़ौज का मुसलमान जरनैल भेजा था। महाराजा रणजीतसिंह का विदेशी मामलों का वज़ीर मुसलमान था। कई मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं के मंदिर बनवाए। दिल्ली के हुक्मरान मुहम्मदशाह ने बौद्ध गया के मंदिर के नाम जागीर लगवाई। देश में सबसे बड़ी ज़मींदारी दरभंगा, एक ब्राह्मण को उसकी लियाक़त के लिए अकबर ने बख़्शी थी। कश्मीर का बादशाह जैनुल-आबदीन हमेशा अमरनाथ की यात्रा पर जाता था। हैदराबाद में अभी कल तक एक दरगाह का मुतवल्ली एक ब्राह्मण था। और हैदराबाद का निज़ाम उस दरगाह पर हाज़िर हुआ करता था।

" पंजाब में, बिहार में, बंगाल में हिन्दुओं और मुसलमानों का रहन-सहन एक-सा है। एक-जैसे वे कपड़े पहनते हैं। एक जैसे लोक-गीत, एक जैसी लोककथाएं वे सुनते-सुनाते हैं।

" मैं यह भी मानती हूं कि इधर हिन्दुस्तान में क्या और उधर पाकिस्तान में क्या, कई बार हिन्दू-मुसलमान दंगे इसलिए भी कराए जाते हैं ताकि लोगों का ध्यान सरकार की अपनी कमज़ोरियों से हटाया जा सके। कहीं क़ीमतें बढ़ रही हैं और कहीं बेकारी लोगों को सता रही है। कहीं

अमीर और ग़रीब में खाई बढ़ती चली जा रही है।"

शाम ढलने लगी थी। हल्का-हल्का अंधेरा होने लगा था। बेगम मुजीब हाथ बढ़ाकर बत्ती जलाने लगी थीं कि महमूद उठ खड़ा हुआ। जैसे शक्कर में लिपटी हुई कुनीन की गोलियां कोई किसीको खिला रहा हो, कुछ ऐसा महमूद को महसूस हो रहा था। आज की खुराक ज़्यादा हो चुकी थी। इससे ज़्यादा वह शायद पचा न सके। बेगम मुजीब तो अपने प्यारे अंदाज़ में बोलती चली जा रही थीं।

उनकी कोठी से एक क़दम बाहर निकलते ही, जैसे कोई जानवर बरसात में अपने ऊपर पड़ी बूंदों को झटक देता था, महमूद ने अपने सिर को दायें-बायें हिलाकर बेगम मुजीब की सारी नसीहत को भुला दिया।

'इनको अभी हाथ नहीं लगे हैं।' महमूद दिल-ही-दिल में कह रहा था। 'हाथ लगे भी हैं, लेकिन अभी समझ नहीं आई है। एक बेटी गवा बैठी है, जब दूसरी भी हाथ से निकल जाएगी तब बेगम साहिबा को अक़्ल आएगी।'

## १८

ज़ेबा के नाना नक़वी रोड पर रहते थे, शहर और यूनिवर्सिटी के बीचोबीच। शहर में कर्फ़्यू लगातार चल रहा था। तनाव वैसे-का-वैसा बना हुआ था। रात के अंधेरे में उसी प्रकार गोलियां चलती थीं। इसी प्रकार आते-जाते किसी बेचारे ग़रीब को छुरेबाज़ी का शिकार बनाया जा रहा था। वैसी-की-वैसी अचानक नारेबाज़ी होने लगती 'अल्लाह हू अकबर' और 'हर-हर महादेव'! जगह-जगह हिन्दुओं को उत्तेजित करने वाले इश्तिहार हिन्दी में लगे थे। मुसलमानों को भड़काने वाले इश्तिहार उर्दू में लगे थे। मुसलमान मुहल्लों में दीवारों पर 'पाकिस्तान ज़िंदाबाद' लिखा हुआ था। पुलिस वाले मिटाकर जाते, इधर उनकी पीठ होती, उधर फिर कोई लिख जाता। जैसे आंख-मिचौनी खेली जा रही हो।

सांझ ढल रही थी जब ज़ेबा अपने ननिहाल पहुंची। वह देखकर हैरान रह गई, कोठी के एक ओर, घास के विशाल लॉन के ठीक बीच में बैडमिंटन चल रहा था। जवान-जहान लड़के-लड़कियों का खेल जारी था। उनके मां-बाप, बड़े-बूढ़े बैडमिंटन कोर्ट के आस-पास बैठे, खड़े हंस रहे थे, गप-शप कर रहे थे। इनमें उनके पड़ोसी राय साहब राम जवाया का कुटुम्ब भी था; सड़क पार कोठी वाले सरदार नसीबसिंह का बेटा और बहू भी थे।

कुछ देर के बाद, जब रोशनी कम हुई तो बैडमिंटन-कोर्ट के दोनों ओर लगे बिजली के बल्ब जग-मग-जग-मग करने लगे।

"हद हो गई, हमने तो सुना है कि आपके शहर में दंगे हो रहे हैं।" कुछ देर के बाद ज़ेबा बोली। अभी तक वह घरवालों से मिल रही थी। अड़ोसी-पड़ोसियों से उसकी मुलाक़ात कराई जा रही थी।

"फ़साद अपनी जगह है, बैडमिंटन अपनी जगह है।" सरदार नसीब-सिंह की पंजाबिन बहू बोली।

"इन लोगों को तो और कोई काम ही नहीं।" ज़ेबा की मामी कह रही थी। हैदराबाद दक्कन की तिलंगन, उसके चेहरे पर क्षण-भर के लिए एक घृणा-सी झलकने लगी।

"लाओ बीबी, पान खिलाओ। तुमने यह नई लत हमें लगा दी है।" पंजाबिन कह रही थी।

"तुमने भी तो हमें लस्सी पीना सिखाया है। मेरे मियां तो एक निवाला गले से नहीं उतारते, जब तक लस्सी मेज़ पर न हो।"

इतने में राय साहब राम जवाया की बेटी स्वर्णा अपने भाई राजीव के साथ, खेल ख़त्म करके, कोर्ट से बाहर निकली। स्वर्णा ज़ेबा से बग़लगीर हो गई। उनकी पुरानी जान-पहचान थी। राजीव को भी वह जानती थी, लेकिन कई बरसों से उनकी मुलाक़ात नहीं हुई थी। वह विलायत पढ़ने गया हुआ था। कितना सुन्दर जवान निकला था! डाक्टरी की डिग्री लेकर आया था। एफ० आर० सी० एस०; और मालूम नहीं क्या-क्या? ज़ेबा ने अपनी दाईं बांह उठाकर, सिर झुकाते हुए, अवधी अंदाज़ में उसे आदाब करने की कोशिश की, लेकिन राजीव ने आगे

बढ़कर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। "क्यों भाई, पिछली बार इसी लॉन में हमने शे'रबाजी की थी, जिसमें अकेली तुमने, हम तीन लड़कों को हराया था। आजकल तुम्हारे शे'रों के जखीरे का क्या हाल है?"

जेबा को एकाएक चांदनी रात का वह दृश्य याद आ गया। गर्मियों के दिन थे। लॉन की घास पर बैठे हुए उनमें होड़ लग गई थी। एक ओर वह अकेली थी और दूसरी ओर वे तीन लड़के थे। जेबा ने उनको मात दे दी। कई वर्ष बीत चुके थे। तोबा! तोबा! कितने शे'र जेबा को जबानी याद थे।

"आज भी हाजिर हूं।" जेबा ने हसते हुए कहा। उसका हाथ अभी तक राजीव के हाथ में था। एक जवान-जहान मर्द के हाथ में। एक नजर उन्होंने एक-दूसरे की आखों में देखा, और जेबा को लगा, जैसे उसका, एक कुंवारी लड़की का नाजुक हाथ राजीव की मुट्ठी में पारे की तरह मचल रहा हो।

"लेकिन अब तो सुना है, आपको हिन्दी भी लाजमी तौर पर पढ़नी पड़ी है।" राजीव कह रहा था।

"इसमें परेशान होने की कोई बात नहीं है। हिन्दी में, अपनी क्लास में हमेशा मैं पहले नम्बर पर रहती रही हूं।"

"तोबा! तोबा! तब तो आप हमारे काम की ही नहीं।"

"क्यों, हिन्दी की लिपि देवनागरी, मेरी राय में दुनिया-भर की लिपियों में सबसे ज्यादा साइन्टिफिक है।"

"साइन्टिफिक नहीं, वैज्ञानिक।" स्वर्णा बीच में बोली।

"बस, इसीमें हमारी सहमति नहीं है।"

इतने में जेबा की मामी ने एक पान स्वर्णा के लिए, और एक पान राजीव के लिए तैयार करके उन्हें पेश किया। पान लेने लगा, तो कहीं राजीव ने जेबा का हाथ छोड़ा।

"आप पान नहीं खा रही?" राजीव ने जेबा से पूछा।

"मैं खाऊंगी। पहले आप लीजिए।" जेबा ने कहा।

राजीव ने अपना पान जेबा की ओर बढ़ाया। जेबा ने झट आगे बढ़कर ले लिया, नहीं तो विलायत से लौटा लड़का, वह तो शायद पान

ने उसके मुंह में रखने जा रहा था।

"मुझे वापस आए हुए आज सात दिन हो गए हैं। वक़्त कैसा उड़ता जाता है।" कुर्सी पर बैठते हुए राजीव बता रहा था।

"नहीं, छः दिन।" स्वर्णा ने उसे टोका।

"हां-हां···छः दिन! जिस दिन मैं आया था, उसी रात तो फ़साद शुरू हुए थे। इतवार और सोमवार के बीच की रात। आज शनिवार है न। छः दिन ठीक है।"

"फ़साद इतवार और सोमवार के बीच की रात को शुरू हुए या सनीचर और इतवार के बीच की रात?" ज़ेबा ने चौंककर पूछा।

"इतवार और सोमवार की बीच की रात।" स्वर्णा ने बताया।

"बिल्कुल ठीक! क्या उससे पहले कोई हो-हल्ला नहीं था?"

"नहीं तो," स्वर्णा ने ज़ेबा की मामी की ओर देखा।

"हां-हां, राजीव घर पहुंच चुका था। अभी हमने खाना खाया ही था कि पुलिस-कप्तान का टेलीफ़ोन आया। कहने लगा—अच्छा हुआ, आप लोग वक़्त पर स्टेशन से लौट आए। शहर में दंगे शुरू हो गए हैं।"

ज़ेबा सुनकर सोच में डूब गई। उसे अच्छी तरह याद था कि इतवार की शाम, जब वह घर लौटी थी तो उसकी अम्मी ने अलीगढ़ के दंगों का ज़िक्र किया था। फिर उसने अलीगढ़ टेलीफ़ोन भी किया था।

राजीव के भीतर के पैनी नज़र रखने वाले डाक्टर ने ज़ेबा की ओर देखकर कहा, "मिस शेख़, आप तो सोच में यों डूब गई हैं—जैसे फ़साद पहले शुरू होना चाहिए था, यह लेट क्यों शुरू हुआ है!" राजीव की बात सुनकर आस-पास सब हंसने लगे।

"सचमुच···मामला कुछ···इसी तरह का है।" ज़ेबा सोचती हुई, रुक-रुककर बोल रही थी।

"क्या मतलब?" स्वर्णा पूछने लगी।

"मुझे अच्छी तरह याद है, पिछले इतवार जब मैं शाम को घर लौटी अम्मीजान ने मुझे कहा था, अलीगढ़ में हिन्दू-मुस्लिम फ़साद हो गए हैं। और फिर मैंने अलीगढ़ टेलीफ़ोन किया था।"

"मैं बताऊं, यह मनोविज्ञान हो सकता है," राजीव हंसता हुआ कहने लगा, "इतने दिनों से दंगा कर रहे, इतने बरसों से अड़ोसी-पड़ोसियों के गले काट रहे, इतने सालों से भाई-भाइयों को छुरे घोंप रहे—कोई बड़ी बात नहीं। फ़साद शुरू होने से पहले हमें उनकी परछाइयां दिखाई देने लगीं, बेसहारा मजलूम लोगों की चीख़-पुकार हमारे कानों में पड़ने लगी हो···यूं कई बार होता है। अक्सर मुझपर जब कोई मुसीबत आने को होती है, कुछ देर पहले मेरा दिल बिना कारण बैठने लगता है। मैं चिड़चिड़ा-सा महसूस करने लगता हूं।"

"जैसे आज शाम तुम्हें लग रहा था," स्वर्णा ने अपने भाई को छेड़ा।

"कब?"

"चाय पीते हुए तुम मुझसे उलझने लगे थे।"

"हां, मेरा मूड ज़रा ख़राब था," राजीव ने सोचते हुए कहा।

"क्यों, आपको भी किसी मुसीबत की परछाईं दिख रही थी?" ज़ेबा ने उससे मज़ाक किया।

"आज की शाम तो कोई ऐसी मुसीबत नज़र नहीं···"

"सिवा ज़ेबा की मुलाक़ात के," स्वर्णा ने राजीव की बात को काटते हुए कहा। और फिर वहां बैठे सब लोग हंस पड़े।

## १९

ज़ेबा अलीगढ़ गई हुई थी और इधर महमूद हर रोज़ बेगम मुजीब के यहां आने लगा। जिस दिन वह अपने-आप न आता, बेगम मुजीब उसे बुलवा लेतीं। कभी नाश्ता, कभी दोपहर का खाना; कभी शाम की चाय और कभी रात का खाना वह ज़ेबा की अम्मी के यहां ही खाता। कभी दोपहर बाद आता और देर-रात गए लौटता। कभी सुबह-सुबह आता और जब जाता तो सांझ ढल चुकी होती।

बेगम मुजीब उसे घर के छोटे-मोटे काम बताती रहती। वह काम, जो कोई नौकर भी कर सकता था, कालू सारी उम्र करता रहा था। बिजली का बिल, पानी का बिल जमा कराना; धोबी और दर्जी के यहां जाकर कपड़ों के लिए तकाज़ा करना। अख़बार वाला इतना काइयां था; अंग्रेज़ी का अख़बार तो ठीक फेंक जाता; उर्दू का अख़बार हर चौथे रोज़ कोई-का-कोई दे जाता। बेगम मुजीब को किसी साम्प्रदायिक पार्टी के अख़बार को घर में देखना ज़हर-सा लगता था। वह झट अख़बार लौटा देती। अख़बार वाला फिर वही ग़लती कर जाता। महमूद आता और बेगम मुजीब की छोटी-मोटी फ़रमाइशें पूरी करता रहता।

बेगम मुजीब और-की-और होती जा रही थी। क्योंकि महमूद आ रहा होता, वह घर को उजला-उजला, साफ़-साफ़ रखती। गोल कमरे के गुलदानों के फूल बाक़ायदा बदलते रहते। बेगम मुजीब आप फूलों को सजाती। कभी किसी तरह, कभी किसी तरह। एक दिन महमूद ने बातों-ही-बातों में कहा था कि उसे अगरबत्ती की महक अच्छी नहीं लगती है, जैसे कोई हिन्दू शिवालय हो। और उस दिन के बाद से बेगम मुजीब के घर कभी अगरबत्ती नहीं जलाई गई। सारी उम्र वह अपने घर को अगरबत्तियों से महकाती रही थी। उसे इनकी ख़ुशबू अच्छी लगती थी। अब जैसे इस सुगंध को उसने भुला दिया हो। बाहर लॉन में घास बाक़ायदा कटी होती। हर चौथे रोज़ मशीन फिरती। पहले माली एक वक़्त आता था, आजकल दोनों वक़्त आने लगा था। पानी का छिड़काव करने वाला कोठी के गेट से, पोर्च तक पानी का छिड़काव करता रहता। क्या मजाल जो धूल उड़ने पाए।

बेगम मुजीब को अपना-आप कुछ जुदा-जुदा-सा लगता। सुबह सोकर उठती और बिस्तर में वैसे-का-वैसा पड़े रहना उसे अच्छा-अच्छा लगता। बिस्तर में ही वह चाय मंगवा लेती। पहले कभी उसने ऐसा नहीं किया था। तड़के ही उठ जाया करती थी। सुबह की चाय अपने-आप बनाती थी। आजकल नहाने के लिए जाती तो कितनी-कितनी देर तक गुसलखाने में घुसी रहती। कई बरसों के बाद, कपड़े बदलने से पहले उसने सोचना शुरू कर दिया था। कभी किसी ब्लाउज को ढीला किया जाने लगा, कभी

किसी कुरते को तंग किया जाने लगा। नहाकर निकलती, तो बाल सवार-कर उन्हें खुला छोड़ देती। सारा दिन उनके बाल आगे-पीछे झम-झम करते रहते। कभी उनके चेहरे पर आ गिरते, कभी छाती पर। पहले वह रेडियो पर खबरें सुनने के लिए खोलती थी, आजकल खबरों के बाद जैसे वह रेडियो बंद करना भूल जाती। अंदर-बाहर, काम करते हुए, आते-जाते, कोने में एक ओर पड़ा रेडियो धीरे-धीरे चलता रहता। फ़िल्मी गीत—'तू कौन-सी बदली में मेरे चांद है, आ जा', 'इक बंगला बने न्यारा', 'चुप-चुप खड़े हो ज़रूर कोई बात है,....'

कभी-कभी अकेले में बेगम मुजीब अपने मन को टटोलने लगती। उसे यह क्या हो रहा था? कल इतना जोर से वह हंसी थी। परसों बावर्ची पर उसे इतना गुस्सा आया था। आजकल देर-रात गए तक उसे नींद नहीं आती थी। आपसे-आप, खिड़की से बाहर, आसमान में तारों को निहारती रहती। दिन-भर में सुने फ़िल्मी गीत, उनकी धुनें, उनके कानों में गूंजती रहती।

पिछली जुमेरात को वह अपने शौहर के मज़ार पर दीया जलाना भूल गई थी। उससे पिछली बार भी उसने दीया नहीं जलाया था। यह सोचकर बेगम मुजीब सिर से लेकर पांव तक कांप गई। वह पसीना-पसीना हो गई। पसीने की धारें उसके बदन पर चींटियों की तरह चल रही थीं। उसकी नाक, उसके कान लाल हो गए थे। अकेली, अपने कमरे में बैठी, उसकी आंखों से छल-छल आंसू बहने लगे, जैसे बाढ़ आ गई हो।

बेगम मुजीब ने देखा, सामने सड़क पर गेट खुला और महमूद आ रहा था। वह लपककर गुसलखाने में गई। अगले क्षण, मंद-मंद मुसकरा रही बेगम मुजीब, अपने मेहमान का स्वागत कर रही थी।

उस दिन अख़बार में पढ़ी किसी रिपोर्ट के कुछ अंश वह महमूद को सुनाने लगी :

"भारत सरकार ने रोज़गार की खुद कुफ़ील की गरज़ से आम लोगों के लिए कई योजनाएं बनाई हैं। एक योजना कारीगरों और तकनीकी जानकारी रखने वालों के लिए है। उन्हें अपने पेशे की फिर से सिखलाई कराई जाती है। नई-नई खोजों, नये-नये तरीकों से उनकी जानकारी

करवाई जाती है। जिन्हें जरूरत हो, उन्हें डिप्लोमा और डिग्री के लिए तैयार किया जाता है। इस योजना के लिए बेशुमार अर्जियां आईं। इनमें से कई उम्मीदवारों को अपना धंधा शुरू करने के लिए दो-दो लाख तक रुपया भी क़र्ज दिया गया ताकि वह कोई घरेलू दस्तकारी शुरू कर सकें। लेकिन किसी भी मुसलमान ने इस योजना के लिए अर्ज़ी नहीं भेजी। बस, एक अर्ज़ी कर्ज के लिए आई थी, जिसे मंजूर कर लिया गया। क्या इसका यह मतलब लगाया जाए कि मुसलमानों में बेरोजगारी नहीं है?"

महमूद ने सुना और जहर-आलूद हंसी हंसने लगा। "अम्मीजान! आप बड़ी भोली हैं। यह सब सरकारी ख़बरें होती हैं।"

"यह ख़बर सरकारी नहीं है," बेगम मुजीब ने अख़बार उसकी ओर फेंकते हुए कहा।

"किसी सरकारी पिट्ठू की होगी।" महमूद ने अख़बार को बिना देखे ही कहा।

"यह तो किसी सेमिनार के पेपर का कोई टुकड़ा हो।" बेगम मुजीब कह रही थी।

"किसी सुसरे हिन्दू की खोज होगी।" महमूद ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा।

"लिखने वाला भी मुसलमान है।" बेगम मुजीब ने बढ़कर अख़बार महमूद के घुटनों से उठाया और पढ़ने के लिए उसकी आंखों के सामने ला रखा।

महमूद ने अख़बार की ओर देखा तक नहीं।

"आपको मालूम नहीं, हिन्दू किस तरह हमारी हस्ती को मिटाने पर तुले हैं।" महमूद वैसे-का-वैसा जहर उगल रहा था, "एक तरह से वे सच्चे भी हैं, हमने पाकिस्तान बना लिया है, अब हमारी जगह पाकिस्तान में है।"

"लेकिन क्या पाकिस्तानी भी यह मानते हैं? वह तो हिन्दुस्तानी मुसलमानों को एक नजर देखना नहीं चाहते। उन्होंने तो अपने मुल्क में घुसने पर पाबंदी लगा दी है," बेगम मुजीब जैसे ताना दे रही थी।

"बेशक वे सच्चे हैं। इधर से गए लोग जमीन से जमीन काटने-

बांटने के लिए कहते हैं। रोज़गार से रोज़गार का बटवारा चाहते हैं। कौन चाहता है कि उसकी जायदाद का कोई और हिस्सेदार बन बैठे?"

"तो फिर तुम भारतीय मुसलमान किस शह पर कूदते फिरते हो?"

"यही तो हमारी मुसीबत है। हमने पाकिस्तान बनवाया है। हमने कुरबानियां दी हैं। पाकिस्तान बनने के बाद पंजाबियों ने उसे सम्भाल लिया।"

"आज़ादी से पहले पंजाब में मुस्लिम लीग की सरकार तक नहीं थी।"

"हमें एक जंग और लड़नी होगी।"

"इधर या उधर?"

"इधर भी और उधर भी," महमूद ने कहा और उठकर गुसलखाने की ओर चला गया।

बेगम मुजीब को इस लड़के की कुछ समझ नहीं आ रही थी। वह हैरान हो रही थी, महमूद की कुछ बातें, जिनसे उसे कभी नफ़रत होती थी, आजकल उसे इतनी बुरी नहीं लगती थीं। उन्हें वह सुनने लग गई थी। नहीं तो कोई दिन थे, जब इस तरह की कोई बात करता तो वह भरी महफ़िल में उठ खड़ी होती। उनका जी चाहता, कानों में उंगलियां दे ले। अपने देश के खिलाफ मुंह से ये बोल निकालने वाले के थप्पड़ दे मारे।

महमूद के लिए कॉफ़ी बनाते हुए, आज फिर उसने आधा दूध और आधी कॉफ़ी प्याले में घोली थी। वह तो काली कॉफ़ी पीता था या फिर नाम मात्र का दूध। "जवान-जहान लड़कों को दूध पीना चाहिए। तुम्हें तो अभी कई लड़ाइयां लड़नी हैं," मुस्कराते हुए बेगम मुजीब ने कॉफ़ी का प्याला महमूद को पेश किया।

कल उसने फ़ैसला किया था कि अब अगर महमूद बेवक्त उससे मिलने के लिए आया तो वह खाने के लिए उसे नहीं रोकेगी। न दिन के खाने के लिए, न रात के खाने के लिए। न मालूम, नौकर क्या सोचते होंगे? आईने के सामने, उसकी परछाईं मुस्कराई उससे कह रही थी—यह लड़का बड़ा मंज़ूरे-नज़र होता जा रहा है!" और फिर उसका रंग पीला पड़ने लगा। आस-पास के लोग बहुत बातें बनाते होंगे। लेकिन जब महमूद

लगा, वेगम मुजीव ने फिर उसे रोक लिया। फिर उसने आवाज़ देकर ख़ानसामा को वताया, "महमूद मियां खाना खाएंगे।"

और फिर वे वातें करने लगे। वातों-वातों में वेगम मुजीव ने जलाल-उद्दीन रूमी की मसनवी में से एक शे'र गुनगुनाया :

'मन ज़ि कुरआन मग़ज़ रा वर दुश्तम
उसतुखां पेशे-समां अन्दाख़तम'

महमूद को फ़ारसी नहीं आती थी। वेगम मुजीव ने इस शे'र का अनुवाद करके उसे वताया :

'मैंने क़ुर-आन से उसका मग़ज़ निकाल लिया है
और वाक़ी हड्डियां कुत्तों के सामने फैंक दी हैं।'

"क्या मतलव ?" महमूद पूछने लगा।

"ज़रूरत यह है," वेगम मुजीव ने समझाया, "इस्लाम की असलियत को पहचाना जाए; कोरे दिखावे से कोई फ़ायदा नहीं।"

## २०

घुप अंधेरी रात। ग़ज़व की सर्दी। वाहर वला का तूफ़ान जैसे उखाड़-उखाड़ फेंक रहा था। नदियां-नाले, ताल और तलैयों पर कुहरा जमा था। ऐसी ठंड जैसे विच्छुओं के डंक। अंगीठी में सुलग रहे कोयले राख से ढक गए थे, वुझ चुके थे। सोने के कमरे में अव उनकी लौ तक दिखाई नहीं देती। चारों ओर अंधेरा। घटाटोप अंधेरा।

वेगम मुजीव की मुसीवत थी कि वह कभी मुंह ढककर नहीं सो सकती थी। सर्दी हो चाहे गर्मी। यह उसने कभी सोचा भी नहीं था कि कोई रात उसे शिमला में भी काटनी पड़ेगी। शिमला की वर्फ़ानी ठंड।

इधर अंगीठी में आख़िरी कोयला ठंडा हुआ, उधर ज़ेवा ने करवटें वदलना शुरू कर दिया। कभी दाईं ओर, कभी वाईं। लड़की जैसे वेचैन हो रही हो। उसके पलंग की चरमर लगातार सुनाई दे रही थी। किराये

पर लिए शिमला के ये पलग। किराये का फ्लैट।

बेगम मुजीब करवट बदलकर देखने लगी। उसे यू लगता है, जैसे जेबा आखें फाड़-फाड़कर उसको ओर देख रही हो। इस समय! आधी रात का प्रहर। बेगम मुजीब की पलकें मुद गई।

कैसे चोरों की तरह जेबा उसके पलग की ओर घूर रही थी। क्यों? आखिर क्यों? बेशक आज की रात ठड कुछ ज्यादा थी, लेकिन जवान-जहान लड़की को ठंड की क्या परवाह? उसकी उम्र की लड़कियों को तो बर्फ की सिल्ली पर नींद आकर दबोच लेती है। बेगम मुजीब ने उसके लिए गद्दे भी एक की जगह दो बिछाए थे। उसकी रजाई भी भारी थी। ऊपर इटली का कम्बल भी जोड़ा था। शायद उसे गर्मी महसूस हो रही होगी। कम्बल और रजाई मिलकर कहीं लड़की के लिए भारी तो नहीं हो गए थे?

लेकिन वह चोर आखो से मा के पलग की ओर घूर-घूरकर क्यों देख रही थी, जैसे अम्मी किसीके साथ भागकर जा रही हो! तीन बच्चों की मा, अम्मी कहा भागकर जाएगी! दो बेटिया और एक बेटा। बेशक उसका घरवाला नही रहा था। इस उम्र में वह कहां जाएगी? और फिर बेगम मुजीब को याद आने लगा, उसका शौहर जब अल्लाह को प्यारा हुआ था, हर कोई बस यही कहता था—क़हर की मौत है। कुदसिया बीबी के साथ ज़ुल्म हुआ है। अभी उसने देखा ही क्या है! बीबी बच्चे जनती रही, मर्द फ़िरगी की जेल भोगता रहा। अब कहीं वक्त आया था कि सुख के चार दिन काटें। यह वक्त होता है जब मिया और बीवी एक-दूसरे को पहचानने लगते है। एक-दूसरे के साथ की कद्र करने लगते हैं।

ये सारी बातें, जो लोग बेगम मुजीब को देखकर कहते थे, ठीक थी, लेकिन यह आख़िरी बात जैसे उसके कलेजे में चुभकर रह गई हो। उस वक्त, जब उसके मर्द ने उसके भीतर की औरत को पहचानना था, अल्लाह ने उसे छीन लिया था। कभी-कभी बेगम मुजीब को लगता, जैसे उसके साथ धोखा हुआ हो। किस्मत ने दग़ा किया था। एक फरेब। उसका हक़ मार लिया गया था। उसके हाथ में से जैसे किसीने जन्नत छीन ली हो।

अब ज़िंदगी जैसे एक बीहड़ हो। एक रेगिस्तान। जाड़े की बर्फ़ीली हवा कंपकंपी पैदा कर रही थी।

पलकें मूंदे हुए, सोच में डूबी बेगम मुजीब को लगा, जैसे सामने पलंग पर कोई उठकर बैठ गया हो। और उसने हौले-हौले पलकें खोलीं—आधी बंद, आधी खुली। और उसकी ऊपर सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई हो। ज़ेबा ने रज़ाई को आहिस्ता से उतारकर एक ओर कर दिया था। चोरों की तरह एक नजर अम्मी के पलंग को टिकाए हुए, वह बिस्तर में से निकल आई थी। एक टांग धीरे से पलंग से बाहर, और एक पांव चप्पल में। फिर दूसरी टांग धीरे से पलंग से बाहर और दूसरा पांव चप्पल में। नज़रें वैसी-की-वैसी अम्मी की मुंदी हुई पलकों पर टिकाए हुए।

अगले क्षण अपने महकते हुए बालों को समेटकर गांठ लगाई और रेशमी 'नाइटी' में अधनंगी, अधढकी वह बाहर निकल गई। इस समय कहां जा रही थी? शायद ग़ुसलख़ाने में गई होगी। लेकिन अपने-आपको अच्छी तरह ढक तो लेती। शायद जल्दी में होगी। जवान-जहान लड़कियों को कहां ठंड लगती है!

लेकिन बाहर जाने से पहले, बिस्तर छोड़ने से पहले, यूं एकटक अम्मी के पलंग की ओर क्यों देख रही थी? जैसे कोई चोर सेंध लगाने से पहले इधर-उधर देखता है।

ग़ुसलख़ाने का दरवाजा खुला था। बाथरूम गई थी। पेट खराब होगा। यही तो पहाड़ी शहरों में ख़राबी है। चाहे शिमला ही क्यों न हो। यहां का पानी किसीको मुआफ़िक़ नहीं आता। मालिक मकान सोने के कमरे के साथ ग़ुसलख़ाना नहीं बनवा सकता। ढेर सारा किराया। कमरे से निकलो, आंगन पार करो, फिर कहीं जाकर सामने बरामदे में ग़ुसलख़ाना था। शिमला की ठंड में, अगर किसी रात किसीको बाथरूम जाना हो तो समझो, निमोनिया हुआ कि हुआ। अब लड़की कैसे निकल गई थी। झिलमिल करती हुई नाइटी में। ठंड नहीं लगेगी तो क्या होगा···

लेकिन लड़की ने इतनी देर क्यों कर दी थी? ग़ुसलख़ाने में ही जाकर बैठ गई थी। बाहर ठंड कितनी थी!

बेगम मुजीब कुछ देर और इन्तजार करती रही। फिर अचानक वह चौक उठी। गुसलखाने का दूसरा दरवाजा—साथ के फ्लैट में खुलता था। उस फ्लैट में एक कुंवारा लडका रहता था। जवान-जहान। एम० ए० का इम्तिहान देकर शिमला सैर के लिए आया था। बेशक उस दरवाजे की चटखनी बंद रहती है। लेकिन चटखनी खुल भी तो सकती थी। हो न हो···कहीं···मैं मरी···।

और बेगम मुजीब अपनी रजाई को परे फेंक, वैसी-की-वैसी नंगे पांव बाहर आंगन में जा पहुंची। सचमुच सामने बरामदे में गुसलखाने का दरवाजा खुला था। अगर दरवाजा खुला था तो जेबा गुसलखाने में नहीं हो सकती थी।

फिर जेबा कहां थी? बेगम मुजीब अपने कमरे में लौटकर आई। जेबा का पलंग खाली था। बैठक खाली थी। आंगन खाली था। गुसलखाना खाली था। जेबा कहां डूब गई थी?

और फिर बेगम मुजीब को लगा, जैसे साथ के फ्लैट में खुसर-फुसर हो रही हो। आंगन में खड़ी बरबस वह पुकार उठी—जेबा, जेबा··· एक बार, दो बार, तीन बार। शिमला की ठंडी रात के अंधेरे में, एक-अकेली औरत पसीना-पसीना हो रही थी और फिर उसने देखा, सामने गुसलखाने में से जेबा एक भीगी बिल्ली की तरह आंख झुकाए, लजाई-लजाई-सी आ रही थी; जैसे पानी-पानी हो रही हो। चोर सेंध लगाते हुए पकड़ा गया था।

आधी रात का समय था। बेगम मुजीब ने अपनी बेटी से कुछ नहीं कहा। गुसलखाने की चटखनी लगाकर, अपने पलंग पर औंधी जा पड़ी। जैसे कोई अंधे कुएं में उतरता जा रहा हो। वह डूबती जा रही थी, नीचे और नीचे।

बाहर धूप निकल आई थी, जब उसकी आंख खुली। उसने करवट ली और क्या देखती है कि पड़ोसी नौजवान का नौकर उनके सामने खड़ा था। उसके हाथ में एक लिफाफा था, जिसमें बस एक पंक्ति की एक चिट्ठी थी: 'मैं जेबा से प्यार करता हूं। आप मुझे अपना दामाद बना सकते हैं?' बेगम मुजीब ने चिट्ठी को लिफाफे में डाला और उसे अपने

तकिये के नीचे रख दिया। कितनी देर वह वैसी-की-वैसी लेटी रही। ज़ेवा रसोईघर में व्यस्त थी।

बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसका सारा गुस्सा न जाने कहां काफ़ूर हो गया था। उसका अंग-अंग जैसे एक स्वाद-स्वाद में विभोर हो रहा था।

और फिर बेगम मुजीब पलंग से उठकर ग़ुसलख़ाने में जा घुसी। कितनी ही देर गीज़र से गर्म किए हुए पानी में नहाती रही। हल्की-फुल्की होकर वह बाहर निकली और सजने लगी। ज़ेवा नाश्ता करके सैर को निकल गई थी। किस मुंह से अपनी अम्मी के सामने आती? पगली लड़की।

आज उसका श्रृंगार ही जैसे ख़त्म होने को न आ रहा हो। चूड़ीदार पाजामा। खुला कुरता, और ऊपर शॉल। जैसे कोई पहाड़िन हो। बेगम मुजीब साथ के फ़्लैट में जा पहुंची।

यह तो महमूद था। पलंग पर पड़ा था। बुखार में उसका बदन भट्ठी की तरह तप रहा था। बेगम मुजीब ने उसे देखा और उसके मुंह, माथे, गालों, गर्दन, गिरेबान, कंधों, छाती को प्यार करने लगी। दीवानों की तरह वह उसे प्यार किए जा रही थी। उसके पलंग पर बैठी। उसके साथ लेटी, उसे अपने बाहुपाश में लिए, चूम-चूमकर उसने उसे फूल की तरह महका लिया था। मंद-मंद मुसकरा रहा। शान्त, निश्चल, ख़ुशियां बिखेरता हुआ।

"अम्मी! अम्मी!! आज आप सोई ही रहेंगी?" ज़ेवा उसके कमरे में खड़ी उसे जगा रही थी। कितना अजीब सपना था! कितना भयानक! बेगम मुजीब पसीना-पसीना हो रही थी। और फिर ज़ेवा उसके साथ पलंग पर बैठ गई।

फटी-फटी आंखों से बेगम मुजीब ज़ेवा की ओर देख रही थी। कभी उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर दबाती। कभी उसकी बांहों को टटोलकर देखती। कभी उसके गालों को छूती। कभी उसके बालों को सहलाती!

"अम्मी! आप शायद कोई सपना देख रही थीं?" ज़ेवा ने मां को लाड़

से अपने वाहु-पाश में ले लिया। कैसा सपना था, वेगम मुजीव उसके वारे में सोचती और सिर से पाव तक कांप-कांप जाती।

## २१

वेगम मुजीव कितनी ही देर तक स्तब्ध-सी पलग पर पड़ी रही। पसीने में जैसे नहा गई हो। "आपको क्या हो रहा है?" जेवा वार-बार अम्मी से पूछ रही थी। उसके मुह पर विखरे हुए वालों को हटाकर पीछे कर रही थी।

"सपना था।" वेगम मुजीव ने आखिर कहा और एक फीकी-सी हसी उसके चेहरे पर खेलने लगी। "सपना था।" और फिर सिर से पाव तक एक कपकपी-सी उसके शरीर में दौड़ गई।

"मैं आपको चाय का प्याला लाकर देती हू।" और जेवा रसोई में चली गई।

वेगम मुजीव सोच रही थी कि यह कैसा सपना था? शिमला गए हुए उसे कई वर्ष हो चुके थे। तब जेवा पैदा भी नही हुई थी। फिर महमूद कहा से आ गया? उसे तो पहली वार उसने चन्द साल पहले ही देखा था।

अजीव गड्डमड्ड थी। वेगम मुजीव सोच रही थी कि शायद पिछली शाम जब वह जेवा को लेने के लिए रेलवे स्टेशन पर गई थी, महमूद उसके साथ था। और जेवा की उसे देखकर जैसे भौहें चढ़ गई हों। सीधे मुह उसने उससे वात नही की थी। गाड़ी लेट थी और घर आकर मा-वेटी अपने-अपने कमरे में सो गई थीं। उन्हें इस वारे में वात करने का अवसर नहीं मिला था। नही तो वेगम मुजीव जेवा को जरूर फटकारती। यह भी कोई वात हुई? कुछ भी हो, किसीको तमीज तो नही छोड़नी चाहिए।

चाय का प्याला जेवा के हाथ से लेकर, वेगम मुजीव ने एक घूट भरा और वेटी को वाह से पकड़कर अपने पास विठा लिया।

"बेटी ! कल रात रेलवे स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी, मेरे साथ प्लेट-फ़ार्म पर महमूद को देखकर तेरे माथे पर जैसे बल पड़ गए हों ?"

"हां।" ज़ेबा ने रूखेपन से कहा।

"तुझसे मिलने के लिए वह आगे बढ़ा और तुम मेरे गले लग गईं। वह इंतज़ार करता रहा, करता रहा। और फिर तुम कुली को सामान के बारे में बताने लगीं। तुमने उसकी आंख के साथ आंख नहीं मिलाई।"

"ठीक है।"

"मोटर में उसने पूछा—अलीगढ़ में तुमने इतने दिन लगा दिए ? तुमने इसका कोई जवाब नहीं दिया।"

"हां।"

"फिर जब वह जाने लगा, तुमने उसका शुक्रिया तक नहीं किया। बेचारा अपनी गाड़ी में तुम्हें स्टेशन से लाया था।"

"हां।"

"क्या यह बदतमीज़ी नहीं ?"

"अम्मी ! आप बस मुझे इतना बता दें—अलीगढ़ के फ़सादों के बारे में सबसे पहले ख़बर आपको किसने दी थी ?"

"महमूद ने। पर इस बेहूदगी का उससे क्या ताल्लुक़ ?"

"इतवार का दिन था न ?"

"हां ! तुमने ही तो कहा था कि आज इतवार है, ट्रंककाल के रेट आए होंगे।"

इतने में बाहर गैलरी में टेलीफ़ोन बजने लगा और ज़ेबा टेलीफ़ोन सुनने के लिए चली गई। मां ने सोचा कि टेलीफ़ोन शायद उसकी किसी सहेली का होगा। कितनी ही देर तक वह टेलीफ़ोन पर इधर-उधर की बातें करती रही। जवान-जहान लड़कियों की बातें। बात में से बात निकलती आ रही थी। बेगम मुजीब उठकर ग़ुसलख़ाने गई। ग़ुसलख़ाने से होकर भी आ गई। ज़ेबा अभी तक टेलीफ़ोन से चिपटी हुई थी।

और फिर बेगम मुजीब घर के कामकाज में लग गई। अलीगढ़ से लाई गई सौगातों को खोल-खोलकर देखने लगी। बात आई-गई हो गई।

टेलीफ़ोन अलीगढ़ से था। राजीव का। जब तक टेलीफ़ोन एक्सचें

वालों ने उनको कॉल काटी नहीं, वे बातें करते रहे। टेलीफोन सुनकर जब वह हटी, न तो अम्मी ने उससे पूछा कि टेलीफोन किसका था, और न ही ज़ेबा ने मां को यह बताने की ज़रूरत महसूस की।

'अलीगढ़ सूना-सूना लगता है तुम्हारे जाने के बाद !' राजीव के बोल बार-बार उसके कानों में गूंजने लगते।

लेकिन सबसे जरूरी ख़बर जो ज़ेबा अपनी मां को बताना चाहती थी, उसका अभी तक उसे अवसर नहीं मिला था।

राजीव, लन्दन में पढ़ रहे ज़ेबा के भाई ज़ाहिद को जानता था। वे आपस में मिलते-जुलते रहते थे। राजीव का ख़्याल था कि उसने किसी फ़िरंगिन से शादी करवा ली थी। अगर शादी नहीं भी करवाई थी तो भी वे मियां-बीवी की तरह रह रहे थे। हर जगह इकट्ठे देखे जाते थे। राजीव तो एक बार उनके अपार्टमेंट में भी गया था। फ़िरंगिन लड़की ज़ाहिद की लैंड लेडी की बेटी थी। राजीव को ऐसा लगा, जैसे ज़ाहिद का अपना घर हो। इस तरह बेतकल्लुफ़ी से वह रह रहा था। उसका हिन्दुस्तान लौटने का कोई इरादा दिखाई नहीं देता था, और न ही पाकिस्तान जाने का। पाकिस्तान का तो वह नाम तक लेने को तैयार नहीं था। पाकिस्तान के ख़िलाफ़ जब भी कोई रैली होती, चाहे पाकिस्तानियों की तरफ़ से हो या हिन्दुस्तानियों की तरफ़, से वह हमेशा उनमें आगे-आगे रहता था।

दोपहर के खाने से निपटकर, जब ज़ेबा ने अम्मी से बात की तो बेगम मुजीब के जैसे होंठ सूख गए हों। "उनके अब्बा सारी उम्र फ़िरंगी से लड़ते रहे और बेटा फ़िरंगी से रिश्ता गांठने को फिरता है !" आख़िर बेगम मुजीब के मुंह से निकला।

"इसमें परेशान होने की क्या बात है ? भारत ने भी अंग्रेज़ के साथ आज़ादी की जंग लड़ी। अब देश आज़ाद होने के बाद फिरंगी से नाता जोड़ लिया है। कामनवेल्थ का मेम्बर बन गया है।" ज़ेबा सामने से मुसकरा रही थी।

"मुझे यह बेकार की बातें पसंद नहीं।" बेगम मुजीब का ख़ून खौल रहा था।

"अम्मी ! इसमें खफ़ा होने की क्या बात है ? मुझे तो बहुत अच्छा लग रहा है कि हमारे घर मेम भाभी आएगी।"

"गिट-मिट-गिट-मिट अंग्रेज़ी बोला करेगी।" बेगम मुजीब ने चिढ़कर कहा।

"नहीं, राजीव कह रहा था कि भैया उसे उर्दू सिखा रहा है।"

"यह राजीव कौन है ?" अम्मी ने हैरान होकर ज़ेबा से पूछा। जब से लौटी थी, ज़ेबा कई बार उसका ज़िक्र कर चुकी थी। जब भी उसका नाम इसके मुंह से निकलता, ज़ेबा के होंठों में जैसे शहद घुल-घुल जाता हो।

'यह राजीव कौन है ?'

'यह राजीव कौन है ??'

'यह राजीव कौन है ???'

अम्मी के ये शब्द ज़ेबा के कानों में गुम्बद की आवाज़ की तरह गूंज रहे थे।

"अम्मी ! आपके मायके-घर के पड़ोसी राय साहब राम जवाया का बेटा।"

"वह राजू ! वह राजीव कब से हो गया ? उसकी तो नाक बहा करती थी !"

"अब देखो तो सही उसे। विलायत पास करके आया है। कितना बांका जवान निकला है। उसकी तरफ़ तो देखा तक नहीं जाता। ऊंचा-ऊंचा, लंबा, सांवला सलोना···"

"जैसे कृष्ण कन्हैया हो।" बेगम मुजीब ने जानबूझकर ज़ेबा की टांग खींची। नहीं तो क्या मालूम वह कब तक बके जाती। कुछ इस तरह वह शुरू हुई थी।

और फिर बेगम मुजीब देख-देखकर हैरान होती रहती। अलीगढ़ से हर दूसरे-चौथे रोज़ टेलीफ़ोन आ जाता। एक बार टेलीफ़ोन आता और कितनी-कितनी देर ज़ेबा चोंगे को कानों से लगाए, गोंद की तरह चिपकी रहती।

लेकिन ज़ेबा तो अम्मी के लिए ज़ाहिद की एक और समस्या बांध

लाई थी। एक-आध दिन इसपर विचार करके आखिर बेगम मुजीब ने जाहिद को चिट्ठी लिखी। लम्बी-चौड़ी शिकायतें—'मुझे तुम्हारे हर महीने भेजे पैसों की कोई जरूरत नहीं। सीमा हमारे मुह पर कालिख पोतकर चली गई। अब ज़ेबा का ब्याह करना है। आखिर वह लड़की कब तक कुंवारी बैठी रहेगी? जवान-जहान, पढ़ी-लिखी, ब्याहने-लायक। मैं अपनी जिम्मेदारी से सुर्खरू होना चाहती हू। बस, तुम यह चिट्ठी देखते ही लौट आओ। कोई-न-कोई नौकरी तुम्हें यहा भी मिल जाएगी। और फिर तुम्हारा भी तो ब्याह करना है…'

ज़ेबा ने अम्मी की लिखी हुई चिट्ठी पढ़ी, और नीचे एक पंक्ति अपनी ओर से जोड़ दी—भैया, अगर तुमने शादी कर ली है तो भाभी को लेकर आ जाओ। लेकिन आओ जरूर।—ज़ेबा।'

## २२

शेख शब्बीर की हालत ठीक नहीं थी। उसे पहले जैसे दौरे पड़ते थे। उसने पाकिस्तान जाकर भी देख लिया। लाहौर में कई दिन तक उसका इलाज होता रहा। पागलखाने में भी रहा। डाक्टर यही कहते कि मरीज को कोई गहरा सदमा पहुंचा है। और शेख शब्बीर था कि अपने दिल की गाठ नहीं खोल रहा था। क्या तो डाक्टर और क्या वैज्ञानिक, सब सिर पटककर रह गए।

अब उसमें एक नई तब्दीली आ गई थी। पांचों वक्त नमाज पढ़ता। रोज़े रखता। हज भी कर आया था। सारा दिन बस दो ही काम थे। या तो तसबीह फेरता रहता या फिर लोटा थामे वुज़ू करता रहता। टखनों से ऊंचा पायजामा, मौलवियों जैसी दाढ़ी, होंठों के ऊपर मुंह के इधर-उधर तराशे हुए बाल। हर बार पेशाब करके उठता, कितनी-कितनी देर 'वटवानी' करता रहता। आजकल पेशाब भी उसे बार-बार आने लगा था। अपने मुह से कबूल नहीं रहा था, लेकिन पाकिस्तान आकर

सख़्त परेशान था।

लाहौर से गुजरांवाला, गुजरांवाला से गुजरात, गुजरात से जेहलम; जेहलम से अब रावलपिंडी जा पहुंचा था। रावलपिंडी में भी छावनी के पास किसी बस्ती में किराये पर एक मकान मिला था। कामकाज कुछ नहीं था। काम करने की न तो उसकी उम्र थी और न उसकी सेहत साथ देती थी।

उसके पाकिस्तान आने के कुछ देर बाद, शेख़ शब्बीर की जवान-जहान बेटी नूरी किसी पंजाबी लड़के के साथ निकल गई थी। कितने दिन धूल छानकर जब उसका अता-पता मिला, शेख़ शब्बीर ने लड़की का, उसी लड़के के साथ निकाह कर दिया। कितनी देर तो लड़के का धंधा उसकी समझ में नहीं आया था। कई-कई दिन घर से ग़ायब रहता। कभी फ़ाकामस्ती तो कभी पैसों की रेल-पेल। शेख़ शब्बीर हैरान होता रहता।

फिर उसे पता चला कि लड़का भारत-पाक सीमा पर तस्करी का धंधा करता था। सूती और रेशमी कपड़े से लदे ट्रक; चीनी, चाय, पान के पत्ते, केले, आम, मिर्च-मसाले, तरह-तरह की शराब, एक दिन नूरी उसे बता रही थी कि स्कूली बच्चों की कापियां तक भारत से स्मगल होकर आती हैं।

"इधर से भी तो कुछ जाता होगा?" शेख़ शब्बीर ने नूरी से पूछा। एक पाकिस्तानी की ग़ैरत, वह यह मानने के लिए तैयार नहीं था कि उनके मुल्क को इन सब चीज़ों के लिए पड़ोसी देश का मुंह ताकना पड़ता है।

नूरी ख़ामोश रही। उसे इसकी जानकारी नहीं थी।

पैसा हाथ का मैल होता है। आता रहता है, जाता रहता है। शेख़ शब्बीर को इसकी परवाह नहीं थी। लेकिन उसे परेशान करने वाली बात यह थी कि नूरी का मियां अपनी बीवी के साथ बदतमीज़ी से पेश आता है। 'तू'-'तू' कहकर उसे बुलाता। कड़वा बोलता। मां-बहन की गाली तो जैसे उसके होंठों पर रहती थी। और अब नूरी पर उसने हाथ उठाना भी शुरू कर दिया था।

उन दिनों शेख़ शब्बीर का लाहौर के पागलखाने में इलाज हो रहा

था। एक दिन वह नूरी के यहां गया। उसने देखा, लड़की के जिस्म पर नील-ही-नील पड़े थे और अपने कमरे में औंधी गिरी हुई थी। पूछने पर पता चला कि उसके शौहर ने पिछली रात दारू पीकर उसे पीटा था और आप सुबह-सवेरे ही कहीं बाहर निकल गया था। लड़की, जैसे दर्द की गठरी बनी पलंग पर पड़ी थी। अभी शेख शब्बीर नूरी से पूछताछ कर रहा था कि उसका दामाद आ गया।

"यह क्या बदतमीज़ी है, लड़की को यूं वैरियों की तरह पीटना?" शेख शब्बीर लड़के को देखकर खफ़ा हो रहा था।

"अब्बाजान! रसूल अल्लाह का फ़रमान है कि औरत की कभी-कभी पिटाई करनी चाहिए।" सिगरेट का कश लगाते हुए दामाद बोला।

शेख शब्बीर की उंगलियां उसके हाथ में पकड़ी तसबीह पर तेज़-तेज़ चलने लगीं।

शेख शब्बीर का बेटा कबीर मज़े में रह रहा था। उनके पाकिस्तान पहुंचने के बाद ही उसके चाचा ज़ुबैर ने उसे पी० डब्ल्यू० डी० में भरती करवा दिया था। तनख्वाह चाहे कम थी, ऊपर की आमदनी ढेर-सारी हो जाती थी। बस एक ही खराबी थी कि उसका ब्याह भी एक पंजाबी लड़की के साथ हुआ था। और वह उसपर पूरी तरह से हावी थी। एक के बाद एक, दो बच्चे उसने पैदा कर लिए थे। न मां-बाप से, न किसी और रिश्तेदार से उसे मिलने देती। बेहूदा फैशन। लिपस्टिक से रंगे होंठ, सुर्खी, पाउडर से पुते गाल, कटे हुए बाल, लटें मुंह पर पड़ रहीं। शेख शब्बीर को यह सब एक आंख नहीं भाता था। सबसे ज़्यादा तकलीफ़ उसे अपनी बहू की बोल-चाल पर होती। उसकी पंजाबी तो वह कुछ-कुछ समझने लगा था लेकिन जब वह उर्दू बोलने की कोशिश करती तो यूं लगता जैसे उसके सीने पर तड़-तड़ गोलियां बरस रही हों। ग़लत मुहावरा, ग़लत उच्चारण, उल्टे-सीधे फ़िक़रे। कहीं पंजाबी, कहीं उर्दू। एक दिन कहने लगी, "यहां पर तो 'हैडू' भी सस्ता होना चाहिए।"

"यह 'हैडू' क्या?" शेख शब्बीर ने हैरान होकर पूछा।

"हैडू? हैडू का मतलब हैडू," यह कहते हुए उसने अपने ससुर की तरफ़ ऐसे देखा, जैसे वह निपट गंवार हो।

से बढ़कर शेख़ शब्बीर को यह दुःख था कि उसके अपने बेटे कबीर ज़ा भी बिगड़ रहा था। पंजाबी सुन-सुनकर पंजाबी बोलने की में उसकी ज़बान अजीब-सी होती जा रही थी।

ज़बान का फ़र्क़, रहन-सहन का फ़र्क़, पंजाबिन बहू अपने घरवाले को बंधियों से दूर-दूर रखती। और फिर उनके तबादले भी दूर-दूर ां में होने लगे थे। कहीं पुल बन रहा होता, कहीं सड़कें। कहीं नहर जा रही होती, कहीं बांध बांधे जा रहे होते।

शेख़ शब्बीर सोचता, जहां भी रहे, लड़का खुश रहे। अपने बाल-बच्चों पाले। उसने कभी अपने बेटे की आमदनी पर नज़र नहीं रखी थी। ल्लाह ने उसे अपने लिए काफ़ी दे रखा था। इस ज़िंदगी में उससे ख़त्म होने वाला नहीं था। मियां-बीबी दो जीव, उनका ख़र्च भी कितना था? व तो रूखी-सूखी खाकर भी वक़्त काट सकते थे। बस एक ही चिन्ता थी, और वह अपनी बीमारी की। जब कभी दौरा पड़ता तो कई-कई दिन न उसे खाना अच्छा लगता, न पीना। यही जी चाहता कि कपड़े फाड़कर वह कहीं निकल जाए। सोए-सोए 'अल्लाह हू', 'अल्लाह हू' बोलने लगता। फटी-फटी आंखें। तब न वह बीबी को, न बेटे-बेटी को, न किसी और रिश्तेदार को पहचानता। जो मुंह में आता, बके जाता। न सिर, न पैर। किसीकी समझ में कुछ न आता।

"मारो, मारो! गुंडे, बदमाश, पैसे भी खा गए, लूटकर भी ले गए। पाकिस्तानियों का पाकिस्तान, हिन्दुस्तानियों का हिन्दुस्तान। आटे में घुन। चक्की में आटा। अल्लाह हू! अल्लाह हू! मेरे बाप का लिहाज़! मेरे ताऊ का लिहाज़! मेरी मां के आंसू! मुझे काट क्यों नहीं देते? कुंद छुरियां! मुझे गोली से क्यों नहीं उड़ाते! देसी हथियार। कोई शर्म, कोई हया। अल्लाह हू, अल्लाह हू! एक, दो, तीन, चार, पांच, छः···छक छक, छक छक, छक। दगड़ दगड़ दगड़। डज़ डज़, ठू-ठा। कच्ची कुंवा गाड़ी के नीचे आ गई। लहू-लुहान हो गई। फाटक जो बंद नहीं थ टक्कर तो होनी ही थी। अल्लाह हू, अल्लाह हू! मैं कहता हूं, अल्लाह अल्लाह हू! करने का क्या फ़ायदा? तसबीह फेरनी चाहिए। ताले ल चाहिएं। 'विर्द' करना चाहिए। गांठ बांधकर रखनी चाहिए। न

आए, न कोई जाए। कच्ची-कुवारी जैसे कोंपल हो, कच्ची कुवारी जैसे कली हो। अल्लाह हू ! अल्लाह हू ! चोरी करे तो हाथ काट दो। यारी करे तो सौ कोड़े मारो। दारू न पिओ, जुआ न खेलो ! चार बीवियां ईमान है। दो औरतें एक मर्द के बराबर हैं। एक लड़की छ. मर्दों के पासंग भर। अल्लाह हू ! अल्लाह हू !"

इस तरह आप-से-आप घंटों बोलता रहता। बोलता-बोलता बाहर निकल जाता। न किसीके रोके रुकता। न किसीके बांधे बंधता।

जब दौरा खत्म होता। ठंडा यख हो जाता। भला-चंगा, जैसे कभी कुछ हुआ ही न हो।

## २३

जाहिद की फिरंगिन लड़की के साथ बस दोस्ती ही थी, उनकी शादी नहीं हुई थी। कम-से-कम वह लड़की उसके साथ नहीं आई। जाहिद अपनी अम्मी के कहने पर पहली फुरसत में मिलने के लिए आ गया। बेगम मुजीब ने उसे लौट जाने नहीं दिया। कह-सुनकर उसे एक अच्छी-सी नौकरी दिलवा दी। शेख मुजीब के बेटे के लिए सरकार सब कुछ करने को तैयार थी। और फिर जाहिद के पास इतनी बड़ी डाक्टर-डिग्री थी। उसकी नियुक्ति भी मेरठ अस्पताल में कर दी गई, ताकि अपनी मां की देख-भाल कर सके।

यह सब करने में कई महीने लग गए। बेगम मुजीब को अब यह तसल्ली थी कि बेटा घर लौट आया था। वह वैसे सुर्खरू हो गई थी। बस, अब दो ही काम रह गए थे। जाहिद और ज़ेबा का ब्याह रचाना। पहले जाहिद का जो बड़ा था और फिर ज़ेबा का।

जाहिद को आए अभी बहुत दिन नहीं हुए थे कि बेगम मुजीब ने उसके लिए लड़की ढूंढ़ना शुरू कर दिया। एक उम्र आती है जब हर औरत को लड़के, लड़कियों के ब्याह रचाने में मज़ा आता है। सारे

अपने हों या पराये। महमूद के मां-बाप पाकिस्तान से ख़ाली हाथ लौट आए थे। उसकी बहन के लिए उनको कोई उचित रिश्ता नहीं मिला था। एक-दो लड़के नज़र में आए भी, मगर महमूद की बहन रुख़साना ने उन्हें रद्द कर दिया। और फिर रुख़साना ने कहना शुरू कर दिया—मेरा तो यहां दम घुटता है। वास्तव में उन दिनों पाकिस्तानी मुल्ला लोग औरतों के पर्दे पर बड़ा ज़ोर दे रहे थे। बुरक़े के बिना गली-बाज़ार में निकली औरतों पर लोग आवाज़ें कसते थे। रुख़साना की अम्मी तो चादर ओढ़ लेती मगर रुख़साना से बुरक़ा नहीं पहना जाता था। उसे आदत ही नहीं थी। उसका जी घबराने लगता। यूं महसूस होता, जैसे किसीने उसे जकड़कर रख दिया हो। उसके सिर पर तो चुनरी भी बड़ी मुश्किल से ठहरती थी। उसकी अम्मी बार-बार उसे टोकती रहती। बार-बार उसे याद दिलाती रहती।

उस दिन तो हद ही हो गई। रुख़साना अपनी चचाज़ाद बहनों के साथ रावलपिंडी की किसी गली में जा रही थी। उसके बालों की दो चोटियां छाती पर लहरा रही थीं। उसकी चुनरी उसके सिर से फिसलकर कंधों पर से लुढ़कती ज़मीन पर घिसट रही थी। लड़कियां हंस-बोल रही किसी बात का मज़ा ले रही थीं कि अचानक एक लम्बी दाढ़ीवाला मौलवी, हाथों में कैंची लिए उनके सामने आ खड़ा हुआ। "ठहर तो जा कमज़ात!" रुख़साना को उसने कंधों से पकड़कर रोक लिया। "तेरी इन दो चोटियों को कतरकर मैं तेरे हाथ में देता हूं—जिनकी तू इस तरह नुमाइश कर रही है।" रुख़साना के सोते सूख गए। उसे लगा, जैसे मूर्च्छित होकर वह गली में ही औंधी जा गिरेगी। इतने में किसीने आकर मुल्ला को बताया, "लड़की परदेसी है, पाकिस्तानी नहीं," तब कहीं वह बाज़ आया। और जब उसने सुना कि वह भारत से आई है तो उसने ज़ोर से गला साफ़ करते हुए थूक दिया। लाहौल पढ़ता हुआ, 'काफ़िर मुल्क', 'काफ़िर मुल्क' कहता चला गया।

रुख़साना ने बड़ी मुश्किल से वह रात पाकिस्तान में गुज़ारी। अगले दिन गाड़ी में बैठकर वे लोग स्वदेश लौट आए।

रुख़साना अत्यन्त सुन्दर लड़की थी। मसूरी कानवेंट की पढ़ी हुई।

सजने-संवरने की शौकीन। वह तो अभी स्कूल में ही थी कि उसने नाखूनों को रंगना शुरू कर दिया था। कालेज में पहुंची तो उसका हेयर ड्रेसर के बाकायदा आना-जाना शुरू हो गया। हम-उम्र लड़कियों से मिलकर उसने कई शरारतें की थीं। सिगरेट की डिबिया तो वह प्रायः अपने हैंड-बैग में रखती थी, जैसाकि उन दिनों फ़ैशनपरस्त लड़कियों का तौर-तरीक़ा था। पिए-न-पिएं किसी बहाने बटुआ खोलकर सिगरेट की डिबिया की नुमाइश जरूर कर देती।

गाड़ी में बैठी रुखसाना सोचती रही, वह तो पाकिस्तान में कभी नहीं रह सकेगी। पाकिस्तानी फ़िल्में एकदम बोर थी। जो कोई ढंग की थीं, वे हिन्दुस्तानी फिल्मों की हू-ब-हू नकल थीं। पाकिस्तान में रहने का मतलब ही क्या जो सारा दिन कोई हिन्दुस्तानी रेडियो सुनता रहे? कभी 'उर्दू सर्विस' तो कभी 'विविध भारती'। पाकिस्तान में रहने का मतलब ही क्या जो कोई हिन्दुस्तानी फिल्म-स्टारों के फ़ैशन की नकल करता रहे? पाकिस्तान में उन दिनों उसके हाथ उर्दू का एक पुराना रिसाला आ गया। उसमें एक कार्टून था। नेहरू क्लास रूम में बैठा सलेट पर सवाल हल कर रहा है, लियाकत अली पीछे बैठा चुपके से नकल टीप रहा है। और सामने ब्लैक-बोर्ड पर लिखा है, 'कान्स्टीट्यूशन'। रुखसाना को जब उसका ध्यान आता तो उसकी हंसी फूटने लगती।

बेगम मुजीब ने रुखसाना को देखा और उसकी दीवानी हो गई। उसका जी चाहता कि रात होने से पहले उस लड़की को बहू बनाकर वह अपने घर ले आए। वह हैरान होती रहती कि इतने दिन उस लड़की पर उसकी नजर क्यों नहीं पड़ी। लेकिन रुखसाना तो मसूरी में पढ़ी थी, होस्टल में रहती थी, अपने शहर कभी-कभार आती थी। उसका अब्बा अंग्रेज सरकार का कट्टर पिट्ठू था। फिर लीगियों से उसका याराना हो गया। शेख़ मुजीब से उसका परिचय तो था, लेकिन उनके घरवालों का आपस में मेल-मिलाप नहीं हुआ था।

जेबा अपनी अम्मी की हर कमजोरी को पहचानती थी। इससे पहले कि वह इस तरह की कोई गलती कर बैठे, एक दिन जेबा ने अम्मी को एक तसवीर लाकर दिखाई। किसी फिरंगी लड़की की तसवीर थी।

"अम्मीजान ! आप बेकार जाहिद भाई के ब्याह के लिए परेशान रहती हैं। भैया ने तो अपने लिए लड़की ढूंढ़ रखी है।"

"यह कौन है ?" बेगम मुजीब ने तसवीर को ध्यान से देखे बिना नीचे फेंक दिया।

"तसवीर को यूं फेंकने से किसीकी महबूबा को उसके दिल से तो नहीं निकाला जा सकता।" जेबा तसवीर को फ़र्श से उठाकर फिर अम्मी के पास ले आई। "आप इसे देखें तो सही। लड़की कितनी प्यारी है !" जेबा अपने भाई की सिफ़ारिश कर रही थी।

"गोरी चमड़ी होगी और बस।" बेगम मुजीब झाग-झाग हो रही थी।

"अम्मीजान ! आपको अपने बेटे के चुनाव पर तो एतबार होना चाहिए।" जेबा ने तसवीर फिर बेगम मुजीब के सामने ला रखी।

"मुझे नहीं देखनी है। सुन्दर होगी तो अपने घर।"

"नाक कितनी तीखी है ! मुखड़ा तो देखो, जैसे कली खिल रही हो ! गालों में गड्ढे। साफ़-सुथरे आसमान जैसी नीली आंखें। बाल कितने प्यारे हैं ! घुंघराले और काले। इस तरह की लड़की को 'ब्रूने' कहते है।"

"हां ! हां ! कुछ पहले भी एक 'ब्रूने' मेरे पीछे पड़ गई थी। तेरे अब्बा की कोई सहेली थी। उठते-बैठते उसका नाम जपते रहते। मैंने ऐसा फटकारा कि फिर कभी उसका जिक्र नहीं आया।"

"तो चाहे वही हो।" जेबा हंसने लगी। "वह नहीं तो उसकी कोई बहन-बेटी होगी। यूं लगता है, इस घर में किसी चिट्टी-चमड़ी वाली का आना लिखा हुआ है। इस आंगन में, बिल्ली-आंखों वाले, गोरे-चिट्टे बच्चे, गिट-मिट-गिट-मिट अंग्रेजी बोला करेंगे।"

"मुझे यह बेकार की बातें अच्छी नहीं लगतीं।" बेगम मुजीब उठकर कमरे में चली गई।

अकेली, अपने कमरे में बैठी, कितनी देर से बेगम मुजीब सोच रही थी कि जेबा इसलिए फ़िरंगिन का क़िस्सा ले बैठी थी क्योंकि उसकी मां, महमूद की बहन पर रीझ गई है। क्योंकि जाहिद के वास्ते, रुख़साना

का रिश्ता मांगने के लिए वह सोच रही थी। रुख़साना जैसी लड़की उसके हाथ लग जाए तो बेगम मुजीब का दिल कहना, और उसे कुछ नहीं चाहिए। घर की रौनक़ होगी। यह कोठी महक उठेगी। ऊंची-लंबी, कोमलांगी। फ़ैशनेबल। ज़ाहिद के अब्बा को सजने वाली लड़कियां अच्छी लगती थीं। हमेशा कहा करते—औरत को हसीन होना चाहिए। औरत को सजना-सवरना चाहिए। ज़िन्दगी की ख़ूबसूरती को बढ़ाना चाहिए। जैसे कलियां खिलती हैं, फूल ख़ुशबू लुटाते हैं। औरत को, हर देखने वाली आंखों में रौनक भर देनी चाहिए। हर दिल में एक उमंग पैदा कर देनी चाहिए। कमाने के लिए मर्द है। मेहनत करने के लिए मर्द है। ज़िन्दगी की तसवीर में रंग औरत भरती है। मुसकानें औरत लुटाती हैं। ख़ुशबू बिखेरना औरत के हिस्से में आया है।

और फिर उसका नाम कितना सुन्दर है—रुख़साना'''रुख़साना ज़ाहिद!

'मैं तो किसी फिरंगिन को इस घर में क़दम नहीं रखने दूंगी,' बेगम मुजीब बार-बार अपने मन में कह रही थी।

## २४

शेख़ शब्बीर की हालत दिन-पर-दिन बिगड़ती जा रही थी। भला-चंगा होता कि अचानक उसे दौरा पड़ता और फिर जो मुंह में आता, बकने लगता। कभी घर वालों को पहचानता, कभी न पहचान सकता। कभी घर में टिका रहता, कभी बाहर निकल जाता। बस एक शुक्र था, कोई बदतमीज़ी नहीं करता था। किसीपर हाथ नहीं उठाता था। प्रायः अपने-आपको कोसता रहता। कभी छल-छल आंसू रोने लगता। कभी एकदम उसके हाथ-पांव ठंडे हो जाते। उस रोज़ मियां-बीवी घर में अकेले थे। सांझ ढल रही थी। हल्का-हल्का अंधेरा हो रहा था। कितनी ही देर घर के एक कोने में अकेला बैठा, शेख़ शब्बीर फटी-फटी आंखों से इधर-

ख रहा था। किसी सोच में डूबा हुआ। आम तौरपर शाम को ...
ह वाहर निकल जाया करता था। कभी तोपख़ाने की ओर, कभी
तों की ओर, कभी ख़लासी-लाईन की ओर, कभी चांदमारी की
जैसे एकाएक कोई वादल फटता है, उसकी वीवी ने देखा कि शेख़
र की आंखों में से आंसुओं की धार वहने लगी। कुछ भी तो नहीं
था। सारा दिन वह घर पर ही रहा था। न किसीने भला कहा,
रा। वस मेरठ से कुदसिया वीवी की चिट्ठी आई थी। सव ख़ैरियत
ज़ाहिद लौट आया था। घर भरा-भरा लग रहा था। अव वह सोच
थी कि ज़ाहिद और ज़ेवा के व्याह रचा दिए जाएं। दोनों कव के
हने लायक़ हो चुके थे।

चिट्ठी में उसने इस वात की ओर भी इशारा किया था कि चाहे
मा का दोष था या नहीं, वेगम मुजीव का मन अभी तक नहीं मानता
ा कि उसे मुंह लगाए। वहन-भाई आपस में ज़रूर मिलते थे। उन्हें
उसने कभी नहीं रोका था। लेकिन स्वयं उसका अपना मन नहीं मानता
या कि सीमा के साथ कोई वास्ता रखे। क्या हुआ जो गुंडे छः थे? उनके
साथ मुक़ावला करती। लड़ती-लड़ती मर जाती। अपनी इस्मत के लिए,
अपने ईमान के लिए औरत जान पर खेल जाती है।

"ईमान की वात है," उस शाम अपनी वीवी को पलंग पर अपने
साथ विठाकर, शेख़ शव्वीर आप-से-आप वोलने लगा, "ईमान की वात है
वेगम! तुझसे निकाह के वाद वस छः वार झक मारी है।"

"छोड़ो मुझे। क्या ऊलजलूल वोल रहे हो?" शेख़ शव्वीर की वीवी
वांह छुड़ाकर जाना चाहती थी लेकिन उसके शौहर ने वड़ी मज़वूती से
उसे पकड़ा हुआ था।

"आज तो तुम्हें सुनना ही होगा। आज तो तुम्हें यह आईना देखना
ही होगा।" शेख़ शव्वीर अपनी ज़िद पर अड़ा हुआ था।

"मुझसे कौन-सी वात भूली है? किसी व्याहता को क्या पता नहीं
होता कि उसका शौहर क्या करतूत करके आया है?" वेगम शव्वीर कह
रही थी।

"तुम्हें पता है, तुम्हारे हाथों की मेहंदी अभी उतरी नहीं थी कि..."

शेख शब्बीर अभी बोल ही रहा था कि उसकी बीवी ने उसे टोककर कहा, "आपने मायके से मेरे साथ आई कनीज पर हाथ डाला है।" बेगम शब्बीर मुसकरा रही थी।

"हाथ ही नहीं डाला था, एक दिन गुसलखाने में जब वह कपड़े धो रही थी, मैंने कपड़ों पर उसे गिराकर'''और फिर पूरा नल खोलकर'''"

"आपका मतलब है, तेज-तेज चल रहे नल की वजह से मुझे आपकी आवाज नहीं आ रही थी? शृंगार-मेज के सामने बैठी मैं बालों का वैसा जूड़ा बना रही थी, जैसा आप कई दिनों से कह रहे थे, लेकिन फिर मैंने अपने हाथ को रोक लिया और सादी-सी चोटी बनाकर उठ खड़ी हुई।"

शेख शब्बीर टुकुर-टुकुर अपनी बीवी की ओर देखता रह गया।

"और फिर तुम्हारी सहेली सजनी के साथ'''।"

"हां! हां! वह तो आपकी जूतों में मरम्मत करने को फिरती थी। मैंने ही उसे हाथ जोड़े। उसके कदमों पर गिरी। उससे माफी मांगी। वह तो कहती थी कि उसका पुलिस अफसर घरवाला कोल्हू में जुतवा देगा।"

"लेकिन उस वक्त तो उसने मुह से आवाज तक नहीं निकाली थी।"

"शरीफ औरत शोर करके अपनी मिट्टी पलीद करवाती। एक बदनामी होती, दूसरा उसका घर टूटता। यही मैंने उसे समझाया था—जो होना था, सो हो गया। और उसने सब्र-शुक्र कर लिया। बेचारी हिन्दू औरत। उस साल वह वैष्णोदेवी, अमरनाथ और न जाने कहा-कहा की यात्रा करने गई और अपनी भूल बख्शवाती रही।"

शेख शब्बीर को लगा, जैसे उसकी बीवी ने उसके मुह पर थप्पड़ दे मारा हो। बार-बार वह अपने गाल पर हाथ लगाकर सहलाने लगता। उस समय तो जैसे मजे-मजे में उसने पलकें मूद ली थीं। लेकिन फिर कभी उनके आगन में उसने पाव नहीं धरा था। और फिर कुछ समय बाद उनकी तब्दीली हो गई। उनका घरवाला बड़ा बदनाम, बड़ा बिगड़ा हुआ पुलिस अफसर था। वह तो कुछ भी कर सकता था।

"और फिर तुम्हारी चचाजाद बहन अर्जमन्द के साथ?" शेख शब्बीर

के सिर पर जैसे भूत सवार हो। पता नहीं, कब के पुराने मुर्दे उखाड़ रहा था।

"अर्ज़मन्द को गिला यह था कि बात आपकी उसके साथ चली और निकाह आपका मेरे साथ हो गया।" बेगम शब्बीर हंस रही थी, "मैंने कहा, बहन, तू भी मजा चख ले। सारी उम्र कुंवारी रही और फिर तपेदिक से मरी।"

"क्या सच, तुम्हें मेरी इस करतूत का भी पता था?" शेख़ शब्बीर ने परेशान होकर पूछा।

"यही नहीं, मुझे यह भी पता था कि किस दाई से आपने उसका हमल गिराया था। वह आपका राज़ मेरे पास बेचने के लिए आई थी। मैंने दे-दिलाकर उसका मुंह बंद कर दिया। सोने की बालियां, जिनके लिए नौकरों को चोर ठहराया जा रहा था, वो उस कुटनी की मुट्ठी गर्म करने के लिए काम आई थीं ताकि शेख़ साहब का भंडा न फूटे।"

अब शेख़ शब्बीर का दूसरा गाल तमतमा रहा था, जैसे किसीकी पांचों-की-पांचों उंगलियां उसमें धंस गई हों। शेख़ शब्बीर ने अपना एक हाथ उस गाल पर रख लिया। उसे यूं लगता, जैसे वह गाल लाल-सुर्ख़ हो रहा हो। वह उसे ढक रहा था।

"और ईदन कोठे वाली, जिसका मुजरा हमने करवाया था, बेटे की मुसलमानियों वाले दिन?"

"मुझे पता था, आप और आपके शराबी दोस्त कोई गुल जरूर खिलाएंगे। जैसे आप लोग दारू पी रहे थे। जैसे आप लोग उसपर पैसे लुटा रहे थे।"

"तुम तो जाकर सो गई थीं···यह कहकर कि मैं तो दिन-भर की थकी हुई हूं।" शेख़ शब्बीर ने उसे छेड़ा।

"किसी औरत को क्या नींद आती है जब उसके आंगन में कोई परायी औरत अपने हुस्न के तीर चला रही हो?"

बेगम शब्बीर की आंखों में आंसू आ गए। उसकी आवाज़ भर आई :

"मैं तो अल्लाह के आगे हाथ जोड़ रही थी, कि वह औरत मेरे घर में कोई आग न लगा जाए। इस तरह की बाज़ारू औरतों में दस बीमारियां

होती है। मैं तो अपने कमरे को अंदर से बंद करके सारी रात सजदे में पड़ी रही। जब आप…"

शेख़ शब्बीर को लगा, जैसे उसके मुह पर किसीने थूका हो। उसे अपने-आपसे बू आ रही थी। लेकिन एक पागलपन, वह अपनी ज़िद पर अड़ा हुआ था, "अच्छा, जब नूरी पैदा हुई तो उसकी नर्स…" शेख़ ने सोचा कि उसका यह कारनामा उसकी बीवी को कदापि मालूम नहीं होगा।

"वह शाटिन? चप्पा-चप्पा बालों वाली? बेहयायी की भी हद होती है। मैं साथ के कमरे में जचगी के दर्द से बेहाल हो रही थी, और आप लोग, होंठों-पर-होंठ, एक-दूसरे को चूम रहे थे। सामने दीवार पर लगे आदमक़द आईने में मैं सब कुछ देख रही थी। उस दिन मुझे मर्दज़ात से सख़्त नफ़रत हुई थी।" बेगम शब्बीर फिर भावुक हो उठी, "कोई औरत जान पर खेलकर किसीका बच्चा किसीके लिए पैदा कर रही है, और उसका मर्द, बच्चे का बाप, आधी रात को साथ के कैम्बर में उसका हक़ मार रहा है। और फिर जितने दिन मैं अस्पताल में रही, आप उस बद-तमीज़ औरत के क्वार्टर में जाकर अपना मुह काला करते रहे।"

"उसके बाद भी।" शेख़ शब्बीर की बेहयायी की कोई हद नहीं थी।

"यही नहीं, जिन दिनों मैं अस्पताल में थी—नूरी के पैदा होने के बाद मुझे बुख़ार रहने लगा था—आप पीछे घर में अपनी पड़ोसिन के साथ रंग-रेलियां मनाते रहे। कमज़ात औरत अपना मंगल-सूत्र उतारकर पराये मर्द की सेज को सजाती रही और आख़िरी दिन, मंगल-सूत्र, वैसे-का-वैसा तकिये के नीचे भूल गई।

"अगले दिन मेरे अस्पताल से लौटने पर मुझसे मिलने आई। बार-बार कह रही थी, मेरा मंगल-सूत्र कहीं पर गिर गया है। मैंने कहा, यह तो बड़ी बद-शगुनी है। और फिर अगले दिन उसका मंगल-सूत्र मैंने उसके घर भिजवा दिया। मैंने कहलवा भेजा कि मुझे वह गली में पड़ा हुआ मिला था। और उसने चुपके से उसे संभाल लिया। फिर कभी हमारे यहां नहीं आई।"

शेख़ शब्बीर सुनते-सुनते ठंडा-यख़ हो गए। काटो तो जैसे लहू की बूंद न हो।

## २५

इतवार का दिन था। जेबा, जिसने कुछ दिनों से शहर के एक स्कूल में पढ़ाना शुरू कर दिया था, उसकी छुट्टी थी। ज़ाहिद की भी उस दिन ड्यूटी नहीं लगी थी। बेगम मुजीब ने महमूद और रुख़साना को दोपहर के खाने पर बुला रखा था।

मेहमानों को आए हुए बहुत देर नहीं हुई थी कि जेबा रुख़साना को लेकर अपने कमरे में चली गई और फिर जब तक मेज़ पर खाना नहीं लग गया, उनकी कोई ख़बर नहीं थी। कमरा बंद करके, गप-शप कर रही थीं, हंस-खेल रही थीं।

ज़ाहिद और महमूद गोल कमरे में अकेले रह गए थे। महमूद को लगता, जैसे उसके साथ धोखा हो गया। वह सोचकर आया था कि रुख़साना का साथ होने की वजह से वह जेबा के साथ मिलकर बैठ सकेगा। इतने दिनों से वह खफ़ा थी, दूर-दूर रहती थी। इस तरह उसकी नाराज़गी शायद दूर हो जाएगी। जितना उसकी अम्मी उसके नज़दीक आ रही थी, जेबा उतनी ही परायी होती जा रही थी। अब तो उनकी बोलचाल तक बंद थी।

ज़ाहिद खुश था। उसे अवसर मिल गया था ताकि कुछ देर महमूद के साथ अकेले बैठकर बातें कर सके। उसे हमेशा महसूस होता रहा था कि महमूद के विचारों में कहीं अटपटापन ज़रूर था। हर वक़्त उसे इस्लाम ख़तरे में नज़र आता। ख़ास तौर पर भारत के मुसलमानों के लिए उसे चारों ओर अंधेरा दिखाई देता। वह सोचता, रोशनी की एक किरण बस पाकिस्तान था। पाकिस्तान, जिसे इस्लाम के नाम पर क़ायम किया गया था। इस्लाम के बताए रास्तों, इस्लाम की परम्पराओं को फिर ज़िंदा कर सकता था।

"आप क्या सोचते हैं कि आज से चौदह सौ साल पहले, ज़िंदगी का जो ढंग पैगंबर ने बताया, उसे आज भी लागू किया जा सकता है?"

"बेशक़!" महमूद में एक कट्टरपंथी की दृढ़ता थी।

"अगर कोई चोरी करे, तो उसके हाथ काट देने चाहिएं?"

"बेशक !"

"अगर कोई परायी औरत की तरफ आंख उठाकर देखे ?"

"उसके हाथ और पांव दोनों काट देने चाहिए।"

"औरत को पर्दे में रहना चाहिए ?"

"बेशक !"

और जाहिद की आंखों के सामने, अभी-अभी मोटर में से निकली रुख़साना की तसवीर तैरने लग गई। तरबूज़ी रंग की रेशमी साड़ी। अजन्ता स्टाइल के जूड़े में महक रही गुलाब की अधखिली कली, कानों की बालियों में पिरोए हुए झम-झम कर रहे सच्चे मोती, लाल-सुर्ख रंगे होंठ, माथे पर लाल बिंदी, एक शोला-सा जैसे आंखों को चुंधिया कर गुज़र गया हो। एक नज़र, और जाहिद बस उसके मासूम जैसे पांव के लाल रंगे नाख़ूनों की तरफ देखता रह गया। उसके मेहंदी रचे पांव के तलवों को निहारता रह गया। कब से ज़ेबा उसे अपने कमरे में ले गई थी, लेकिन अभी तक उसके रूप की छाप वैसी-की-वैसी महसूस हो रही थी। अभी तक उसकी सुगंध से सारे-का-सारा गोल कमरा महक रहा था।

"पैगंबर ने मुसलमान के लिए चार बीवियां जायज़ करार दी हैं।"

"बेशक, अगर कोई चारों को एक-सा प्यार दे सके। एक नज़र से देख सके। लेकिन साथ ही हज़रत ने यह भी फ़रमाया कि चारों को एक आंख से देखना कोई आसान काम नहीं। एक जैसा चारों को हक देना बड़ा मुश्किल होता है।

"इसलिए आदमी को एक ही बीवी के साथ गुज़ारा कर लेना चाहिए। बस, यही मैं कहना चाहता था कि इस्लाम की तालीम को ठीक तौर पर पेश किया जाए। पैगंबर के बताए रास्ते को ठीक नज़र से देखा जाए। मुसलमानों को नये ज़माने के साथ कदम मिलाकर चलना होगा।"

उधर ज़ेबा के कमरे में, खिड़कियों के पर्दे गिराकर, दरवाज़े को बंद करके, जाहिद द्वारा विलायत से लाए हुए एल० पी० रिकार्डों की धुनों के साथ रुख़साना और ज़ेबा बाहों-में-बाहें डाले, आंखें मूंद एक नशे-नशे में नाच रही थीं। धीमा, बहुत धीमा स्वर, जैसे मुंह तक भरी शराब की बंद बोतलें हों। नाच-नाचकर जब थक गईं, तो पलंग पर लेटकर सिगरेट

पीने लगीं, कश लगाती हुई धुएं के छल्ले बना रही थीं।

कुछ देर के बाद रुख़साना पाकिस्तान की शायरा परवीन शाकिर की नज़्म गुनगुनाने लगी :

"जब आंख में शाम उतरे
पलकों में शफ़क़ फूले
काजल की तरह, मेरी
आंखों को धनक छू ले
उस वक़्त कोई उसको
आंखों से मेरी देखे
पलकों से मेरी छू ले—उस वक़्त···

नज़्म के बोल ख़त्म हुए और फिर दोनों ज़ेबा और रुख़साना, उदास-उदास, रुआंसी-रुआंसी-सी हो गईं। दोनों की आंखों में जैसे आंसू छलक आए हों। कितनी ही देर दोनों वैसी-की-वैसी ख़ामोश पड़ी रहीं।

बेगम मुजीब सारा वक़्त बावर्चीख़ाने में थी। पहले खाना तैयार करवाती रही, फिर खाना मेज़ पर लगाती रही। उसे अच्छा लग रहा था, कि ज़ाहिद और महमूद गोल कमरे में बैठे सिगरेट पी रहे, गप-शप कर रहे थे। ज़ेबा और रुख़साना जवान-जहान लड़कियों की तरह बंद कमरे में 'शिपियां' लड़ा रही थीं।

कुछ देर यूं लेटी रही। फिर ज़ेबा के मन में न जाने क्या आया कि उसने रुख़साना की साड़ी उतारकर एक ओर रख दी और उसे अपनी मनमर्ज़ी से सजाना शुरू कर दिया। चूड़ीदार पायजामा, डोरिए का कुर्ता, ऊपर महीन बेलबूटों का दुपट्टा। उसका जूड़ा खोलकर सीधी मांग काढ़ी और फिर दो चोटियां बना दीं। पांव में पंजाबी जूती पहनकर जब रुख़साना ने अपने-आपको आईने में देखा—'उई अल्लाह! मैं तो और-की-और लग रही हूं,' उसके मुंह से निकला।

और फिर ज़ेबा ने कैसेट-रिकार्डर पर क़व्वाली का टेप बजाना शुरू कर दिया :

'मेरे दर्द को जो ज़बां मिले
मुझे अपना नामो-निशां मिले'—फ़ैज़

कव्वाली के बोल शुरू ही हुए थे कि दरवाज़े पर बेगम मुजीब दस्तक दे रही थी—खाना मेज़ पर लग गया था।

रुख़साना को नये कपड़ों में सजा हुआ देखकर हर कोई उसकी ओर देखता रह गया। बेगम मुजीब अपने कमरे में गई और मोतिया के फूलों का एक गजरा लाकर उसने रुख़साना को पेश किया। रुख़साना ने उसे अपनी एक चोटी में लगा लिया और फिर झुककर ज़ेबा की अम्मी को आदाब किया।

खाने के कमरे में, मेज़ पर इतना तकल्लुफ़ देखकर रुख़साना के मुंह से निकला, "यू लगता है, जैसे किसी शादी की दावत हो।"

"नहीं, दो शादियों की," महमूद बोला। और फिर सब हंसने लगे। इतने में बेगम मुजीब हर एक को अपनी-अपनी कुर्सी पर बिठाने लगी।

उस दिन सचमुच बेगम मुजीब ने हद ही कर दी थी। तंदूरी मुर्ग़, बेक की हुई मछली, मुर्ग़ मुसल्लम, बिरयानी, सीख़-कबाब, दो प्याज़ा गोश्त, तिक्के, मटर-पनीर, पनीर-साग, दही की चटनी, नान, तंदूरी पराठे, दो-तीन तरह का मीठा, जिसमें शाही टुकड़े शामिल थे। और हर पकवान बेगम मुजीब ने अपने सामने तैयार करवाया था। बस नान बाज़ार से मंगवाए थे। खाना देखकर हर कोई परेशान था, कहां से शुरू किया जाए, क्या खाया जाए, क्या छोड़ा जाए!

"इस दावत में तुमने क्या तैयार किया है?" ज़ेबा की ओर देखते हुए ज़ाहिद ने पूछा। ज़ेबा ने बेझिझक रुख़साना की ओर देखा और हर कोई उसको दाद देने लगा।

"स्कूल की लड़की लगती है।" महमूद ने कहा।

"तभी तो मैं साड़ी पहनती हूं," रुख़साना कहने लगी, "यू तो मेरी कभी भी बारी नहीं आएगी। पता नहीं कितने दिन और इंतज़ार करना पड़े।"

"बेचारी सारा पाकिस्तान घूम आई है, लेकिन किसीने इसे नहीं नवाज़ा।" महमूद ने चुटकी ली।

"वह तो शुक्र है कि मेरी चोटियां बच गईं। बस, कैंची चलने ही वाली थी।" रुख़साना ने रावलपिंडी शहर के मौलवी के गुस्से को

याद करते हुए कहा।

और फिर ज़ेवा वह क़िस्सा ज़ाहिद को सुनाने लगी।

"इस तरह के मुल्क का क्या होगा?" ज़ाहिद ने मायूस होकर कहा।

"इसमें ख़रावी क्या है?" महमूद कहने लगा।

"क्या आप अपनी वीवी से पर्दा कराएंगे?" ज़ेवा के मुंह से अचानक निकला।

महमूद के हाथ-पांव फूल गए। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या जवाव दे!

## २६

राजीव और स्वर्णा सप्ताहांत के लिए मेरठ आए हुए थे। ठहरे चाहे किसी संवंधी के यहां थे, लेकिन सुवह से लेकर आधी रात तक, वेगम मुजीव के घर हंसते-खेलते, खाते-पीते रहते। लगातार ताश चलती। एक के वाद एक वाज़ी। वेगम मुजीव कभी महमूद और रुख़साना को भी चाय या खाने पर वुला लेती। ताश के साथ लतीफ़ेवाज़ी, गाना-वजाना, खाना-पीना, छेड़-छाड़ चलती रहती। अनोखा मेल था। महमूद सिगरेट पीता था, शराव को हाथ नहीं लगाता है। राजीव को शराव से परहेज़ नहीं था मगर सिगरेट उसने कभी नहीं पी थी। ज़ाहिद शराव भी पीता था, सिगरेट भी। ज़ेवा लुक-छिपकर सिगरेट पी लेती थी। रुख़साना सिर्फ़ फ़ैशन के लिए पीती थी। लेकिन मर्दों के सामने दोनों नहीं पीती थीं। राजीव इतने वरस विलायत काटकर आया था, फिर भी शाकाहारी था। स्वर्णा गोश्त खाना सीख रही थी। कवाव तो खा लेती लेकिन हड्डीवाला गोश्त उससे नहीं खाया जाता था। महमूद सिर्फ़ सफ़ेद गोश्त खाता था, मछली और मुर्ग़ा। ज़ाहिद को सफ़ेद गोश्त से चिढ़ थी। वह तो वकरे का गोश्त खाता था या वीफ़। ज़ाहिद को पोर्क पसन्द था। महमूद को पोर्क से नफ़रत थी।

दोनों दिन ताश-पार्टी खूब जमी। सिवाय इसके कि कुछ देर में महमूद को महसूस होने लगा कि वह लगातार हारता जा रहा था। बारी-बारी वह हर किसीको अपना पार्टनर बना चुका था। लेकिन हमेशा हारता रहा। बस, एक ज़ेबा उसके काबू में नहीं आई। आख़िर उसने ज़ेबा की ओर देखा। "न बाबा, हमें पाकिस्तान नहीं बनना है," ज़ेबा कह-कर टाल गई।

बेगम मुजीब खुश थी, बहुत खुश। ज़मीन पर जैसे उसके पांव न लगते हों। इस तरह का वातावरण उसके घर में होता था किसी ज़माने में, जब उसका मियां दीवाली के दिनों में ताश की चौकड़ी जमाया करता था। हर मज़हब के उसके दोस्त आते थे। आधी-आधी रात तक उनकी ख़ातिर करती नहीं अघाती थी। शराब पीने वाले शराब पीते, सिगरेट पीने वाले सिगरेट, पान के शौकीनों के लिए वह स्वयं पान लगाती रहती। कोई मसाला पसन्द करते, कोई बिना मसाला के पान चबाते। किसीको मीठे पान के लिए फ़रमाइश होती तो कोई सादा पान मांगता। किसीकी पसंद कुछ, किसीकी कुछ, लेकिन सारे उसके शौहर के दीवाने थे।

वह दिन जब परहेज़गार हिन्दू बेगम मुजीब के घर चुपके से गोश्त खाने के लिए आया करते थे। रमज़ान के दिनों में मुसलमान उनके यहां खाना खाने आते। बैठक में चुपचाप बैठे सिगरेट पीते रहते। और तो और, शहर का पुलिस-कप्तान, जब भी उसका जी चाहता, शाम को उनके यहां आकर चुस्की लगा लेता। और फिर जब ऊपर से हुक्म मिलता, चुपके से दौरे पर निकल जाता और उसके अमले के लोग आकर शेख़ मुजीब को गिरफ्तार कर लेते। किसीकी क्या मजाल जो उसे हथकड़ी लगाए!

ताश खेलते-खेलते ख़बरों का वक़्त हुआ तो ज़ेबा ने उठकर रेडियो खोल दिया। पाकिस्तान की आर्थिक हालत डावांडोल थी। दिन-प्रतिदिन आम ज़रूरत की चीज़ें महंगी हो रही थीं। बंद और तालाबंदी की घटनाएं बढ़ रही थीं।

"अब वक़्त है कि हिन्दुस्तान से लड़ाई शुरू की जाए," ज़ाहिद ने कहा।

"क्यों?" महमूद चौंक उठा।

"आख़िर प्रजा का ध्यान किसी और तरफ़ लगाना तो ज़रूरी है।"

"और फिर अयूब इतने दिनों से सियासतदानों से वादे कर रहे हैं कि वह पाकिस्तानियों को कश्मीर जीत कर देगा। कब तक वह यूं सब्ज़बाग़ दिखाता रहेगा?" राजीव बोला।

"आप लोग तो ऐसी बातें करते हैं, जैसे आप सब पाकिस्तान के प्रेज़िडेंट की कैबिनेट के मेम्बर हों।" महमूद चिढ़कर बोला।

"यह बात नहीं है भाईजान!" रुख़साना उसे समझाने लगी, "आम आदमी की अक्ल भी कोई चीज होती है।"

"सारी अक्ल तो हिन्दुस्तानियों के पास है।" महमूद ने नाक चढ़ाकर कहा। इस बार फिर उसके पास बेकार पत्ते आए थे।

'यूं लगता है, जनाब जैसे उस पार से तशरीफ़ लाए हैं!' ज़ेबा ने जान-बूझकर महमूद की टांग खींची।

"इनका तो बस जिस्म इधर है, रूह तो सरहद के पार रहती है।" रुख़साना ने महमूद पर चोट की।

"यूं लगता है, जैसे महमूद अभी तक पाकिस्तान नहीं गए।" ज़ाहिद ने अनुमान लगाया।

"यही तो सारी मुसीबत है।" रुख़साना कहने लगी, "मेरी तरह एक बार मज़ा चख लेते तो फिर इन्हें अपना देश इतना बुरा न लगता।"

"अंधों में काना राजा।" महमूद ने जैसे ज़हर उगला हो। और फिर पत्ते फेंक दिए। यह बाजी भी वह हार गया था।

"जब तक ज़ेबा आपका साथ नहीं देती, भाईजान! आप कभी नहीं जीतेंगे।" रुख़साना कह रही थी।

लेकिन ज़ेबा कहां थी? शायद बावर्चीख़ाने में गई होगी। रात काफ़ी हो चुकी थी। बेगम मुजीब सोने के लिए अपने कमरे में चली गई थी। अब ज़ेबा मेहमानों की ख़ातिर कर रही थी। किसीने कॉफ़ी की फ़रमाइश की थी।

बावर्चीख़ाने में कॉफ़ी बनाते हुए ज़ेबा ने देखा, उसके पीछे कंधे से राजीव कॉफ़ी के प्याले में झांक रहा था। एकदम जैसे वह भौचक्की रह गई। राजीव की गरम-गरम खुशबूदार सांस उसकी गर्दन पर, उसके गले

के भीतर तक महसूस हो रही थी। वह घबराकर पीछे हटी और राजीव ने उसे अपनी मचलती हुई बाहों ने थाम लिया। जेवा की उसकी ओर वैसी-की-वैसी पीठ थी। उसने अपना सिर उठाकर राजीव की आंखों में झांका। अगले क्षण, राजीव के होंठ जेवा के होंठों पर थे। जैसे फूल की दो पत्तियां धीरे से एक-दूसरे को छू रही हों। एक खुशबू-खुशबू-सी थी। एकदम जैसे कोई मदहोश हो गया हो। जेवा राजीव की बाहों में ढेर हो गई। उसके बाहुपाश में समूची घुल गई। जैसे मिसरी की डली सुराही में विलीन हो जाती है।

महमूद ने फ़ैसला किया था कि अगली बाज़ी वह जेवा को पार्टनर बनाकर खेलेगा। कितनी देर वह इन्तज़ार करता रहा। जेवा का बनाया हुआ कॉफ़ी का प्याला कुछ देर बाद राजीव ने लाकर रुख़साना को पेश किया। कॉफ़ी की लत बस रुख़साना को ही थी। हर दो-तीन घंटे के बाद उसे कॉफ़ी की ज़रूरत महसूस होने लगती।

लेकिन जेवा कहां थी? कितनी देर से वह कहीं नज़र नहीं आ रही थी। महमूद उसके इन्तज़ार में सिगरेट फूंक रहा था। बाकी लोग ताश की बाज़ी जारी रखे हुए थे। रुख़साना घूंट-घूंट कॉफ़ी पीते हुए जीतती जा रही थी।

"कमबख़्त, जब मेरा साथ देती है, मुझे भी हराती है, ख़ुद भी हारती है।" महमूद जल-भुन रहा था।

"यही तो बात है भाईजान! तभी तो लोग कहते हैं कि ताश में बहन-भाई की जोड़ी नहीं निभती।" रुख़साना ने महमूद को छेड़ा।

"मैं जेवा को ढूंढ़कर लाती हूं।" स्वर्णा कहने लगी, "यूं लगता है, जैसे वह सुबह का नाश्ता तैयार करने बैठ गई है।"

"मैं बताऊं?" रुख़साना कहने लगी, "जेवा अपने कमरे में बिस्तर पर औंधी लेटी आसमान के तारे गिन रही है।"

और स्वर्णा ढूंढ़ते-ढूंढ़ते जेवा के कमरे में गई। सचमुच वह अपने पलंग पर लेटी थी, लेकिन वह तारे नहीं गिन रही थी, वह तो छम-छम आंसू रो रही थी। उसका तकिया जैसे निचुड़ रहा हो। स्वर्णा को अपने कमरे में अकेला देखकर उसकी चीख़ निकल गई। उसे अपने गले से

"आख़िर प्रजा का ध्यान किसी और तरफ़ लगाना तो ज़रूरी है।"

"और फिर अयूब इतने दिनों से सियासतदानों से वादे कर रहे हैं कि वह पाकिस्तानियों को कश्मीर जीत कर देगा। कब तक वह यूं सब्ज़बाग़ दिखाता रहेगा ?" राजीव बोला।

"आप लोग तो ऐसी बातें करते हैं, जैसे आप सब पाकिस्तान के प्रेज़िडेंट की कैबिनेट के मेम्बर हों।" महमूद चिढ़कर बोला।

"यह बात नहीं है भाईजान !" रुख़साना उसे समझाने लगी, "आम आदमी की अक्ल भी कोई चीज होती है।"

"सारी अक्ल तो हिन्दुस्तानियों के पास है।" महमूद ने नाक चढ़ाकर कहा। इस बार फिर उसके पास बेकार पत्ते आए थे।

'यूं लगता है, जनाब जैसे उस पार से तशरीफ़ लाए हैं !' जेना जान-बूझकर महमूद की टांग खींची।

"इनका तो बस जिस्म इधर है, रूह तो सरहद के पार रहत
रुख़साना ने महमूद पर चोट की।

"यूं लगता है, जैसे महमूद अभी तक पाकिस्तान नहीं ग
ने अनुमान लगाया।

राजीव और मैंने कहा था कि पाकिस्तान को अब कश्मीर का हौआ फिर खड़ा करना चाहिए।"

"लेकिन उन्होंने तो लड़ाई की शुरुआत भी कर दी है," बेगम मुजीब बोली। उनकी परेशानी जैसे उनके चेहरे पर अंकित थी। बेचारी का आधा खानदान इधर था, आधा उधर। उनका जेठ वहां बीमार पड़ा था। देवर इंजीनियर था। देवरानी का शौहर फ़ौज में कर्नल था। अभी-अभी ब्रिगेडियर बनाया गया था। और भी तो कितने रिश्तेदार थे। एक बेटी इधर ठीक सरहद पर अमृतसर में बैठी थी। चाहे इतने दिनों से बेगम मुजीब ने उसे मुंह नहीं लगाया था, लेकिन थी तो उनकी बेटी ही।

"हर कोई अपने हक़ के लिए लड़ता है।" महमूद कहने लगा, "पाकिस्तान की हुकूमत ने चुनाव करवाकर लोगों की राय जान ली है।"

"कि भारत पर हमला किया जाए?" बेगम मुजीब ने हैरान होकर पूछा।

"नहीं, कश्मीर पर अपना हक़ जमाया जाए" महमूद ने ज़रा धीमी आवाज़ में कहा।

जाहिद ने सुना और अपने निचले होंठ को काटा, जैसे कोई बात पीसकर रह जाए। इतने में टेलीफ़ोन बजने लगा। जाहिद ने शुक्र मनाया और गैलरी में फ़ोन सुनने चला गया।

महमूद अंग्रेज़ी की पत्रिका पढ़ने लगा। कुछ देर उसपर नज़र डालकर उसने उसे सामने मेज़ पर पटक दिया। ऐसा लगता था कि जो कुछ उसमें छपा था, महमूद को गवारा नहीं था। यह देखकर बेगम मुजीब उस पत्र को पढ़ने लगी। महमूद ने सिगरेट सुलगा लिया। तब तक जाहिद टेलीफ़ोन सुनकर आ गया था। टेलीफ़ोन सुनते हुए उसने मन-ही-मन फ़ैसला किया था कि महमूद से इस बारे में बात करनी चाहिए। जो भी उसका पक्ष था, उसे समझाना चाहिए।

"महमूद! जिस चुनाव की बात तुम कर रहे थे उसके बारे में तुमने उसमें देखा होगा, सब फ़र्ज़ी थे।" जाहिद महमूद को समझाने की कोशिश

कर रहा था। "पाकिस्तान में बीस फ़ीसदी लोग पढ़-लिख सकते हैं। इनमें तीन फ़ीसदी औरतें हैं जो पर्दे में रहती हैं। बाकी सत्रह में से सात फ़ीसदी लोगों से वोट देने का हक़ छीन लिया गया है। इनमें सरकारी नौकर भी शामिल हैं, स्कूलों-कालेजों के उस्ताद भी, और अख़बार-नवीस भी।"

"तो क्या हुआ? हर पिछड़े हुए देश में यूं ही होता है।" महमूद इस दलील में कोई वजन नहीं देख रहा था।

"और पाकिस्तान के अख़बार 'आउटलुक' का वह इल्ज़ाम भी तुमने पढ़ा है कि कराची की कानवेंशन में मुस्लिम लीग ने जनरल अयूब की अगवाई के लिए पचास हजार रुपया इकट्ठा किया और लोगों को भाड़े पर ट्रकों में लादकर हवाई अड्डे पहुंचाया गया।"

"मामूली बात है।" महमूद कहने लगा, "इस देश में कांग्रेस करोड़ों रुपये इस तरह के कामों में ख़र्च करती है।"

"और वह भी तुमने पढ़ा होगा कि चुनाव के बाद कराची के जिस हलक़े में लोगों ने अयूब को वोट नहीं दिए, अयूब के बेटे गौहर अयूब ने अपने गुंडों के साथ उनके घर जलाए। उनकी जवान बेटियों की इज्ज़त लूटी। कई लोगों को गोली का निशाना बनाया गया और पुलिस यह सब कुछ देखती रही। सितम यह है कि वह महाजरों की बस्ती थी। वे लोग, जो हिन्दुस्तान को छोड़कर पाकिस्तान की 'जन्नत' में गए थे।"

"अगर वे उधर न जाते तो इधर उनका यही हाल होता, जो हम-पर बीत रही है। कल राउरकेला में जो कुछ हुआ था···" महमूद अपनी बात पर अटल था।

"पूर्वी पाकिस्तान में जगह-जगह हड़तालें हो रही हैं। मिलें और कारख़ाने बंद पड़े हैं। पुलिस बात-बात पर गोली चलाती है। पश्चिमी पाकिस्तान जैसे किसी ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा हो। और सरकार ने घुसपैठियों को सिखलाई देकर कश्मीर में भेजना शुरू कर दिया है।"

"और चारा भी क्या रहा है?" महमूद बड़ी बेबाकी से पाकिस्तान का पक्ष ले रहा था।

"और महमूद! तुम सोचते हो, इधर भारत में हमने कांच की चूड़ियां

पहन रखी है ? हम उनका मुंह तोड़ जवाब नहीं देंगे ?" ज़ाहिद को आम तौर पर गुस्सा नहीं आता था, लेकिन जिस तरह महमूद बहस कर रहा था, ज़ाहिद अपने-आपको संयत न रख सका।

बेगम मुजीब इतनी देर से चुप बैठी थीं। बदमज़गी बढ़ती हुई देखकर उसके हाथ-पांव फूल गए। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। इतने में सामने से ज़ेबा आती हुई दिखाई दी। और महमूद अपनी सिगरेट बुझाकर चल दिया। उसका इरादा था कि वह बाहर आंगन में ज़ेबा से अकेला जा मिलेगा। इसमें भी उसे मायूसी हुई। ज़ेबा रिक्शा से उतरी। रिक्शावाले को उसने पैसे दिए और सामने लॉन में गुलाब की क्यारी की ओर चल दी। बेगम मुजीब बड़े धैर्य से ज़ाहिद को समझा रही थी कि उसकी नज़र बाहर जा पड़ी। जैसे ज़ेबा लॉन की ओर गई थी, उसकी अम्मी को लगा, कि उसने जानबूझकर महमूद को ज़लील किया था। एक क्षण भर में उसे महमूद की सारी बेहूदगी भूल गई और ज़ेबा पर गुस्सा आने लगा।

"यह भी कोई बात हुई !" जब ज़ेबा कमरे में आई, बेगम मुजीब उस पर बरस पड़ी, "यह भी कोई बात हुई, यूं घर आए किसीको ज़लील करना ! आदमी को अपना अख़लाक़ तो नहीं भूलना चाहिए।"

"अम्मीजान ! क्या हुआ है ?"

"महमूद को देखकर तुम लॉन की ओर निकल गईं ?" बेगम मुजीब ने इल्ज़ाम लगाया।

"और मैं सोचता हूं, वह जल्दी से उठा भी इसलिए था कि ज़ेबा से बाहर मुलाक़ात हो जाए।" ज़ाहिद हंसकर बात टाल रहा था।

"यह हंसने की बात नहीं है ज़ाहिद बेटा !" बेगम मुजीब सख्त ख़फ़ा थी।

"बेशक ! बेशक ! अम्मीजान !" ज़ेबा बैठकर आराम से बात करने लगी। "मैं अल्लाह की क़सम खाती हूं कि लॉन में जाने से पहले मैंने महमूद को नहीं देखा था। लेकिन अगर मैं उसे देख लेती तो ज़रूर लॉन की ओर चली जाती।"

ज़ाहिद ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा।

"आख़िर उसका गुनाह क्या है ?" बेगम मुजीब आज किसी नतीजे पर पहुंचना चाह रही थी।

"अम्मी ! इसपर पर्दा ही पड़ा रहने दें।" ज़ेबा बात को बढ़ाना नहीं चाहती थी।

"कोई नहीं ! ज़रा-सा रास्ते से भटका हुआ है। ख़ुद ही समझ जाएगा।" ज़ाहिद की राय थी।

"ज़ाहिद भाई, आपको मालूम नहीं, यह आदमी आस्तीन का सांप है।"

"क्या बके जा रही हो ज़ेबा ?" ज़ाहिद जैसे यह सुनने के लिए तैयार नहीं था।

"मैं बक नहीं रही। मैं एक हक़ीक़त को बयान कर रही हूं।" ज़ेबा को यह महसूस हुआ, जैसे अब उससे वह भेद छिपाया नहीं जाएगा। कितने दिनों से एक गठरी की तरह बांधकर उसे वह सिर पर लिए फिर रही थी।

"जिस तरह वह सोचता है, जिस तरह की बातें वह करता है, भारत के कई नौजवान यूं भटके हुए हैं। यह बीमारी बस मुसलमानों में ही नहीं, सिख भी तो खालिस्तान के नारे लगाते रहते हैं। और हिन्दू तो इनसे दो क़दम आगे निकल गए हैं। 'हिन्दू-राष्ट्र' का नारा मेरी नज़र में पाकिस्तान के नारे जैसा ही तो है। कल चीन हमारे मुंह पर थप्पड़ मारकर गया। और आज कई हिन्दुस्तानी चीन के दीवाने हैं। माओ का नाम लेकर राह पाते हैं।"

"महमूद इन सबसे ज्यादा खतरनाक है।" ज़ेबा के सब्र का प्याला छलक रहा था।

"मैं भी तो सुनूं ?" बेगम मुजीब को जैसे अभी तक महमूद के विरुद्ध किसीका आवाज़ उठाना स्वीकार न हो।

"अम्मीजान ! आपको याद है कि वह इतवार का दिन था जब महमूद ने आपको आकर बताया था कि अलीगढ़ में फ़साद छिड़ गए हैं ?"

"हां।"

"तब तक अलीगढ़ में फ़साद शुरू नहीं हुए थे। फ़साद उससे अगली

रात शुरू हुए।"

"क्या मतलब ?" बेगम सुजीव और जाहिद दोनों चौंक उठे।

"मतलब, अब आप खुद निकाल लें।" जेबा कह रही थी।

## २८

उस शाम लॉन के कोने में जेबा गुलाब की क्यारी की ओर गई थी, यह देखने के लिए कि काले गुलाब को कोई और कली लगी है या नहीं। पिछली बार राजीव ने उस गुलाब की एक अधखिली कली तोड़कर उसके बालों में सजाई थी। सारा दिन रही थी और फिर कितनी देर वे लॉन में टहलते रहे थे। जेबा का दीवानापन, उसे प्रतीक्षा रहती कि कब अगली कली फूटेगी, कब अगली कली खिलेगी और वह उसे अपने जूड़े में लगा सकेगी ?

राजीव के साथ उसकी मुहब्बत जैसे काले गुलाब का एक प्रतीक बन गई। उस जैसी सुन्दर। उस जैसी मदभरी। उस जैसी सुगंधित। उस जैसी मधुर। और उस जैसी काली। जैसे घुप-अंधेरी रात हो।

अकेली बैठी हुई, कभी जेबा को लगता, जैसे ठंडी-मीठी फुहार पड़ रही हो। जैसे रिमझिम-रिमझिम वर्षा होने लगे। छम-छम बादल फूट पड़े हों। चारों ओर जल-थल हो जाए। अन्दर-बाहर धुला-धुला। टीले-भुरभुरा रहे। गड्ढे भर रहे। निबिड़-निबिड़ रहे वृक्ष। नहाई-नहाई टहनियां। कहीं कलियां आंखें खोल रहीं। कहीं कलियां अंगड़ाई ले रहीं। कहीं कलियां शरमाई-शरमाई। कहीं कलियां मुसकाने जुटा रहीं। कहीं कलियां खिलखिल हंस रहीं। राह चलतों को बांध-बांध रहीं। खुशबू-खुशबू चारों ओर; भीनी-भीनी लपटें छोड़ रही फैल रहीं। एक मादकता, एक मस्ती, एक खुमार। एक मौज। एक लहर। एक उल्लास। जैसे धरती करवट ले रही हो। आवाजें दे रही हो। बाहें फैला-फैला बाहुपाश में लेने को मचल रही हो।

और फिर जैसे एकाएक काले बादल उमड़ आएं। चारों ओर

सुरमई घटाएं छा जाएं। बादल-पर-बादल चढ़ आएं। काले भैंसों की तरह। काले हाथियों की तरह। काले पहाड़ों की तरह। और फिर बिजली चमकने लगे, जैसे मस्त नागिन हो। विष घोल रही, फुंकार रही, काटने को दौड़ रही। बादल गरज रहे। गड़गड़ा रहे। गूंज रहे। आंधी और तूफ़ान। बौछार जैसे पटक-पटककर फेंक रही। और फिर ओले। कंकरीली बरफ़। लहू-लुहान कर रही हड्डियां चटखा रही। अंग-अंग घायल कर रही। निढाल अधमरा, बेहोश करके फेंक रही।

और ज़ेबा उदास-उदास, दुखी-दुखी, आस-पास से बेज़ार, रुआंसी-रुआंसी, अकेली पड़ी रहती। प्रायः उसका कमरा बंद होता। दरवाज़े को चटखनी लगी रहती। पर्दे गिरे हुए।

जितना इस बारे में सोचती, ज़ेबा को लगता, जैसे कोई बंद गली हो, जिसमें वह आ घुसी थी। चार क़दम, और एक पत्थर की दीवार से उसे अपना सिर टकराना होगा। दीवार के कान नहीं होते। दीवार की आंखें नहीं होतीं। न उसे कोई सुनेगा, न उसकी ओर कोई एक नज़र देखेगा। और उसका दम घुटकर रह जाएगा। न आगे जा सकेगी, न पीछे। जैसे कोई अंधे कुएं में कूद पड़े। नीचे ही नीचे धंसता चला जाए। अंधेरे से और घने अंधेरे में। कीचड़ से और गंदले कीचड़ में, दल-दल से और गहरी दल-दल में।

उसकी अम्मी ने अभी तक सीमा को मुंह ही नहीं लगाया था। इतने वर्ष हो गए थे। ढेर-सारा पानी पुल के नीचे से गुज़र चुका था। महात्मा गांधी की शहीदी के बाद अपने भीतर भरा हुआ साम्प्रदायिकता का विष, वह समूचा उगल बैठी थी। लेकिन अपनी बेटी को उसने अभी तक क्षमा नहीं किया था। उससे मिलने को उसका मन नहीं माना था। बहन-भाई आपस में मिलते। वह सुना-अनसुना कर देती। देखी, अनदेखी कर देती। न किसीको मना करती, न स्वयं किसीकी बात मानने को तैयार होती। भीतर-ही-भीतर ज़हर घोलती रहती। वह मां, ज़ेबा की इस ज़्यादती पर जो कुछ भी करे, वह थोड़ा होगा, वह तो उसे किसी हिन्दू लड़के का नाम नहीं लेने देती। वह तो सुनते ही माथा पीट लेगी। वह तो खाना-पीना छोड़ देगी। छल-छल आंसू बहा रही, फ़रियाद करेगी। वह तो चाहे कुछ

घाकर जान दे देगी। अपने-आपको कमरे में बंद करके फूक डालेगी। कुएं में छलांग लगाकर डूब जाएगी। वह फिर अपने शौहर की क़ब्र के चक्कर काटना शुरू कर देगी। घंटों सजदे में पड़ी दुआएं मांगती रहा करेगी। इस तरह की औरत की बद्-दुआ तो किसीको भस्म भी कर सकती है। इस तरह की विधवा के मुंह से निकला शाप किसीको सुलसकर फेंक सकता है। इस तरह के दुखी-दिल की कराह, कोई बच नहीं सकता। हरी टहनियां मुरझा जाती हैं। लहलहाते खेत मुरझा जाते हैं। फिर वह याद दिलाएगी अपने मियां की नमाज़ों की। अपने घर वालों की इस्लाम में अक़ीदत की।

उधर राजीव के घर वाले कट्टर सनातनधर्मी थे। अपनी कोठी में उनके मां-बाप ने अपना अलग शिवालय स्थापित किया हुआ था। हवन होते थे। चंदन लेपा जाता था। धूप-अगरबत्ती जलाई जाती। घंटे-घड़ियाल बजाए जाते। व्रत और उपवास, नियम और धर्म। राजीव खुद इतने बरस विलायत रहकर आया था, लेकिन फिर भी शाकाहारी था। कैसे भोलेपन से कहता था, "अगर बहुत मुश्किल होती तो मैं भूखा रह लेता।" लेकिन वह अपने धर्म पर वैसे-का-वैसा क़ायम रहा था।

उस दिन उसके होंठों पर होंठ, जब वह दीवानों की तरह उसे चूम रहा था, जैसे किसीपर जुनून सवार हो, ज़ेबा ने अत्यन्त लाड़ से उसे छेड़ते हुए कहा था, "राजीव! यह होंठ तो सारी उम्र मांस खा-खाकर पलीद हुए पड़े हैं।" और राजीव ने एक नज़र उसकी आंखों में देखा था और फिर उसे अपने बाहुपाश में लेकर चूमना शुरू कर दिया था। मुंह पर, माथे पर। पलकों पर, पपोटों पर, गले पर, गर्दन पर। उसके अंग-अंग को, पोर-पोर को दुलराता और चूमता।

ज़ेबा कहती, "राजीव! तुम कोई बात करो।"

वह आंख मूंदे एक बहशत में उसे प्यार करने लग जाता। उसके हाथों पर, उसकी बांहों पर, उसके कंधों पर।

ज़ेबा कहती, "राजीव! मुझे एक बात कहनी है।"

वह उसके होंठों पर होंठ रखे, उसकी ज़बान को जैसे ताला लगा देता। कितनी-कितनी देर उसकी जीभ इसकी जीभ पर तैरती रहती।

ज़ेबा कहती, "राजीव ! मैं अम्मी को क्या जवाब दूंगी ?"

और वह उसे और भी सीने के साथ चिपका लेता। और भी कलेजे के साथ भींच लेता।

ज़ेबा कहती, "मेरा नमाज़ी अब्बा मुझे कभी माफ़ नहीं करेगा," और वह उसे अपनी बांहों में लेकर जैसे समूचा उसे अपनी आंखों में बिठा रहा हो। अपने मन-मन्दिर में जैसे उसकी मूर्ति स्थापित कर रहा हो।

कितनी लंबी-लंबी चिट्ठियां लिखता था ! स्वर्णा कहती—विलायत से भैया का बस पैसों के लिए केवल आया करता था। चिट्ठियां तो बस इधर से जाती थीं। कभी पिताजी की, कभी माताजी की। कभी किसी बहन की, कभी किसी भाई की।

और अब एक चिट्ठी उसको हर रोज़ आती थी। कभी एक से अधिक। कभी चिट्ठी लिखकर टेलीफ़ोन करने बैठ जाता। टेलीफ़ोन करके हटता और चिट्ठी लिखने लगता। एक दीवानापन। कभी यूं भी किसीने किसी-से प्यार किया होगा ? कभी यूं भी कोई किसीपर कुर्बान हुआ होगा ?

ज़ेबा उसे समझाने की जितनी कोशिश करती, जितनी बार कोशिश करती उसे रोकने की, वह स्वयं उसके साथ बह-बह जाती। जितना अपने-आपको रोक-रोक रखती, हवा का एक झोंका आता और वह एक तिनके की तरह एक बवंडर में उड़ने लगती। राजीव को बचाते हुए वह खुद गोते खाने लगती।

ज़ेबा को डर था कि उसके ननिहाल को, राजीव के घर वालों से दोस्ती पीढ़ियों से चली आ रही थी। हमसाये मां-बाप के जाये। वे लोग तो घी-शक्कर की तरह कितने दिनों से रहते चले आ रहे थे। बंटवारे के फ़सादों के दिनों, अगर मुसलमानों का जुलूस सड़क से गुज़र रहा होता तो उसके ननिहाल के लोग राजीव की कोठी में जा बैठते। और अगर जुलूस जनसंघियों का होता तो राय साहब खुद नौकरों समेत, इनके ननिहाल की कोठी में आ जमते। क्या मजाल जो आंखें उठाकर भी कोई उनके बंगले की तरफ़ देख जाए। उनकी सड़क पर कैसी-कैसी वारदातें नहीं हुई थीं ! कितने घर लूटे गए थे ! लेकिन किसीकी मजाल नहीं थी कि इन दो पड़ोसियों की तरफ़ बुरी नज़र से देख जाए।

बड़ा शोर मचेगा ! बड़ा गद उछलेगा ! बड़ी-बड़ी बदनामी होगी ! जो कोई सुनेगा, उनकी मा को ताने देगा, उनके अब्बा को बुरा-भला कहेगा ! दोष हर कोई उनकी मा के सिर मढ़ेगा ! दोषी हर कोई उनके अब्बा को ठहराएगा !

बेचारी उनकी मा ! बेचारे उनके अब्बा !

## २९

कोई ज़माना था कि उनके यहा होली मनाई जाती थी। ज़ेबा को कुछ-कुछ याद था, लेकिन उसके अब्बा के गुज़र जाने के बाद फिर ऐसा कभी नहीं हुआ था। ख़ास तौर पर बटवारे के फ़साद के बाद। सीमा के शादी करवा लेने के बाद तो उनकी अम्मी ने जैसे अपने-आपको हिन्दू अड़ोस-पड़ोस से, हिन्दू मिलनेवालों से कतराना शुरू कर दिया था। उनसे मिलकर उसे लगता, जैसे उन्होंने ने किसीने उसके घर सेंध लगाई हो। धीरे-धीरे बेगम मुजीब सिमटती जा रही थी। इस तरह तो किसी दिन वह अपने-आपको अपनी केंचुली में समूची समेट लेगी। ज़ेबा कुछ इस प्रकार सोचती थी।

उस दिन यू ही बैठे-बैठे ज़ेबा कहने लगी, "अम्मी ! इधर हमने कभी होली नहीं मनाई ?"

"किसी मुसलमान के घर होली मनाने का कोई मतलब नहीं।" बेगम मुजीब के मुह से निकला, जैसे खीझी-खीझी हो।

"बेशक अम्मी ! पर होली कोई हिन्दुओं का त्योहार थोड़े ही है। यह तो क़ौमी त्योहार है।" ज़ेबा जानबूझकर अम्मी को छेड़ रही थी। अब से उसे महसूस होने लगा था कि ज़ेबा का राजीव से मेलजोल बढ़ रहा है बेगम मुजीब हिन्दू मिलने-जुलने वालों से खिची-खिची रहने लगी थी।

"ढोलक और डफ बजाना, गीत गाना, नाचना किसे अच्छा नहीं लगता ? होली से कितने दिन पहले लोग गा-गाकर, नाच-नाचकर दीवाने

होने लगते हैं।" ज़ेबा आपसे-आप बोल रही थी, जैसे किसी किताब में से कोई लिखा हुआ पढ़ रहा हो।

"और फिर होली से कोई पंद्रह दिन पहले ढाक और टेसू के फूलों को पानी के भरे मटकों में चूल्हों पर चढ़ा देना ताकि उनका रंग पानी में खिल उठे।"

"और फिर होली के दिन रंग और गुलाल, रंग और अबीर, कितना प्यारा त्योहार है!" यूं लगता, जैसे ज़ेबा तूलिका की कोमल नोक से कोई चित्र उभार रही हो।

"इस्लाम में ये सब कुछ हराम है।" बेगम मुजीब ने नाक चढ़ाकर कहा।

"अम्मी! मुग़ल राज में तो होली बड़ी धूमधाम से मनाई जाती थी। बादशाह होली मनाते थे। नाच होता था। जाम उछलते थे।"

बेगम मुजीब चुप। जैसे ज़ेबा बेकार बक-बक कर रही हो।

"बहादुर शाह ज़फ़र होली मनाते थे। उन्होंने तो होली पर शे'र भी लिखे थे:

क्यों मुंह पर रंग की मारी पिचकारी,
देखो कुंवरजी, दूंगी मैं गारी।"

बेगम मुजीब जैसे सुनी अनसुनी कर रही हो।

"नवाब आसिफ़-उद-दौला बड़े शौक़ से होली मनाया करते थे।"

"लखनऊ के नवाबों को तो कोई बहाना चाहिए होता था, रंगरेलियां मनाने का।" बेगम मुजीब ने फिर त्यौरी चढ़ाकर कहा।

"इन्द्र के अखाड़े का मंज़र पेश किया जाता। पिचकारियां छोड़ी जातीं। गुलाल उड़ाया जाता। जाम के दौर चलते। नाच और गाना। और फिर भूखे-नंगों को दान दिया जाता। भंडारे लगते। सदा बरत सजते।"

"सब फ़िज़ूल।" बेगम मुजीब को जैसे इसमें कोई दिलचस्पी न हो।

"अम्मी! भूखे-नंगों को खिलाना-पिलाना, ख़ैरात बांटना, ये हिन्दू रस्म-रिवाज में पहले नहीं होता था। होली के दिन ऐसा करना, यह मुसलमानों की देन है इस त्योहार को।"

"तो फिर क्या हुआ ?" बेगम मुजीब अभी तक नहीं भीगी थी।

"यही नहीं, हर फकीर, हर जरूरतमंद को एक-एक रुपया हदिया के तौर पर बांटा जाता था।"

बेगम मुजीब खामोश रहीं।

"नजीर अकबराबादी ने लिखा है :

मचाते होलियां आपस में ले अबीर औ गुलाल,
बने हैं रंग से रंगीं निगाह होली में।"

बेगम मुजीब चुप।

"अम्मी, अगर मुसलमान होली में दिलचस्पी न रखते होते तो शाह हातिम जैसा मुसलमान शायर होली का इस तरह का नक्शा कभी भी न खींच सकता :

मुहैया सब है अब असबाब होली
उठो यारो भरो रंगों से झोली
इधर यार और उधर खूबां एक़-आरा
तमाशा है तमाशा है तमाशा।
चमन में धूमो गुल चारों तरफ है
इधर ढोलक उधर आवाजें डफ है
इधर आशिक उधर माशूक की सफ
नशे में मस्त या हरेक जाम बर कफ़
गुलाल अबरक से भर-भर के झोली
पुकारें यक-बयक होली है होली।"

"लेकिन अम्मी पर आज यह शे'रो-शायरी क्यों हो रही है ? यह सब कुछ मुझे क्यों सुनाया जा रहा है ?"

"अम्मी ! हम हिन्दुस्तानी हैं। हमारी यह मौसम है।'

"बेशक ! बेशक !" बेगम मुजीब ने जैसे चिढ़कर कहा हो।

"अम्मी, यह बताइए कि हमारे अब्बा होली मनाते थे या नहीं ?"

जैसे किसीने किसीके जीवन के अत्यन्त सुन्दर अध्याय का पन्ना उलटकर उसके सामने खोल दिया हो। एक पलक झपकने की देर में बेगम मुजीब और-की-और हो गई। एकदम खिल-सी गई। उनकी आंखों

में कोई सुहानी यादें तैरने लगीं। और फिर एक नशे-नशे में वह ज़ेबा को बताने लगी :

"होली की दो यादें मुझे कभी नहीं भूल सकीं।"

"कौन-कौन-सी अम्मी ?" ज़ेबा ने उतावले होकर पूछा। अपनी अम्मी की निष्ठुरता के क़िले को तोड़ने में वह सफल हो गई थी।

"तब हमारा अभी रिश्ता नहीं हुआ था। मेरे अब्बा और अम्मी लड़के को देखने के लिए अलीगढ़ से मेरठ आए। तेरे दादा के यहां पहुंचे। उनकी बड़ी ख़ातिर हुई। लेकिन लड़का कहीं नज़र नहीं आ रहा था। वह होली का दिन था। कितनी देर इंतज़ार करते रहे। खा-पीकर निपटे तो लड़का आंगन में आन टपका। मुंह-सिर नीला-पीला, बालों में रंग, कपड़े रंग से लथपथ, हाथ क्या, बांहें क्या, गाल क्या, गर्दन क्या, हर अंग तरह-तरह के रंगों से पुता हुआ। जैसे कोई भूत आंगन में आ धमका हो। तेरे दादा-दादी के हाथ-पांव फूल गए। इस रिश्ते के लिए तो उन्होंने बार-बार पैग़ाम भिजवाए थे। और आज जब बात पक्की होने को आई थी, तो लड़का जैसे कोई बहुरुपिया हो, अपने होने वाले सास-ससुर के सामने खड़ा था। तेरे नाना-नानी हंस-हंसकर लोट-पोट हो रहे थे। फिर यह फ़ैसला हुआ कि वे एक रात मेरठ ही रुक जाएं। बाक़ी सारे दिन लड़के को मल-मलकर नहलाते रहे। तेरी दादी हंसा करती थी, साबुन की कई टिकियां घिसाई गईं, तब कहीं जाकर लड़का इस क़ाबिल हुआ कि उसके होनेवाले सास-ससुर के सामने पेश किया जा सके।"

"अम्मी ! क्या निकाह से पहले आपने अब्बा को कभी नहीं देखा था ?"

"देखा क्यों नहीं था ?" अम्मी के गाल लाल-लाल हो गए, "एक बार बात पक्की हो गई तो फिर हमें कोई रोक नहीं थी।"

"आपके मां-बाप ने इजाज़त दे दी थी ?" ज़ेबा ने हैरान होकर पूछा।

"यह बात तो नहीं !" बेगम मुजीब ने शरमाते हुए कहा, "लेकिन हम लोग मिल लेते थे। कभी किसी बहाने, कभी किसी बहाने। कभी किसी-की मदद से, कभी किसीकी मदद से।"

"और अम्मी, होली की दूसरी कौन-सी सुहानी याद है आपको?" जेबा अम्मी को बातों में लगाए रखना चाह रही थी।

"उस दिन शहर में होली मनाई जा रही थी। 'होली है', 'होली है' चिल्लाते लोग सड़कों पर रंग की पिचकारियां छोड़ते, गुलाल उड़ाते, एक-दूसरे को रंगते, नाचते-गाते बेहाल हो रहे थे। मैं घर में अकेली थी। तेरे अब्बा कई महीनों से फ़िरंगी की क़ैद काट रहे थे। खिड़की में खड़ी बाहर होली का हुड़दंग देखकर और भी उदास हो रही थी, और भी अकेली महसूस कर रही थी कि मैं क्या देखती हूं कि होली खेलने वालों की एक टोली ढोल पीटती, नफ़ीरियां बजाती, रंग की पिचकारियां छोड़ती, नाचती-गाती, गुलाल उड़ाती हुई सामने हमारे बंगले में आ घुसी। और मेरी आंखें खुली-की-खुली रह गईं। उनमें तुम्हारे अब्बा सबसे आगे थे। यार लोगों ने उन्हें जेल से छूटते ही, रास्ते में पकड़ लिया था। और वे होली खेलने लगे। होली खेलते-खेलते घर आ पहुंचे। यह कोई मानने वाली बात है?"

## ३०

फिर बेगम मुजीब से एक ग़लती हो गई। मामूली-सी ग़लती, जिसके लिए किसीको अपार कष्ट झेलना पड़ता है।

एक सुबह जेबा कहीं बाहर गई हुई थी। डाक में उसके नाम चिट्ठी आई। चिट्ठियां जेबा के नाम आती रहती थीं, ज़ाहिद के नाम आती थीं, स्वयं उसके नाम आती थीं, उसने कभी किसी और की डाक की तरफ़ नहीं देखा। उस दिन, पता नहीं उसके मन में क्या वहशत-सी आई कि उसने जेबा के नाम आई चिट्ठी को खोलकर पढ़ लिया।

चिट्ठी राजीव की थी। ज्यों-ज्यों बेगम मुजीब चिट्ठी पढ़ती जाती, उसके पांव तले से ज़मीन निकलती जा रही थी। उसके हाथों के तोते उड़ रहे थे। उसके कानों में एक अजीब सनसनाहट-सी सुनाई देने लगी। उसकी

आंखों के सामने अंधेरे के चक्कर वनने लगे। चिट्ठी पढ़ने के वाद, उसे वस इतनी होश थी कि वेगम मुजीव ने लिफ़ाफ़े को फिर उसी तरह चिपकाकर वाक़ी डाक में रख दिया।

अपने कमरे में अकेली पलंग पर पड़ी वेगम मुजीव मन-ही-मन में विष घोल रही थी। वे तो उससे कहीं आगे निकल गए थे, जितना वह सोचती थी। उसे इस वात का भी विश्वास था कि ज़ेवा की इस हरकत में ज़ाहिद की अगर रजामंदी नहीं थी तो हमदर्दी ज़रूर थी। कम-से-कम ज़ाहिद ज़ेवा की इस कमजोरी से परिचित ज़रूर था।

वेगम मुजीव सोचती, वह वस अकेली थी कुढ़ने के लिए। वह वस अकेली थी इस भाड़ में भुनने के लिए। अकेली थी वह रोने और फ़रियाद करने के लिए। एक विधवा की सूली पर टंगी ज़िंदगी।

और यह फांसी का फंदा वेगम ने स्वयं डाला था। उसे किसीके नाम आई चिट्ठी नहीं पढ़नी चाहिए थी। यह तो उतनी ही वड़ी ग़लती थी, उतनी ही माफ़ न की जाने वाली ग़लती, जितनी 'ग़लती' शायद ज़ेवा कर रही थी। वेगम मुजीव की मुसीवत यह थी कि वह यह क़बूल भी नहीं कर सकती थी कि उसने अपनी वेटी के नाम आई चिट्ठी चोरी से पढ़ ली थी। अगर चिट्ठी नहीं पढ़ी थी तो उसे वह सव कुछ कैसे पता चल गया था जो उसे मालूम था, और जिसे जानकर वह भीतर-ही-भीतर घुलने लगी थी?

वेगम मुजीव सोचती, अगर वह अपनी पढ़ी-लिखी, जवान-जहान वेटी से ख़फ़ा होकर उसे डांट कर मना करती है तो जितना आगे वह चली गई थी, जो उसे कल करना था, वह आज कर लेगी। उसके रोके वह नहीं रुकेगी। यह भी वही कुछ कर लेगी जो सीमा ने किया था। यह सोचकर उसका दिल डूवने लगा। वह तो कहीं की भी नहीं रहेगी। न इधर की, न उधर की। उसका तो मुंह काला हो जाएगा। न दीन रहा, न दुनिया रहेगी। उसे न खाना अच्छा लगता, न पीना। छिप-छिपकर छल-छल आंसू वहाती। उसने ऐसा रोग पाल लिया था जिसका कोई इलाज नहीं था।

वस, एक ही रास्ता उसे दिखाई देता था कि धीरज और प्यार से किसी प्रकार वह ज़ेवा को समझा-वुझा ले। किसी तरह वह मान जाए तो

बेगम मुजीब सोचती, वह ज़ेबा को लेकर पाकिस्तान चली जाएगी। लेकिन पाकिस्तानी तो जैसे लड़ाई पर तुले हों। हर रोज नये-नये शोशे छेड़ रहे थे। यह लड़ाई तो कभी भी भड़क सकती थी।

बेगम मुजीब कुछ भी नहीं कर सकी। हर रोज भारी-भरकम मोटा लिफ़ाफ़ा आता, हर रोज टेलीफ़ोन मिलाए जाते; कभी इस तरफ़ से कभी उस तरफ़ से। कितनी-कितनी देर वे खुसर-फुसर करते रहते। बेगम मुजीब के सीने में जैसे छुरियां चल रही हों। उसके अंग-अंग को जैसे कोई काट रहा, टुकड़े-टुकड़े कर रहा हो।

सबसे ज़्यादा दुखी बेगम मुजीब तब होती जब ज़ेबा उससे पूछती, "अम्मी ! आपको क्या हो रहा है ? हर वक्त बुझी-बुझी-सी, हर वक्त रुआंसी-रुआंसी, हर वक्त उखड़ी-उखड़ी-सी !"

उसे लगता, जैसे उसकी छाती पर तड़-तड़ गोलियां चल रही हों। उसका सीना छलनी होकर रह जाता।

और फिर जब ज़ेबा या आबिद राजीव की बातें करने लगते, कितनी-कितनी देर उसे अच्छा-अच्छा कहते रहते, उसके गुण गाते जैसे उनकी ज़बान न थकती हो। उसका रंग, उसका रूप, उसका कद-बुत, उसका स्वभाव। क्या मजाल जो कोई संकीर्णता उसके मन में कहीं हो। हिन्दुओं जैसा हिन्दू। मुसलमानों जैसा मुसलमान। एक नमूना सच्चे हिन्दुस्तानी का। "अम्मी ! ज़रा सोचिए, जो जवान-जहान लड़का इतने बरस विलायत रहकर वैसे-का-वैसा वेजीटेरियन लौट आया है, उसका किरदार कैसा होगा !" ज़ेबा एक से अधिक बार बेगम मुजीब को यह सुना चुकी थी। जितनी बार ज़ेबा उसकी याद दिलाती, बेगम मुजीब को लगता जैसे उसके मुंह पर किसीने थप्पड़ दे मारा हो। न वह इधर की थी, न उधर की। न वह हिन्दुस्तानी थी, न पाकिस्तानी। उसकी समझ में कुछ न आता। कोई उसे आगे खींचता, कोई पीछे। कोई उसे दायें खींचता, कोई बायें। दिन-रात के इस संघर्ष में वह टुकड़े-टुकड़े होती जा रही थी।

बेगम मुजीब के भीतर की विधवा लहू के आंसू रोती रहती। कभी जो उसका शौहर आज होता, वह अपनी तमाम समस्याएं उसकी झोली में डालकर आप अलग हो जाती। जो वह उचित समझता, करता। जो वह

कहना, उसके बच्चे उसी रास्ते पर चलते। किसीकी क्या मजाल जो बेग़ नुजीब की बात को न माने। घर वाले क्या और बाहर वाले क्या!

हारी हुई औरत, बेगम मुजीब हर दूसरे दिन महमूद को बुलवा भेजती। उसकी ख़ातिर करती रहती। किसी तरह ज़ेबा उसके बारे में अपनी राय बदल ले। ज़ाहिद उसे चाहने लगे। महमूद उनके घर होता तो वे उसका ध्यान रखते, उसे खिलाते-पिलाते। जहां तक संभव होता, कोई ऐसी बात न करते जो उसे पसंद न हो। पिछले कुछ दिनों से जान-बूझकर उन्होंने पाकिस्तान के बारे में बहस करना बंद कर दिया था। लेकिन उधर उसकी पीठ होती, इधर बहन-भाई उसकी हर हरकत की नुक्ता-चीनी करने लगते।

उस दिन मां-बेटी अकेली थीं। बाहर लॉन में बैठी धूप खा रही थीं।

"अम्मी! उर्वशी कोई गहना होता है क्या?" ज़ेबा पूछने लगी।

"हां-हां, इसे हम धुकधुकी कहते हैं। औरतें इसे अंदर पहनती हैं। छाती के साथ लगा रहता है। मेरे पास है।"

"अम्मी! यह हिन्दू गहना है या मुसलमान गहना?"

"गहने भी कभी हिन्दू या मुसलमान हुए हैं? यह हिन्दुस्तानी गहना है।" बेगम मुजीब ने सहज ढंग से कहा।

"अम्मी! आरसी भी क्या कोई गहना होता है?"

"एक तरह की अंगूठी होती है जिसमें शीशा जड़ा होता है। औरतें इसमें देखकर अपना रूप संवारती रहती हैं।"

"अम्मी! यह गहना हिन्दू पहनते हैं या मुसलमान?"

"चाहे कोई पहन ले। कभी हिन्दुओं में भी इसका उतना ही चलन होता था जितना मुसलमानों में।"

"अम्मी। टीका तो ज़रूर हिन्दू गहना होगा?" ज़ेबा ने पूछा।

"क्यों? टीका माथे का ज़ेवर है। मुसलमानों में उतना ही प[illegible] किया जाता है जितना हिन्दुओं में। हर मुसलमान दुलहन अपने-आप[illegible] टीके से सजाकर खुश होती है। मेरी शादी पर मुझे टीके से सजाया था।"

"अच्छा, रमझोल ज़ेवर क्या होता है?"

"यह पाव का गहना है। चांदी का।"

"यह तो जरूर हिन्दू गहना होगा। नाम से ही पता चलता है।"

"नहीं, मैंने अपनी शादी पर रमझोल पहने थे। कई बार तीज-त्योहार पर पहनती रही हूं।"

"मेरी याद में तो आपने कभी कोई गहना नहीं पहना?"

"औरत के गहने उसके सुहाग के साथ होते हैं। तेरे अब्बा जब से अल्लाह को प्यारे हुए, मैंने किसी जेवर को आंख उठाकर नहीं देखा।"

"यह तो बिल्कुल हिन्दू रिवाज है। क्या नहीं? विधवा का चूड़ियां तोड़ देना और कभी जेवर न पहनना?" जेबा जैसे कोई दलील दे रही हो।

बेगम मुजीब सब कुछ समझ रही थीं, लेकिन जानबूझकर अनजान बनी हुई थी।

"मुझे अपने अब्बा की कोई बात याद नहीं।"

"तुम दस साल की थी। तुम्हें कुछ-कुछ याद तो होना चाहिए।"

"एक धुंधली-सी याद है, बस, अम्मी! अपनी जवानी में अब्बा निहायत खूबसूरत होंगे? कैसे लगते थे?"

"हू-ब-हू महमूद मियां की शक्ल के।" बेगम मुजीब के मुंह से अचानक निकला, "एक को छिपाओ, दूसरे को निकालो।"

जेबा ने सुना और उसके मुंह का जायका जहर जैसा हो गया।

## ३१

आजकल जाहिद को जब भी अवसर मिलता वह महमूद को कुरेदने लगता, उसकी मनोदशा को समझने की कोशिश करता। जाहिद को प्रतीत होता, महमूद भारत में बसने वाले आम मुसलमानों की तरह था। उनकी तरह सोचता, उनकी तरह कुछ सचमुच की और कुछ काल्पनिक समस्याओं में घिरा रहता।

महमूद कुछ ज्यादा भावुक था। स्वभाव से कुछ ज्यादा तुनक-मिज़ाज। कुछ ज्यादा ही जोड़-तोड़ करने की आदत। कुछ ज्यादा ही लीडरी का शौक़।

उस दिन बातों-ही-बातों में महमूद ने पिछले दिनों राऊरकेला में हुए फसाद का ज़िक्र किया था।

"फ़साद आजकल की ज़िन्दगी की असलियत है। हमारी दुनिया में फ़साद होते रहते हैं। फ़साद अमरीका में आए दिन होते हैं। ब्रिटेन में होते हैं। गोरे और काले एक-दूसरे को एक आंख नहीं देख सकते।" ज़ाहिद ने जानबूझकर बात छेड़ी।

"उनकी और बात है।" महमूद कह रहा था।

"फ़साद पाकिस्तान में भी होते हैं, शिया और सुन्नियों के बीच। महाजरों और ग़ैरमहाजरों के बीच। पंजाबियों और बंगालियों में। आए दिन अहमदियों पर हमले होते रहते हैं।"

"इसका मतलब यह नहीं कि हम भी इधर मुसलमानों को काटना-पीटना शुरू कर दें। एक तरफ़ हम महात्मा गांधी का दम भरते हैं, दूसरी तरफ़ फ़िरक़ापरस्ती पालते रहते हैं।"

"हर फ़साद को भी फ़िरक़ावाराना फ़साद कहना, मेरी नज़र में ठीक नहीं। तेजी से आगे बढ़ रहे हमारे समाज में इन फ़सादों की और वजह भी हो सकती है।"

"हर फ़साद की जड़ पर फ़िरक़ापरस्ती होती है।" महमूद अपनी ज़िद पर अड़ा हुआ था।

"यह बात नहीं। कई बार हालात की असलियत नहीं बल्कि उनकी परछाईं हमें गुमराह कर देती है।"

"कुछ भी हो, मारे कम-गिनती वाले ही जाते हैं।"

"तरक़्क़ी का हर क़दम, ख़ास तौर पर अगर उसे जल्दबाज़ी में उठाया जाए, कशमकश पैदा करता है। उसमें फ़साद का बीज पनप रहा होता है।"

महमूद इस तरह सिर हिला रहा था, जैसे यह बात उसकी समझ में न आ रही हो।

"अब राऊरकेला ही ले लो। अखबारों में जो कुछ छपा, उससे ज़ाहिर होता है कि पूर्वी पाकिस्तान में गड़बड़ शुरू होने की वजह से हिन्दू शरणार्थी पश्चिमी बंगाल में आना शुरू हो गए। ख़ास तौर पर कलकत्ता में। क्योंकि कलकत्ता पहले ही लबालब भरा था, इन लोगों को गाड़ियों में डालकर मध्यप्रदेश में दंडकारण्य भेजा जाने लगा। ये ट्रेन राऊरकेला जैसे स्टेशनों पर रुकती थी। ख़ास तौर पर राऊरकेला के स्टेशन पर शरणार्थियों को शहर के लोग खाना खिलाते थे। राऊरकेला के लोग शरणार्थियों के साथ हमदर्दी जतलाते, उनके साथ हुई ज़्यादती की कहानियों को बढ़ा-चढ़ाकर शहर में फैलाने लगे। फ़िरकापरस्ती का ज़हर बढ़ने लगा। फिर एक दिन किसी मुसलमान की दी हुई रोटी खाकर किसी हिन्दू शरणार्थी को उल्टी आ गई। सारे शहर में यह अफ़वाह आग की तरह फैल गई कि मुसलमान शहरी हिन्दू-शरणार्थियों को ज़हर मिलाकर रोटियां खिलाते हैं। इसमें कोई सच्चाई नहीं थी कि खाने में ज़हर मिला हुआ था। लेकिन अफ़वाह को कौन रोक सकता है? हिन्दुओं को पहले ही शक था कि मुसलमानों ने अपने घरों में असलहा इकट्ठा किया हुआ है। चोरी-छिपे ये लोग ट्रांसमीटर की मदद से पाकिस्तान से तालमेल बनाए हुए हैं…।"

"यह बात नहीं ज़ाहिद, मैं खुद उन दिनों राऊरकेला में था। आर० एस० एस० के लोग शरणार्थियों की ट्रेनों को खाना खिलाने के बहाने उनकी सच्ची-झूठी कहानियां लोगों में फैलाने लग गए थे।"

"लेकिन आप राऊरकेला क्या कर रहे थे?" जेबा पता नहीं कहां से आ टपकी थी। उसने छूटते ही महमूद से पूछा।

महमूद के हाथ-पांव फूल गए। बगलें झांकने लगा। "मैं यूं ही किसी रिश्तेदार से मिलने गया था।"

"बेशक आर० एस० एस० वालों की भी शरारत होगी, लेकिन मुझे लगता है कि राऊरकेला के फ़साद की वजह कुछ और ही थी।"

"लोगों के बेकार जवाब," महमूद नाक चढ़ाकर कहने लगा।

"जयप्रकाश नारायण तो गलत नहीं हो सकते?"

"सब हिन्दू ग़लत हो सकते हैं, जहां तक ग़रीब मुसलमानों…"

है," महमूद के हर बोल में ज़हर भरा हुआ था।

"यूं जज़बाती होना बेकार है। इस तरह के फ़तवे लगाने से नुक़सान कम-गिनती वालों का ही होता है। आख़िर जयप्रकाश नारायण की नीयत पर तो पाकिस्तान ने भी कभी शक नहीं किया।"

"जयप्रकाश क्या कहते हैं?" ज़ेबा ने पूछा।

"उनकी जांच का नतीजा यह है कि राऊरकेला के फ़साद की बुनियादी वजह ये हैं—एक यह कि स्टील के इस शहर के लिए इंजीनियर और तकनीकी माहिरों की जरूरत थी। ये लोग देश-भर में मुक़ाबले से चुने जाते हैं। इसलिए सारे ऊंचे ओहदे आम तौर पर बाहर के लोग हथिया लेते हैं। राऊरकेला के असली बाशिंदों को यह बहुत अखरता था। इनमें आदिवासी भी शामिल थे और मुक़ामी हिन्दू भी, और उड़िया मुसलमान भी। ये लोग पिछड़ते गए और बाहर से आए बंगाली और पंजाबी, बिहारी और मद्रासी, आंध्र और केरल के लोग कहीं-के-कहीं पहुंच गए। दूसरी वजह यह कि मुक़ामी बाशिंदों में उड़िया मुसलमान ज्यादा खुशहाल होने की वजह से आदिवासियों की हमेशा लूट-खसोट करते थे। आदिवासी उनके चंगुल में परेशान थे। मुक़ामी शहरी बाहर से आए लोगों से ख़फ़ा था।"

"और जैस्सोर में हुए फ़साद एक बहाना बन गए।" ज़ेबा ने अपनी राय दी।

"असल में ये फ़साद पिछड़ेपन की निशानी थे। या फिर तरक़्क़ी की राह पर हर किसीको बराबर का मौक़ा न मिलने की लानत।" ज़ाहिद का यह विश्वास था।

"सब किताबी बातें हैं।" महमूद ने अपनी विशेष सनक में कहा, "जैस्सोर के फ़ौरन बाद कलकत्ता में भी तो फ़साद हुए। उनकी ज़िम्मेदारी आप किसके माथे मढ़ेंगे?"

"इसका मतलब यह है कि जब-जब पाकिस्तान में हिन्दुओं को परेशान किया जाएगा, इधर भारत में मुसलमानों को इसके दाम चुकाने होंगे?" ज़ेबा ने कहा।

"और यह सिलसिला जारी रहेगा, जब तक कश्मीर का फ़ैसला

नहीं होता।" महमूद बोला।

"यही तो पाकिस्तान के विदेशमंत्री भुट्टो साहब फरमाते हैं—भारत और पाकिस्तान में फिरकापरस्ताना फ़साद की जड़ कश्मीर का तनाज़ा है। जब तक इसका फैसला नहीं होगा, बाकी सारे समझौते बेकार होंगे।"

"इसके मुकाबले में जयप्रकाश फरमाते हैं—अगर भारतीय हिन्दू सिर्फ़ इसलिए भारतीय मुसलमानों को परेशान करेंगे क्योंकि पाकिस्तानी मुसलमान हिन्दुओं को परेशान कर रहे हैं तो हम दो क़ौमों की थ्यूरी की तसदीक कर रहे होंगे।"

"जयप्रकाश सारी उम्र सपने देखता रहा है।" महमूद ने टिप्पणी की।

"असल में मसला इतना कश्मीर का नहीं, जितना पूर्वी पाकिस्तान का है। पश्चिमी पाकिस्तान वाले चाहते हैं कि पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दुओं को भगा दिया जाए ताकि यहां की आबादी पश्चिमी पाकिस्तान से ज्यादा न रहे। और इस तरह वे लोग देश के इस हिस्से पर अपना दब-दबा बनाए रखना चाहते हैं।" ज़ाहिद की बात में बड़ा वज़न था।

"पाकिस्तान के पंजाबी मुसलमान, पाकिस्तान के बंगाली मुसलमानों पर अपनी हुक्मरानी बनाए रखना चाहते हैं।" जेबा ने ज़ाहिद की हां-में-हां मिलाई।

"और भारतीय मुसलमान आटे में घुन की तरह पिस जाते हैं।"

"असल में मसला कश्मीर का है।" महमूद अपनी बात पर अड़ा था।

"यह बात नहीं।" ज़ाहिद उसे समझाने की कोशिश कर रहा था, "असल में मसला भारतीय मुसलमानों की 'आइडेंटिटी' का है। जब तक हिन्दुस्तानी मुसलमानों की नज़र पाकिस्तान पर लगी है, जब तक अपने देश के लिए उनमें अपनापन पैदा नहीं होगा, उनकी मुसीबतें खत्म नहीं होंगी।"

"बकरे की जान गई और खाने वाले को मज़ा नहीं आया," महमूद ने फबती कसी, "हमारी वफ़ादारी का सबसे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है कि हम लोग पाकिस्तान नहीं गए!"

"पाकिस्तान चाहे नहीं गए लेकिन हिन्दुस्तानी नहीं बन सके।" ज़ेबा ने दो टूक फैसला दिया।

"जिस देश में 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान' के नारे लगाए जाते हों; जिस देश में आर० एस० एस० जैसी जमायतें अभी तक कायम हों, उस देश को कोई कैसे अपना कह सकता है?" महमूद ने जैसे जल-भुन कर कहा।

"उस देश के मुसलमानों को घुस-पैठियों के साथ मिलकर साज़िश करनी चाहिए।" ज़ेबा ने चोट की।

"बेशक, अपने हक़ के लिए कौन नहीं लड़ता?" महमूद बेबाकी पर उतर आया था।

"तभी तो जनाब राऊरकेला में अपने रिश्तेदारों से मिलने गए थे?" ज़ेबा ने जैसे उसे दबोच लिया हो।

"क्या मतलब?" महमूद गुस्से में उबलता हुआ उठ खड़ा हुआ।

"मतलब यह है कि जहां भी फ़साद होते हैं, कई लोग वहां ज़रूर पहुंच जाते हैं।" ज़ेबा के ये शब्द एक गोली की तरह महमूद के सीने में जा लगे। और वह दांत पीसकर उनके घर से निकल गया, जैसे जले हुए गांव में से योगी निकल जाता है।

## ३२

"तुझे महमूद को इस तरह परेशान नहीं करना चाहिए।" ज़ाहिद ने ज़ेबा को समझाया।

ज़ेबा क्षण-भर के लिए स्तब्ध-सी रह गई। घर पर आए किसी के साथ ऐसा व्यवहार करना बदतमीज़ी थी। लेकिन कुछ अर्से से महमूद उसे एक आंख नहीं भाता था। उधर उसकी अम्मी थी, जैसे उस लड़के ने उस-पर जादू किया हो। उसकी कोई बेहूदगी बेगम मुजीब को बेहूदगी नहीं लगती थी। उसकी हर कमी को नज़र-अंदाज़ कर जाती; जैसे कोई देख-

सुनकर मस्ती निगल रहा हो।

"इनका तो दिमाग़ ख़राब हो गया है।" बेगम मुजीब गोल कमरे में आईं। यूं लगता कि जब ज़ेबा ऊंची आवाज़ में बोल रही थी, उसकी अम्मी बाहर गैलरी में खड़ी सुन रही थीं। उनके ख़ानदान की बरतर, बेगम मुजीब की तरबीयत, ज़ेबा अपने-आपपर बेहद लज्जित थी। उसकी आंखों में आंसू आ गए।

"यह आदमी···" वह कुछ कहना चाहती थी कि उसका गला आवेग में रुक गया।

और फिर ज़ाहिद और अम्मी दोनों उसपर बरस पड़े। अम्मी ख़फ़ा होकर हटी कि ज़ाहिद ने उसे डांटना शुरू कर दिया। ज़ाहिद ख़ामोश हुआ तो अम्मी बरसने लगी।

ज़ेबा सोचती, ज़ाहिद रुख़साना पर मोहित है। इसमें तो कोई संदेह नहीं था कि रुख़साना ज़ाहिद की दीवानी थी। किसी दिन भी वह समर्पण कर सकती थी। जिस दिन से रुख़साना उसके जीवन में आई, ज़ाहिद और का और हो गया था। हर समय रुख़साना का नाम उसके होंठों पर होता। उधर रुख़साना थी कि सुबह-शाम उसके टेलीफ़ोन आए रहते।

अम्मी ने स्वयं अपनी आंखों से ज़ेबा और महमूद को अटपटी हालत में देखा था। जवान-जहान लड़के-लड़की में कोई ग़लतफ़हमी हो गई थी, बेगम मुजीब सोचती, आप-ही-आप मनमुटाव दूर हो जाएगा। महमूद अम्मी की नज़रों में जंच गया था। उसमें उसे अपने शौहर की झलक दिखाई देती थी। एक विधवा के लिए, एक नवयुवक की पसन्दीदगी और क्या हो सकती है? और फिर अच्छे घर के मुसलमान लड़के मिलते कहां थे। रुख़साना के लिए उसके घरवाले लाख पाकिस्तान छानकर ख़ाली हाथ लौट आए थे। सबसे बड़ा अंदेशा बेगम मुजीब को नज़ीर से था। जिस दिन से उसने ज़ेबा के नाम नज़ीर की चिट्ठी पढ़ी थी, आठों पहर उसे एक बेचैनी-सी लगी रहती। कोई ढंग का लड़का मिल जाए तो वह ज़ेबा के हाथ पीले कर दे। अपनी ज़िम्मेदारी से सुर्ख़रू हो जाए।

और अब जब कि ज़ाहिद और रुख़साना एक-दूसरे के इतना निकट आ गए प्रतीत होते थे, इससे बढ़कर अच्छी बात क्या हो सकती थी कि

महमूद और ज़ेबा का रिश्ता हो जाए ! दोनों बहन-भाई एक घर से जुड़ जाएंगे। एक-दूसरे के दुःख-सुख को वे बांट सकेंगे। ख़ास तौर पर ज़ेबा, सबसे छोटी होने के कारण बड़े अल्हड़ मिज़ाज की थी। ज़ाहिद उसके ससुराल का दामाद होगा तो अपनी बहन का ख़याल रखेगा।

"आजकल दुनिया-भर में नौजवान ख़फ़ा-ख़फ़ा हैं।" ज़ाहिद अपनी बहन को समझा रहा था, "हमारे देश में मुसलमान नौजवानों के पास नाराज़गी की एक वजह और भी है।"

"आए दिन उनकी हक़-तलफ़ी होती रहती है।" बेगम मुजीब बीच में बोली।

ज़ेबा हैरान होकर अपनी अम्मी के मुंह को देख रही थी। उसे जैसे अपने कानों पर विश्वास न हो रहा हो कि यह शेख़ मुजीब की बेगम बोल रही थी।

"लोक-राज में सबको छूट है कि अपने-अपने हक़ की हिफ़ाज़त कर सकें। हर कोई अपने हक़ के लिए लड़ सकता है।"

"तुम्हारे अब्बा का कई बार अपने हिन्दू साथियों से मतभेद हो जाता था।" अम्मी ज़ेबा के पास आकर बैठ गई।

"इसमें कोई शक नहीं कि उर्दू के मामले में मुसलमान कम-गिनती के साथ पूरा इंसाफ़ नहीं हो रहा है।"

"मैं तो कहूंगी कि नौकरियों के मामलों में भी मुसलमानों के साथ ज़्यादती हो रही है।" बेगम मुजीब ने ज़ाहिद की हां-में-हां मिलाई।

"इसमें रत्ती-भर शक नहीं," ज़ाहिद बोला, "आज १९६५ में इक्कीस सौ आइ० ए० एस० के अफ़सरों में बस एक सौ ग्यारह अफ़सर मुसलमान हैं। दो सौ सत्तर फ़ारेनसर्विस के अफ़सरों में सिर्फ़ १२ अफ़सर मुसलमान हैं और इंडियन पुलिस के बारह सौ अफ़सरों में कुल तैंतालिस अफ़सर मुसलमान हैं।"

"यही हाल विधानसभाओं और लोकसभाओं में मुसलमानों की नुमाइंदगी का है। मुसलमान देश की आबादी का दस फ़ीसदी है, इसके मुक़ाबले १९५२ की लोकसभा में ३·६८ फ़ीसदी मुसलमान थे। १९५७ की लोकसभा में ४·२५ फ़ीसदी और १९६२ की लोकसभा में ४·६ फ़ीसदी।

राज्य-सरकारों की विधानसभाओं में तो हालत बिगड़ रही है। १९५२ में ५·३ फ़ीसदी मुसलमान थे, १९५७ में ५·३२ फ़ीसदी और १९६२ में ४·६३ फ़ीसदी रह गए थे।"

"मेरी समझ में नहीं आ रहा कि आखिर यह सब कुछ मुझे क्यों सुनाया जा रहा है?" ज़ेबा बोली।

"इसलिए कि तुम्हारे सोचने का ढंग सुधर सके। अगर महमूद जैसे मुसलमान नौजवान प्रोटेस्ट करते हैं तो उनका ऐसा करना किसी हद तक जायज़ है।"

"प्रोटेस्ट और चीज़ है, साज़िश और चीज़।" ज़ेबा अभी तक महमूद को माफ़ नहीं कर पा रही थी।

"नौजवान कभी-कभी भटक जाते हैं।" ज़ाहिद का रवैया नरम था।

"उनको समझाया जा सकता है।" बेगम मुजीब कह रही थी।

ज़ेबा की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। एक झुंझलाहट में वह अपना सिर पकड़कर उठी और चुपचाप अपने कमरे में चली आई। उसने अपना कमरा अंदर से बंद कर लिया। कितनी ही देर गुमसुम वह अपने पलंग पर पड़ी रही।

गोल कमरे में अपने बेटे ज़ाहिद के पास अकेली बैठी बेगम मुजीब को आज मौक़ा मिला था और उसने उससे अपने दिल की बात कही। उसकी मर्ज़ी थी कि ज़ेबा का किसी तरह निकाह कर दिया जाए। इधर-उधर महमूद के सिवाय कोई लड़का नज़र नहीं आता था। अच्छे खानदान का था। पढ़ा-लिखा था। देखने में सुन्दर। और किसीको चाहिए भी क्या?

"ज़ेबा की मर्ज़ी के बिना तो कुछ नहीं हो सकता," ज़ाहिद सोच रहा था।

"उसकी मर्ज़ी साफ़ है। इसी महमूद के बिना कभी उसका एक पल नहीं गुज़रता था।" बेगम मुजीब ज़ाहिद को अपने पक्ष में लाने की कोशिश कर रही थी।

"इन मामलों में जल्दी नहीं करनी चाहिए।" ज़ाहिद की राय थी।

"तो फिर यह भी वही गुल खिलाएगी जो करतुन इसकी बड़ी बहन

ने की है।" बेगम मुजीब परेशान थी।

"ज़बरदस्ती तो किसीके साथ नहीं की जा सकती।"

"क्यों नहीं? मुझसे महमूद की अम्मी कई बार इशारों-इशारों में कह चुकी है। अब, जब उसने ऐसा किया तो मैं बात पक्की कर लूंगी।"

"तौबा! तौबा! यह ग़लती मत करना।" ज़ाहिद मां को समझा रहा था, "आजकल कोई ज़माना है किसीके ज़ाती मामले में दख़ल देने का?"

"किसी मां को इतना भी हक़ नहीं है?"

"मां को सारे हक़ हैं, लेकिन यह हक़ नहीं। शादी का फ़ैसला शादी करने वाले पर छोड़ देना चाहिए।"

"इस लड़की के रंग-ढंग मुझे अजीब लगते हैं। यह तो हमारी नाक कटवाकर रहेगी।" बेगम मुजीब उत्तेजित हो रही थी।

"मेरी राय है, आप रुख़साना से बात करें। अगर ज़रूरत हुई तो वह ज़ेबा को समझा लेगी। आजकल उनकी आपस में बहुत दोस्ती है।"

बेगम मुजीब को ज़ाहिद का यह मशवरा बड़ा उचित लगा। वह सोचती, रुख़साना उसकी बात कभी नहीं टालेगी और फिर रुख़साना को तो वह मन-ही-मन अपनी बहू बना बैठी थी। किसी दिन वह उसके आंगन की रौनक़ हो जाएगी।

और फिर अगली फ़ुरसत में, जब ज़ेबा स्कूल पढ़ाने गई हुई थी और ज़ाहिद अस्पताल में था, बेगम मुजीब ने रुख़साना को बुला भेजा और उससे ज़ेबा और महमूद के रिश्ते की बात छेड़ी।

"अम्मीजान! आपको हो क्या रहा है?" रुख़साना को जैसे अपने कानों पर यक़ीन न हो रहा हो, "ज़ेबा और महमूद! ऊंट के गले में घंटी। महमूद चाहे मेरा भाई है लेकिन ज़ेबा जैसी सुलझी हुई, तरक़्क़ी-पसन्द लड़की के लिए वह बिल्कुल मौज़ूं नहीं। बड़ा बेहूदा है, बड़ा बिगड़ा हुआ है।"

"सब नौजवान ऐसे हो जाते हैं। वक़्त आने पर संभल जाएगा।" बेगम मुजीब अपने मत पर दृढ़ थी।

"कभी यह ग़लती न करना अम्मीजान! महमूद और ज़ेबा की तो

एक दिन भी नहीं निभेगी। ताश की बाजी में तो वे पार्टनर बन नहीं सकते, जिन्दगी में कैसे साथ देंगे ?"

"कोई वक्त था जब एक-दूसरे के बे…"

और फिर बेगम मुजीब के भीतर की मां खामोश हो गई।

"बेशक ! बेशक !! मुझे सब मालूम है। लेकिन वह वक्त कभी का बीत चुका है।" रुखसाना बेगम को बता रही थी।

## ३३

रुखसाना के साथ मुलाकात के बाद बेगम मुजीब को ऐसा महसूस होता, जैसे कोई साजिश हो। हर कोई इस बात पर तुला हुआ प्रतीत होता था कि डेबा और महमूद का ब्याह न हो। महमूद की बहन रुखसाना तो साफ कह चुकी थी।

इधर बेगम मुजीब थी, मानो महमूद पर समूची न्योछावर हो चुकी थी। खाते-पीते लोग थे। ढेर सारी जायदाद थी। लड़की राज करेगी। मां-बाप का इकलौता बेटा था। फिर रहेगी भी उसी शहर में। जब जी चाहा, मां-बेटी मिल लिया करेंगी। बड़ी बेटी तो उनकी जिंदगी में निकल चुकी थी।

कोई और रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। उस दिन डेबा के साथ हुई बदमजगी के बाद महमूद ने उनके यहां आना बंद कर दिया था। बेगम मुजीब की समझ में न आता, किस बहाने उसे अपने यहां बुलाए।

उसे चारों ओर अंधेरा दिखाई देता। भीतर-ही-भीतर वह घुलती जा रही थी। उसकी भूख जाती रही। सारी-सारी रात करवटें बदलती रहती। नींद नहीं आती थी उसे। कमरा बंद करके या तो सजदे में गिरी रहती या छम-छम उसके आंसू बहते रहते। हर शाम अपने शौहर के मजार पर जाती। कितनी-कितनी देर वहां बैठी अपना दुखड़ा रोती रहती। पांचों वक्त नमाज पढ़ती। तसबीह फेरती। विर्द करती लेकिन कहीं भी

कोई रोशनी की किरण दिखाई नहीं देती थी।

बेगम मुजीब दिन-प्रतिदिन कमज़ोर होती जा रही थी। हड्डियों का ढांचा-सा लगती थी। ज़ाहिद परेशान था। ज़ेबा परेशान थी। बार-बार उसके डाक्टरी परीक्षण होते। कोई बीमारी नहीं थी। कोई ख़राबी नहीं थी। फिर भी बेगम मुजीब ने पलंग पकड़ लिया था।

ज़ेबा सब कुछ जानती थी। ज़ाहिद भी, दिल से, अपनी मां के रोग को पहचानता था। यह बीमारी, लेकिन ऐसी थी, जिसका इलाज किसी-के पास नहीं था। उनके चहकते हुए घर में ख़ामोशी छा गई थी। अब न पहले-सी पार्टियां होतीं, न दावतें उड़ाई जातीं। लोगों ने इनके यहां आना बंद कर दिया था। इन्होंने बाहर जाना बंद कर दिया था।

और तो सब कुछ सिमटता जा रहा था, लेकिन राजीव की चिट्ठियां बदस्तूर आतीं। भारी-भरकम नीला लिफ़ाफ़ा जब वह देखती, बेगम मुजीब के सीने पर जैसे सांप लोटने लगता। एक टीस-सी भीतर से उठती। पर मुंह से कुछ न बोल पाती। हर चौथे रोज़ टेलीफ़ोन आता। एक बार टेलीफ़ोन मिलता तो कितनी-कितनी देर वे खुसर-फुसर करते रहते। ख़ुदा जाने, ऐसी क्या बातें उन्हें करनी होती थीं जो इतनी-इतनी वजनी चिट्ठियों में नहीं समाती थीं! इतने-इतने लम्बे टेलीफ़ोन में नहीं ख़त्म होने को आती थीं!

उधर पाकिस्तान में उसके जेठ शेख़ शब्बीर की हालत और बिगड़ गई थी। ख़बर आई कि उसका दिमाग़ पूरी तरह ख़राब हो गया था। आजकल वह घर छोड़कर किसी दरगाह में जा बैठा था। हर वक़्त 'अल्लाह-हू', 'अल्लाह-हू' करता रहता। उसने सिर मुंडवा लिया था। दाढ़ी बढ़ा ली थी। नीला चोगा पहने नंगे पांव फिरता रहता। उसके हाथ में एक डंडा रहता था। या तो 'अल्लाह हू', 'अल्लाह हू' की रट लगाए रहता या फिर जो सामने आ जाता, उसे गंदी गालियां बकने लगता। न कभी घर आता, न घर वालों को पहचानता।

उधर बाप की यह हालत थी और इधर उसके बेटे कबीर की बीवी उसे छोड़कर भाग गई। दो बच्चे जो उसने पैदा किए थे, उन्हें भी छोड़ गई। कबीर सख़्त परेशान था। दादी बच्चों को पाल रही थी। बेगम मुजीब

की जेठानी को अपने बेटे का घर फिर से बसाने की चिंता लगी हुई थी। आखिर उसके पोतों को भी तो पालने वाली चाहिए। मा कब तक बेटे के यहा बैठी रहेगी? उसके अपने मिया की हालत बद-से-बदतर होती जा रही थी। कुछ कहा नही जा सकता था कि वह क्या कर बैठे।

यह दूसरी चिट्ठी आई थी उसकी जेठानी की—'कुदसिया ! अगर तुम्हारी नजर में कोई लड़की हो तो कबीर का घर बसा दो। तुम्हारा एहसान मैं कभी नही भूलूगी,' उसने दुबारा लिखा था। पाकिस्तान मे यह ख़याल किया जाता था कि भारत मे मुसलमान लड़कियों के ब्याहने के लिए लड़कों की कमी थी, इसीलिए भारतीय मुसलमान घरानों की लड़किया अपने लिए लड़को की तलाश मे पाकिस्तान के चक्कर काटती रहती थी।

इस बार अपनी जेठानी की चिट्ठी जब उसने पढ़ी तो बेगम मुजीब को कई साल पुरानी, हंसी-हसी मे कही गई एक बात याद आने लगी— 'कुदसिया ! तुम्हारी ज़ेबा और मेरे कबीर की जोड़ी कैसी रहेगी ?' तब तो ये दोनो बच्चे अभी घुटनो के बल चलते थे। कुदसिया ने अपनी जेठानी की बात हसकर टाल दी थी।

एक सप्ताह मे दूसरी बार उसकी चिट्ठी आई थी। उसकी जेठानी बेहद परेशान थी। घर वाला कई बरसो से बीमार था। लाखों रुपये उसके इलाज पर खर्च हो चुके थे। बहू भाग गई थी। बेटी का शौहर हर चौथे रोज़ बदतमीज़ी करता था। घर मे हंगामा मचाए रखता। कभी ख़ुशिया लुटाते, हसते-खेलते वे लोग मिट्टी मे मिल गए थे। कोई पूछने वाला नही था। भटक रहे थे। ख़्वार हो रहे थे। बेगम मुजीब को अपनी जेठानी पर बहुत तरस आ रहा था। कितनी भली औरत थी ! हर वक़्त खिली-सी रहती। कभी कोई घटिया बात उसके मुह से नही निकलती थी। जब कुदसिया ब्याह कर आई, तो कितनी खातिर किया करती थी उसकी ! कोई बात मुह से निकली कि वह उसे पूरा कर देती। कुदसिया के शौहर की इच्छा थी कि सिविल लाइन की कोठी इन्हे मिल जाए। एक पल भी उसने सोचने मे नही लगाया, स्वय शहर वाले घर मे रहने के लिए राजी हो गई और अपने देवर के लिए उसने बगला खाली

कर दिया। और फिर कुदसिया के बच्चों से कितना प्यार करती थी, जैसे उनमें उसकी जान हो! किसीका माथा गर्म हो जाता तो दौड़ी हुई आती। दो दिन अगर बच्चों से न मिले तो उसे कल नहीं पड़ती थी। हमेशा उसका घरवाला कहता, 'बीवी! तुम अलग ही क्यों हुई? उन्हें अपने पास रखतीं, अपने परों के नीचे। देवरानी के बगैर तो तुम्हारा पल नहीं गुज़रता।' दिन में दस बार उसका टेलीफ़ोन आता। 'क्या हो रहा है? क्या पक रहा है? क्या खाया जा रहा है? बच्चे क्या कर रहे हैं? गर्मियों में कहीं उन्हें गर्मी तो नहीं लगती? जाड़ों में उन्हें ठंड तो नहीं लगती?' कोई चीज़ उन्हें अच्छी लगती तो पूरा कोस, रास्ता चलकर या तो खुद आती या किसी नौकर को भिजवाती। और फिर जब उसका देवर अल्लाह को प्यारा हुआ, कैसे माथा पीट-पीटकर वह रोती थी! उसके बाद कितनी देर वह इनके यहां ही टिकी रही। जाहिद को विलायत भेजने की तजवीज़ भी उसीकी थी। जब खर्च की बात चली तो नोटों से भरी हुई एक संदूकची उसने ज़ाहिद के सामने ला रखी। यह और बात थी कि बेगम मुजीब को इसकी ज़रूरत नहीं थी। लेकिन उसने अपनी ओर से कोई क़सर ही नहीं छोड़ी थी।

बेगम मुजीब हमेशा अपने-आपको जेठानी के एहसानों में दबा हुआ महसूस करती थी। जेठानी क्या थी, वह तो उसकी सास थी! सास ही की तरह उसकी ख़ातिर करती थी। सास की तरह ही उसके बच्चों को लाड़ करती थी।

आजकल जो उसकी मानसिक स्थिति थी, बेगम मुजीब सोचती, क्यों न ज़ेबा का विवाह वह कबीर से कर दे? अगर वह महमूद के साथ शादी करने को राज़ी नहीं हो रही थी, अपने ताऊ के बेटे के साथ ब्याह करने में उसे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। क्या हुआ जो पहले उसका ब्याह हो चुका था! उसकी बीवी उसे छोड़कर भाग गई थी। इसमें उसका क्या कसूर था? और फिर ज़ेबा होगी तो उसके बच्चों को प्यार से संभाल सकेगी। अगर कोई पराई आ गई तो पता नहीं बच्चों का क्या हाल हो? इस तरह सोचते हुए बेगम मुजीब ने अपना इरादा पक्का कर लिया। वह ज़ेबा को कबीर के लिए राज़ी कर लेगी। और अगर उसने इससे भी

इकार कर दिया तो वह इस लडकी को कभी मुह नही लगाएगी। कुछ खाकर मर जाएगी।

कुछ दिनो से ज़ेबा हर शाम अम्मी के कमरे मे आती और कितनी-कितनी देर उसके पास बैठी कभी उसका सिर दबाती रहती, कभी उसके बालो मे तेल की मालिश करती रहती। बार-बार कहती, "अम्मी, अब आप ठीक हो जाए। जो आप कहेंगी, मैं मान लूगी। आपका कहना हरगिज़ नही टालूगी।"

उस शाम जब ज़ेबा ने इस तरह की बात कही, बेगम मुजीब ने अपनी जेठानी की चिट्ठी उसके सामने ला रखी। ज़ेबा एक नज़र चिट्ठी को पढ़ गई।

"तो फिर मेरे लिए क्या हुक्म है ?" ज़ेबा ने अपनी अम्मी से पूछा।

"तुम्हारी ताई के मुझपर बड़े एहसान है। मैं इस कर्ज़ को उतारना चाहती हू। अगर तुम कबीर के साथ···" अभी यह बात उसके होंठों पर ही थी कि ज़ेबा चीख़कर औंधी जा गिरी। एक क्षण-भर मे वह ठडी हो गई। उसके हाथ-पाव मुड गए। बेगम मुजीब कितनी देर उसके साथ जूझती रही। आखिर जब ज़ेबा को होश आया तो वह छल-छल आसू बहाती, अपनी मा के कदमो मे गिर गई। "मुझे बेशक कोई और सज़ा दे दो, मुझसे मेरी जान ले लो, यह जुल्म मुझपर मत ढाओ! मुझे देश-निकाला मत दो!"

बेगम मुजीब बेबस होकर ज़ेबा की ओर देख रही थी।

"मैं महमूद से ब्याह कर लूगी," ज़ेबा ने बिलखकर कहा। और उसकी आखो से आसुओं की झड़ी लग गई।

## ३४

ज़ेबा ने अपने-आपको अपने कमरे मे बद कर लिया। सारी शाम उसके अविरल आसू बहते रहे। राजीव की चिट्ठियो से उसकी सदूकची

भरी हुई थी। एक-एक चिट्ठी निकालकर पढ़ती। उसके दिल में हूक-सी उठती। एक-एक चिट्ठी को पढ़ती और सामने अंगीठी में उसे जलाती जाती। कुछ देर के वाद उसकी मुहव्वत की हसीन दास्तान एक मुट्ठी भर ख़ाक़ होकर रह गई। एकसाथ जीने और मरने के सारे इक़रार, सारे सपने प्यार के एक नये सफ़र के, तमाम गीत जो अछूते पड़े थे, अध-खिली कलियों की तरह शूलों से विंध गए, कुचले गए। धूल में मिल गए।

फिर राजीव की तसवीरें एक-एक करके ज़ेवा ने अपने एलवम में से निकालनी शुरू कर दी। हर तसवीर को देखती। जी भरकर उसे प्यार करती। सीने से लगाती और फिर सामने अंगीठी में फेंक देती। आख़िरी तसवीर राजीव की सवसे ताजा थी। अभी कल ही तो उसने भेजी थी। ज़ेवा ने जी भरकर उसे देखा तक नहीं था। कितनी देर वह तसवीर ज़ेवा के होंठों के साथ चिपकी रही। कितनी देर जैसे उसकी छाती से ही अलग न हो रही हो। जैसे कोई वादल फटता है, इस तरह ज़ेवा के आंसुओं की वाढ़ वह रही थी। उसने अपने सीने से नोचकर उस तसवीर को भी अंगीठी में फेंक दिया। लेकिन वह तसवीर जली नहीं। लाल-पीली दहक रही अंगीठी के एक किनारे पर जा गिरी। राजीव विटर-विटर ज़ेवा की ओर देख रहा था। एक प्रिय मुसकान मुसकरा रहा था। अंगीठी के दहकते अंगारों के पीछे, एक सुन्दर स्वप्न की तरह सुरक्षित पड़ा था। ज़ेवा की आंखों के सामने। ज़ेवा की पहुंच से दूर। जैसे कोई अग्नि-परीक्षा से निकलकर अपनी मुहव्वत का सवूत दे रहा हो।

और फिर ज़ेवा दीवानों की तरह उस तसवीर से मुख़ातिव होकर आपसे-आप वोलने लगी :

'राजीव, मेरी जान, आज की शाम अपने कमरे में यह अंगीठी मैंने नहीं सुलगाई, यह तो चिता है हमारी पाक मुहव्वत की। तुम्हारी यह ज़िद कि तुम इसे भस्म नहीं होने दोगे, एक ख़्वाव है। ज़िन्दगी की असलियत कठोर होती है। समाज के वंधन वड़े संगीन होते हैं।

मुहव्वत एक चीज़ है, मजहव एक चीज़। मैंने वेशक़ तुम्हें मुहव्वत की है, लेकिन मैं एक मुसलमान घर में पैदा हुई हूं। मुहव्वत मैंने अपनी

मर्ज़ी से की, लेकिन मेरी पैदाइश मे किसी और ताकत का दख़ल था। उस ताक़त के सामने मैंने आज घुटने टेक दिए है।

हम *हिन्दुस्तानी नौजवान लड़के-लड़किया, हिन्दू क्या* और *मुसलमान* क्या, अपनी विरासत की बद्दुआ के मारे हुए है। हमें विरसे मे अलहदगी मिली है, दूरी मिली है। वैर मिला है। मुसलमानों की नज़र मे कुरान नज़ल हुआ था। अल्लाह की दी हुई नेमत को वैसे-का-वैसा सभालकर रखना होगा। क़ुरान मे जो कुछ कहा गया है, वह हर्फ़े-आख़िर है। चौदह सौ साल इस्लाम के इतिहास में, उसमें कोई तब्दीली नही हो सकी। इधर हिन्दू, कई सौ बरस मुसलमानों के पडोस मे रहकर, कई सौ बरस उनकी गुलामी करने के बाद आज भी उनके छूने से भ्रष्ट हो जाता है। उसके घड़े मे से पानी नही पी सकता।

सूफी अपना सिर पीटकर रह गए। भक्त भगवान का वास्ता दे-देकर चले गए। हिन्दू के लोटे मे टोंटी नही लग सकी। मुसलमान अपने कूजे को नहीं छोड सका।

महात्मा गाधी ने 'ईश्वर अल्लाह तेरा नाम' कहकर इस मसले को सुलझाने की कोशिश की। गाधीजी ने सोचा, हिन्दू और मुसलमान दोनों में, अग्रेज की गुलामी से छुटकारा पाने की एक-सी लगन, उनको एक कडी मे पिरो देगी। आजादी आई, लेकिन हिन्दू-मुसलमान की भीतरी खाई वैसी-की-वैसी बनी रही, बल्कि देश के बटवारे की शक्ल में, पाकिस्तान की शक्ल मे और भी गहरी हो गई। गाधीजी ने सोचा, भारत के हिन्दू-मुसलमानो को वह एक मुट्ठी कर देंगे। यह हो सकता था, अगर देश के निर्माण में, देश के विकास में दोनो कधे-से-कधा मिलाकर जुट जाते। यह मुमकिन था, अगर हिन्दू और मुसलमान अपने सपने एक-से कर लेते।

लेकिन ऐसा नही हो सका। इससे पहले कि देश के बटवारे से गाधी-जी के सीने के घाव भर पाते, बापू के सीने मे तीन गोलिया दाग कर उसे खत्म कर दिया गया।

राजीव, तुम्हे मालूम है कि मेरे अब्बा गाधीजी के दीवानो मे मे थे। लेकिन नमाज़-रोज़ा के वे हमेशा पक्के रहे। गाधीजी भी यही चाहते थे। जरूरत इस बात की है कि आदमी अपने धार्मिक विश्वासो को राजनीनि से

नहीं कर सकतीं। ...

लग करके रखे। लेकिन हर किसीके लिए ऐसा कर पाना आसान नहीं
ता। मेरे अब्बा यह कर पाए, लेकिन अम्मी से यह नहीं हो सकेगा।
ौर मेरी अम्मी, मेरे अब्बा की निशानी हैं।

आज कई साल हो चुके हैं, वे मेरी बहन सीमा को माफ़ नहीं कर
पाईं। अभी तक उन्होंने उसे मुंह नहीं लगाया। तुम्हारे साथ मुहब्बत
करके मैंने अम्मी को बेहद तकलीफ़ पहुंचाई है। अब उन्हें मैं और परेशान
नहीं कर सकती। मैंने सोचा था, इतने बरस आज़ाद भारत में रह चुकने
के बाद एक मुसलमान बेगम बदल गई होगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।
और मैंने अपनी हार मान ली है। अब मैं और अपने-आपको ग़लतफ़हमी
में नहीं रख सकती। अब और मैं तुम्हें धोखा नहीं दे सकती।

अब तुम जल जाओ, मेरी जान! कितनी देर इन दहकते अंगारों का
सेंक सहते रहोगे। अब अपने-आपको शोलों के हवाले कर दो। जलने में
भी एक मज़ा है। आग के अलाव में कूद पड़ना और फिर लपटों की लाल-
पीली-नीली लौ में गुम हो जाना। तुम और यूं बिटर-बिटर मेरी तरफ़
मत देखो। और यूं मुझे शर्मिन्दा मत करो। मैं गुनहगार हूं लेकिन मैं
मजबूर हूं। मैं अपनी मां को तड़पते नहीं देख सकती। मैं तुम्हें मुहब्बत
करती हूं। मैं तुम्हें मुहब्बत करती रहूंगी। आख़िर कितने लोगों की
मुहब्बत इस दुनिया में परवान चढ़ती है? प्यार की एक और हार सही।
मुहब्बत की एक और मौत सही।

तुम जल जाओ। तुम जलते क्यों नहीं? तुम्हारा मतलब है, आग
बुझ जाएगी, शोले ठंडे पड़ जाएंगे, और तुम वैसे-के-वैसे अंगीठी के एक
किनारे से मुझे एकटक देखते रहोगे? यह कैसे हो सकता है? आग में से भी
कभी कोई निकल सका है? आंच से भी कभी कोई बच सका है?

अब तुम जल जाओ, मेरी जान! यूं मंद-मंद मुसकराते हुए मेरी ओर
मत देखो। मैं तो मर चुकी हूं। मरे हुए को मारना ठीक नहीं। हमा
मुहब्बत की कहानी ख़त्म हो चुकी है। मैं अपनी मां के हाथ से ज़हर
प्याला पी चुकी हूं। अपनी मां के हाथों से अपने अरमानों का गला घ
चुकी हूं।

मैं नहीं कहती कि कोई मुहब्बत परवान नहीं चढ़ती। क़िस्मत

होते हैं, जो प्यार करते हैं और फिर प्यार को पा भी लेते हैं। क्या ख़बर, किस जन्म से वे लोग एक-दूसरे के लिए तड़प रहे थे ! किस जन्म से एक-दूसरे का पीछा कर रहे थे ! किस जन्म से एक-दूसरे के इंतज़ार में थे !

हम भी इंतज़ार कर लेंगे उस दिन का, जब इस देश के लोग, पहले इंसान होंगे फिर हिन्दू या मुसलमान। जब हिन्दू पानी से मुसलमान पानी अलग नहीं होगा। जब मुसलमान की नज़र में हर गैर-मुसलिम काफ़िर नहीं होगा। जब किसी मुसलमान की परछाईं से कोई हिन्दू भ्रष्ट नहीं हुआ करेगा।

वह दिन जब हम भारतीय पैदा होंगे, भारतीय होकर परवान चढ़ेंगे। वह दिन जब हम भारतीय होकर जिएंगे, भारतीय होकर मरेंगे। जब हम इस्लाम की असलियत को पहचानेंगे। जब हम हिन्दू धर्म की रवादारी को कबूल करेंगे।'

अचानक ज़ेबा को लगा, जैसे अंगीठी के शोलों में से झांक रही राजीव की मुसकरा रही तसवीर खिलखिलाकर हंस दी हो। एक नशे-नशे में जैसे ख़ुशियां लुटा रही हो। चारों ओर जैसे चमेली की कलियां खिल गई हों।

और फिर आग के शोले मद्धिम पड़ने लगे। बुझने लगे। हारे-हारे-से दिखने लगे।

बाहर, शाम की परछाइयां कब की ढल चुकी थीं। रात हो रही थी। कदम-कदम अंधेरा बढ़ता जा रहा था। पल-पल रात गहरी होती जा रही थी।

इतने में भोंपू की आवाज़ सुनाई देने लगी। लंबी और लंबी होती जा रही थी। भयानक और भयानक। जैसे सीने को चीरती हुई घुसती चली जा रही हो।

और फिर कालू ने आकर उसका दरवाज़ा खटखटाया, "ज़ेबा बीबी ! पाकिस्तान ने हिन्दुस्तान पर हमला कर दिया है। पाकिस्तान के हवाई जहाज़ हिन्दुस्तान के शहरों पर बम गिरा रहे हैं। अपने शहर में ब्लैक-आउट हो गया है।"

३५

"मेरी जिन्दगी में तो पहले ही ब्लैक-आउट हो चुका है।" अचानक ज़ेबा के मुंह से निकला। उधर कालू एक-एक करके घर की सारी वत्तियां बुझा रहा था।

घोर अंधेरा। चारों ओर मौत जैसी ख़ामोशी। बेगम मुजीब, ज़ाहिद, ज़ेबा, सारे अपने-अपने कमरों में से निकलकर गैलरी में आ गए थे। टुकुर-टुकुर एक-दूसरे के मुंह की ओर देख रहे थे। सहमे-सहमे से। परेशान-परेशान नज़रें। किसीको कुछ नहीं सूझ रहा था कि क्या करे, क्या न करे!

इतने में कालू ने रेडियो चालू कर दिया। पाकिस्तान की ओर से हिन्दुस्तान के हवाई अड्डों पर अचानक आक्रमण के समाचार सुनाई पड़ रहे थे। लोगों को हवाई हमले से बचाव के लिए चौकस किया जा रहा था। मेरठ को खास तौर पर ख़तरा था। एक तो यहां पर महत्त्वपूर्ण छावनी थी, दूसरे दिल्ली से खदेड़े हुए दुश्मन के हवाई जहाज़ यहां बम बरसा सकते थे।

"यह भी क्या मालूम कि पाकिस्तानी हवाबाज़ बम तो दिल्ली पर फेंके और जा गिरे वह मेरठ पर!" ज़ाहिद ने व्यंग्य किया।

"दुश्मन का हमला!" ज़ेबा ने घबराकर कहा। शहर का भोंपू फिर बजने लगा था।

"दुश्मन!" बेगम मुजीब को लगा, जैसे कोई बम उसके सीने में आ लगा हो। इतने में ज़ाहिद अपनी मां और बहन को अपनी बांहों में लपेटे कोठी के बाहर लॉन में ले आया। लॉन के एक ओर इमली के पेड़ के नीचे वे जा खड़े हुए। म्युनिसिपल कमेटी का भोंपू एक सांस बजता चला जा रहा था और फिर दूर तड़-तड़ एंटी-एयरक्रैफ्ट गोलियों के चलने की आवाज़ आने लगी।

"हमला है दुश्मन का।"

"मुकाबला हो रहा है दुश्मन के साथ।"

"हम दुश्मन के दांत खट्टे कर देंगे।" बहन-भाई आप-से-आप बोले

जा रहे थे।

बेगम मुजीब की छाती पर जैसे गोलियां बरस रही हों। उसका जेठ शेख शब्बीर दुश्मन था। उसका देवर जुबैर दुश्मन था। इस्मत, उसकी ननद दुश्मन थी। इरफ़ान, इस्मत का घरवाला, दुश्मन था जिसका रिश्ता उसने ख़ुद करवाया था। कबीर दुश्मन था, नूरी दुश्मन थी, जिनको बेगम मुजीब ने गोदी में खिलाया था। उसकी जेठानी दुश्मन थी, हमेशा इसे बहू कहकर बुलाती थी। अभी तो कल उसकी चिट्ठी आई थी।

"यहीं इस इमली के पेड़ के नीचे हम खाई खोद लेंगे।" ज़ाहिद कह रहा था, "जब हमला हुआ, यहां आकर छुप जाया करेंगे।"

जेबा सामने गुलाब की क्यारी की ओर देख रही थी। काले गुलाब की अधखिली कली जैसे गर्दन उठाकर उसकी ओर झांक रही थी। जेबा ने उसकी ओर पीठ फेर ली। भोंपू लगातार बज रहा था।

"दुश्मन का हवाई जहाज़ गिरा दिया गया है।" कालू कोठी की छत पर से चिल्ला रहा था। पता नहीं कब से वह छत पर चढ़कर तमाशा देख रहा था।

और फिर भोंपू की आवाज़ बदल गई। कुछ देर के बाद भोंपू बोलना बंद हो गया। अब आकाश साफ़ था।

"नामालूम दुश्मन ने कितना नुकसान किया होगा! कितने हवाई अड्डे बरबाद किए होंगे! कितने हवाई जहाज़ नष्ट किए होंगे!"

"हमने भी कोई कच्ची गोलियां नहीं खेलीं। तुम्हारा क्या मतलब है कि हम दुश्मन के लिए तैयार नहीं होंगे? हमारे लड़ाकू हवाई जहाज़ पाकिस्तान के शहरों की चटनी पीसकर रख देंगे।"

"कल हमारी फ़ौजें लाहौर में जा घुसेंगी।" ज़ाहिद दांत पीसकर कह रहा था।

बेगम मुजीब ने सुना और उसके तोते सूख गए। इस्मत लाहौर में थी। जुबैर लाहौर में था। कबीर लाहौर में था, नूरी लाहौर में थी।

"दुश्मन के हम छक्के छुड़ा देंगे।" जेबा के दांत जैसे उसके होंठों में खुभ रहे हों।

बेगम मुजीब सोचती, इस्मत का शौहर इरफ़ान उनका दुश्मन था।

अब तो वह फ़ौज में ब्रिगेडियर हो गया था। हो सकता है, उसीकी कमान में पाकिस्तान की फ़ौजें भारत पर हमला कर रही हों। उसके छोड़े हुए गोले इस धरती को लहू-लुहान कर रहे हों। उसके बरसाए हुए बम हमारे शहरों को तहस-नहस कर रहे हों। वह मंसूबे बना रहा होगा, हमारे शहरों को लूटने के, हमारे फ़ौजी ठिकानों को मटियामेट करने के।

अगले दिन फिर हवाई हमला। उससे अगले दिन एक और।

उस शाम जब भोंपू बजना बंद हुआ और वे कोठी के अंदर गए तब टेलीफ़ोन बज रहा था। दूसरी ओर राजीव था। हमेशा की तरह आज शाम ज़ेबा तेज़-तेज़ क़दम टेलीफ़ोन सुनने नहीं गई। यह देखकर ज़ाहिद टेलीफ़ोन सुनने लगा। ज़ेबा वैसी-की-वैसी बैठी अम्मी के साथ बातें कर रही थी। कुछ देर के बाद उसे यूं लगा, जैसे उसका दिल बैठा जा रहा हो। उसके हाथ-पांव में जैसे सुइयां चुभ रही हों और फिर वह उठकर अपने कमरे में चली गई।

राजीव और ज़ाहिद कितनी देर टेलीफ़ोन पर बातें करते रहे। राजीव ने उनका कुशल-मंगल पूछने के लिए टेलीफ़ोन किया था। बातों-बातों में राजीव ने बताया कि वे लोग लड़ाई के मोर्चे पर घायलों के इलाज के लिए डाक्टर, वालंटियरों का एक जत्था बना रहे थे। पंजाब और कश्मीर की सीमा पर डाक्टरों की आवश्यकता थी। ज़ाहिद ने सुना और वह भी तैयार हो गया। इसके बारे में राजीव उसे और विस्तार से बताता रहा। अलीगढ़ के मेडिकल कॉलेज के कुछ प्रोफेसर और कुछ लड़के इस टुकड़ी में शामिल हो रहे थे।

ज़ेबा ने सुना और कहने लगी, "मैं भी चलूंगी। क्या मैं नर्स नहीं बन सकती ?"

बेगम मुजीब सुन-सुनकर हैरान हो रही थी। यह सब उन सबके साथ लड़ेंगे। एक-दूसरे पर गोलियां चलाएंगे। एक दूसरे को मारेंगे। कोई उसका बेटा था। कोई उसका भतीजा था। भाई भाइयों को काटेंगे। बहनें अपनी बहनों की बेहुरमती देखकर खुश होंगी, पड़ोसी पड़ोसियों की लूटमार करेंगे।

यह हो क्या रहा था ? दुनिया किधर जा रही थी ? क़यामत शायद

इसीको कहते हैं। यह थी प्रलय जिसके बारे में लोग कहानियां किया करते हैं। बाप बेटे को नहीं पहचानेगा। भाई बहनों को नहीं पहचानेंगे। यह सब कुछ सोचती हुई बेगम मुजीब, कानों को हाथ लगाने लगी। तौबा-तौबा करने लगी। उसका जी चाहता, धरती जगह दे और वह उसमें समा जाए। अब और जी सकना उसके लिए मुमकिन नहीं होगा।

अगले दिन सचमुच भारतीय फौजों ने लाहौर पर चढ़ाई कर दी। इधर प्रधानमंत्री ने लोकसभा में नये आक्रमण की सूचना दी, उधर ख़बर आई, भारतीय फ़ौजें लाहौर में घुस गई थीं। शालीमार बाग़ तक पहुंच गई थी। भारतीय फ़ौज की एक टुकड़ी बागबानपुरा जा पहुंची थी। बड़ी मुश्किल से उन्हें लाहौर के बाहर रोका गया। लाहौर का हवाई अड्डा भारतीय तोपों की चपेट में था।

"अब लाहौर की ईंट के साथ ईंट बजाई जाएगी।"

"लाहौर शहर खाली हो रहा है। लोगों के क़ाफ़िले लाहौर छोड़कर जा रहे हैं।"

"लाहौर पर हमारा कब्जा हुआ तो पाकिस्तान की कमर टूटकर रह जाएगी।"

"लाहौर तो पाकिस्तान की नाक है।"

"अब पाकिस्तानी कभी भारत को नहीं ललकारेंगे।"

"इस बार हम दुश्मन के दांत खट्टे करके रहेंगे।"

"वह मार मारेंगे कि हमेशा-हमेशा उन्हें याद रहे।"

"अमरीका के दिए हुए पैटन टैंकों का हमारे जवान इस तरह निशाना बनाते हैं, जैसे वे खिलौने हों।"

'कहते हैं, पाकिस्तानी चालक पैटन टैंकों को खाली छोड़कर भाग जाते हैं। उनको यह ख़तरा लगा रहता है कि कहीं टैंक में आग गई तो वे अंदर ही जलकर भस्म हो जाएंगे। मुसलमान अगर जल जाए तो क़यामत वाले दिन उसे उठाया कैसे जाएगा ?"

बेगम मुजीब यह सब सुन-सुनकर दीवानी हो रही थी, कानों में उंगलियां दे लेती। क्या तो उसकी बेटी, और क्या उसका बेटा, क्या तो उसके मिलने-जुलने वाले, और क्या अड़ोसी-पड़ोसी, हर कोई इस तरह

की बातें करता था। समाचारपत्र दुश्मन की कहानियों से भरे होते थे। रेडियो पर पाकिस्तान को बुरा-भला कहा जाता। दुश्मन का मज़ाक उड़ाया जाता। जगह-जगह दुश्मन की हार की ख़बरें सुनाई जातीं। इतना ज़हर फैलाया जा रहा था, इतनी गंदगी उछाली जा रही थी, बेगम मुजीब सोचती, इसकी बदबू से तो उनकी अपनी नाक सड़ांध से भर जाएगी। नफ़रत के इस मलबे में वे लोग ख़ुद दबकर रह जाएंगे।

## ३६

लाहौर पर खुल्लम-खुल्ला आक्रमण देखकर पाकिस्तान ने लड़ाई का बाक़ायदा ऐलान कर दिया। उधर पाकिस्तान के प्रेसिडेंट अय्यूब ने लड़ाई की घोषणा की, इधर भारत में कई लोगों को हिरासत में ले लिया गया। इनमें महमूद भी था। उनके घर पर अचानक छापा मारा गया था और पुलिस महमूद को पकड़कर ले गई। यह भी सुनने में आया था कि महमूद को गिरफ़्तार करने के लिए आई पुलिस टुकड़ी ने उनके घर की तलाशी ली थी और ढेर सारा असलह बरामद किया था। इसमें हथ-गोले थे, बारूद था, देसी रिवाल्वर थे।

"यह सब झूठ है।" उस दिन दोपहर ढलते समय रुख़साना ज़ाहिद को बता रही थी। वैसी-की-वैसी सजी हुई जैसे अभी ब्यूटीशियन के यहां से होकर आ रही हो। तंग पायचों वाली शलवार, घुटने-घुटने तक लंबी कमीज़, सिर पर जार्जट का दुपट्टा, पांव में ज़री का पंजाबी जूता। उसने गोल कमरे में क़दम रखा, तो सारा घर जैसे महक उठा हो।

"पुलिस ने कब छापा मारा?" ज़ाहिद उसके भाई महमूद की गिरफ़्तारी को सुनकर परेशान था।

"सुबह-सवेरे आए। अभी हम सोकर भी नहीं उठे थे।" रुख़साना ने साधारण तौर पर कहा।

"बहुत बुरी बात है।" ज़ाहिद ने अपने होंठों में कहा।

"इसमें कौन-सी बुराई है ? महमूद के ढंग ही कुछ ऐसे थे। कई बार हम लोगों ने उसे समझाया है, लेकिन उसकी खोपड़ी जैसे उल्टी हो।"

"इसका मतलब यह है कि अब वह जेल में बंद रहेगा ?" जाहिद को जैसे रुख़साना की बेरुखी पर विश्वास न हो रहा हो।

"इस तरह के लोग हिरासत में आराम से रहते हैं।"

"फिर भी जेल आखिर जेल है।"

"कोई नहीं, घर से बिस्तर चला गया है। दोनों वक़्त खाना पहुँचा दिया जाता है। पढ़ने के लिए किताबें वह ले गया है।"

जाहिद हैरान था, किस लापरवाही से रुख़साना इस सब कुछ का ज़िक्र कर रही थी ; जैसे कोई गर्मियों में पहाड़ पर गया हो।

"अब्बा कहते हैं, अच्छा है, जेल में वह बुरी संगत से बचा रहेगा।" और रुख़साना आगे बढ़कर, नौकर की लाकर रखी हुई चाय बनाने लगी।

"यह भी कोई बात हुई।" जाहिद जैसे कुछ समझ न पा रहा हो।

"इसमें परेशान होने की क्या बात है जाहिद, मेरी जान…"

और फिर कमरे में जैसे एकदम खामोशी छा गई। रुख़साना पहली बार जाहिद से इस तरह मुख़ातिब हुई थी। एक क्षण-भर के लिए ऐसा लगा, जैसे चारों ओर कलियों के गुच्छे-के-गुच्छे चिटक गये हों। एक चुंधिया देने वाली रोशनी जैसे कमरे में कौंध गई हो। एक ख़ुशबू की लपट जैसे उसे मदहोश कर रही हो। उसकी आँखें एक [illegible] में डूब गई हों।

अगले क्षण रुख़साना के होंठ जाहिद के होंठों पर थे। उसके साथ दीवान पर बैठी उसने उसे अपने बाहुपाश में ले लिया था और दीवानों की तरह उसे लाड़ किए जा रही थी। बार-बार उसके बालों में उँगलियाँ फेरती और उसे चूमने लगती, जैसे उसका जी न भर रहा हो। उसे चूम-चूमकर वह बेहाल हो रही थी।

कितनी देर वे गुत्थमगुत्था हुए दीवान पर पड़े रहे। रुख़साना पर जैसे एक वहशत-सी छाई हो। जाहिद को अपनी बाहों में जकड़कर चूमती जाती। चूम-चूमकर बेहाल हो रही थी। आखिर जब उसे होश आता…

सामने तिपाई पर पड़ी चाय ठंडी हो चुकी थी।

"महमूद का इस तरह गिरफ़्तार···" जाहिद अभी तक महमूद के बारे में परेशान था।

"ज़ाहिद, मेरी जान, इसमें परेशान होने की कोई वात नहीं है। मेरे अव्वा कहते हैं, जव लड़के की मर्ज़ी होगी, हम उसे छुड़ा लेंगे।"

"यह कैसे मुमकिन हो सकता है?"

"सव कुछ मुमकिन होता है। कल सरकार को क्या मुसलमानों की वोटों की जरूरत नहीं होगी? और हमारे इलाके की सव वोटें मेरे अव्वा की मुट्ठी में हैं।"

"पहले भी महमूद एक वार क़ैद काट चुका है।" ज़ाहिद को जेवा ने यह वता रखा था।

"हां, उसमें भी मेरे अव्वा की मर्ज़ी शामिल थी। वह सोचते थे, लड़के को अक्ल आ जाएगी लेकिन महमूद तो विलकुल विगड़ चुका है। वुरी संगत में पड़ चुका है। दिन-भर भारत के मुसलमानों का रोना रोता है।"

"लेकिन उसकी वात में कोई वजन तो है।" जाहिद यह देखना चाहता था कि रुख़साना कितने पानी में है।

"भारतीय मुसलमानों का मसला उनकी ग़रीवी है। उनका आर्थिक पिछड़ापन है। और कुछ भी नहीं। उनको नौकरियां दो। उन्हें व्यापार और दस्तकारी में लगाओ। कोई पाकिस्तान की ओर आंख उठाकर नहीं देखेगा। पाकिस्तान का तो वस नाम ही है। मैंने खुद वहां जाकर देखा है। एक हुजरे की तरह वह देश अंदर-वाहर से ख़ाली है।"

"जव तक हिन्दू अपना हिन्दूपन नहीं छोड़ते, मुसलमानों को कोई-न-कोई डर खाता रहेगा। इस देश की निजात सेक्यूलरिजम में है।" जाहिद की राय थी।

"मुश्किल यह है कि इस्लाम के हमारे नज़रिये में सेक्यूलरिज़म को कोई जगह नहीं।"

"और तो और, उर्दू में सेक्यूलरिज्म का तर्जुमा 'लादीनीआत' या 'ग़ैर-मजहवियत' किया जाता है, जो विलकुल ग़लत है।" जाहिद हंस

रहा था।

"अलग ने सेक्यूलरिज़म का मतलब है, मज़हबी ज़िन्दगी को दुनियावी ज़िन्दगी में अलग रखा जाए। लेकिन अक्सर मुसलमानों को यू लगता है कि इस्लाम इसकी इजाज़त नहीं देता।"

जैसे रुख़साना ज़ाहिद के दिल की बात कह रही हो। वह इस लड़की की सूझबूझ और इसके स्वस्थ दृष्टिकोण पर चकित हो गया, मदहोश हो रहा था।

फिर रुख़साना बावर्चीख़ाने में गई और ताज़ी चाय बनाकर ले आई। और वे गरम-गरम चाय पीने लगे।

"मैं जानबूझकर आज इस वक़्त आई हूं।" रुख़साना ने चाय का घूंट भरा और सामने सोफ़े पर बैठे ज़ाहिद को बताने लगी, "मैं हेयर-ड्रेसर के यहां बैठी हुई थी कि मैंने शीशे में से देखा, अम्मीजान रिक्शे में बाज़ार की ओर आ रही थीं। ज़ेबा तो इस वक़्त स्कूल होती है।"

"कोई ख़ास बात?" ज़ाहिद रुख़साना की ओर देख रहा था। उसका यौवन जैसे ठाठें मार रहा समुद्र हो। रसोई में चाय बनाने गई तो वह अपने नखशिख को संवार आई हो। सजने की शौक़ीन। उसकी सुराहीदार गोरी गर्दन पर झुके हुए उसके जूड़े में से उसके बालों की एक लट झांक रही थी, जैसे चुम्बन के लिए बेचैन हो रही हो। उसकी हर नज़र ज़ाहिद के कलेजे में जाकर यूं लगती थी, जैसे ज़िन्दगी में पहले उसने कभी महसूस नहीं किया था।

रुख़साना क्षण-भर के लिए रुकी और फिर जैसे रटे-रटाए बोल उसके होंठों से फिसल गए, "मुझे यह पूछना है कि लन्दन में आपका किसी के साथ कोई कौल-इकरार तो नहीं हुआ?"

ज़ाहिद ने सुना और उठकर रुख़साना को अपनी छाती से लगा लिया। फिर होंठों पर होंठ। फिर एक-दूसरे के बाहुपाश में। फिर जैसे एक तूफ़ान उमड़ आया हो। ज़ाहिद प्यार करके हटता और रुख़साना उसे चूमना शुरू कर देती। एक के बाद दूसरा।

यूं वे बेहाल हो रहे थे कि बाहर एक रिक्शा आन रुकी। ज़ाहिद की अम्मीजान थी। रुख़साना और ज़ाहिद सभलकर एक-दूसरे के आमने-

सामने सोफ़े पर बैठे चाय पीने लगे।

बेगम मुजीब सीधी गोल कमरे में आईं। रुख़साना और जाहिद को बैठे चाय पीते देखकर कहने लगी, "बेटी, मैं तो आपके यहां गई थी। महमूद का सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ।"

"इसमें दुःख की क्या बात है अम्मीजान! कुछ दिन का आराम उसकी सेहत के लिए अच्छा होगा। लीजिए, आप भी चाय पीजिए।"

और रुख़साना अम्मी के लिए चाय बनाने लगी, जैसे वह घर उसका अपना हो।

## ३७

चाय पीते हुए रुख़साना बार-बार कह रही थी, " 'कश्मीर' भारत का अटूट हिस्सा है। यह बात तो भारतीय मुस्लिम लीग भी मानती है। 'जमात-उल-उलमाय-हिन्द' वाले भी मानते हैं। शेख़ अब्दुल्ला के गद्दी से हटाए जाने और हिरासत में लिए जाने के बाद भी मुस्लिम-लीग का प्रेज़िडेंट मुहम्मद इसमाइल अपने इस विश्वास पर क़ायम है।"

"मुझे तो लगता है कि कश्मीर के लिए लड़ते हुए हमारे पड़ोसी कहीं अपना पाकिस्तान ही न गंवा बैठें।" बेगम मुजीब चिन्तित थी।

"कम-से-कम पूर्वी पाकिस्तान तो उनके हाथ से जाता रहेगा।" जाहिद कहने लगा।

"अगर भारत चाहे तो दो दिन में पूर्वी पाकिस्तान को पश्चिमी पाकिस्तान से काटकर रख सकता है।" रुख़साना बोली।

यूं बातें हो रही थीं। लड़ाई की कोई ताजा खबर नहीं थी। फिर रुख़साना अपने घर को चल दी। कालू उसके लिए सड़क से एक रिक्शा पकड़ लाया था।

उधर रुख़साना गई, इधर ज़ेबा की रिक्शा आकर रुकी। गोल कमरे में बैठी बेगम मुजीब हैरानी में बार-बार हाथ मल रही थी। "यह सुनकर

कि महमूद पकड़ा गया है, मैं खास तौर पर उनके यहा अफसोस करने गई।" वह अपने बेटे-बेटी को बता रही थी, "उनके घर मे तो जैसे किसी-को परवाह ही न हो।"

"रुख़साना को आपने नहीं देखा। हेयर-ड्रेसर के यहा से होकर इधर आई थी।" जाहिद कह रहा था।

"यह तो अच्छा ही हुआ कि उसे शुरू मे पकड़ लिया गया, नहीं तो क्या पता क्या गुल खिलाता।" ज़ेबा ने नाक चढ़ाकर कहा।

"रुख़साना कह रही थी कि उसके अब्बा ने जानबूझकर उसे गिरफ्तार करवाया है ताकि हिरासत में अपनी हरकत से बचा रहे।"

"अम्मी! आप जानती नहीं," ज़ेबा बेहद परेशान थी, "महमूद तो कट्टर से कट्टर मुसलमानों से भी चार क़दम आगे है।" ज़ेबा का दिल जैसे लहू-लुहान हो। किस तरह का लड़का उसकी अम्मी उसके माथे मढ़ रही थी। "इधर बेशक़ कुछ लोग मानते हैं कि कश्मीर पर पाकिस्तान का हक है, कश्मीर उनको मिलना चाहिए।"

"यह नही सोचते कि कश्मीर एक ऐसी रियासत है जहा मुसलमान ज्यादा गिनती में हैं। अगर कश्मीर पाकिस्तान में मिल गया तो हिन्दुस्तान मुसलमानों के जैसे हाथ कट जाएगे।" बेगम मुजीव कहने लगी।

"अम्मी, महमूद तो जमाते-इस्लामी के मौलाना सदरुद्दीन और मसूद-उल-नदवी का चेला है। वह तो कहता है कि भारतीय मुसलमानों को जिहाद करके हिन्दुस्तान में 'हुकूमते इलाहिया' क़ायम करनी चाहिए। इसके लिए अगर जरूरत पड़े तो जान पर भी खेल जाना चाहिए।"

"यही नही, रुख़साना मुझे बता रही थी, वह तो कई ग़लत किस्म की जमातों के साथ जुड़ा हुआ है। कही तोड़-फोड़, कही दगा-फ़साद, कही फिरकावाराना बदमजगी, इस तरह की बेहूदगी में आम तौर पर उसका हाथ होता है।"

सुनते-सुनते बेगम मुजीव उठ खडी हुई। खबरों का वक्त हो रहा था। उसने रेडियो लगाया। लड़ाई वैसी-की-वैसी ज़ोरो पर थी। दुश्मन के टैंकों को बरबाद किया जा रहा था। शत्रु के फौजी-ठिकानो पर भारतीय हवाबाज बम बरसा रहे थे। दुश्मन के कई हमलो को नाकाम कर दिया

गया था।

दुश्मन! दुश्मन!! दुश्मन!!! बेगम मुजीब कान लपेटकर बाहर चली गई। इतना कुछ हो चुका था। ढेर-सा पानी पुल के नीचे से गुज़र चुका था। लेकिन पाकिस्तान को दुश्मन कहते हुए वह किसीको सुन नहीं सकती थी। 'भाई बेहूदा हो सकता है, भाई बेसमझ हो सकता है, भाई बदचलन हो सकता है, लेकिन भाई दुश्मन तो कभी नहीं होता।' वह अपने-आपसे कहती।

एक तो पाकिस्तान को 'दुश्मन' कहते हुए किसीको नहीं सुन सकती थी। दूसरे, महमूद की निंदा करते हुए किसीको सुनकर बेगम मुजीब के मुह का ज़ायका बिगड़ जाता था। उसे लगता, जैसे हर किसीकी यह साजिश हो। भले-चंगे, खाते-पीते, घर के लड़के को बुरा-बुरा कहकर लोग बुरा बना रहे थे। वह तो उसके आंगन में सेहरा बांधकर आएगा, मन-ही-मन उसने पक्का इरादा किया हुआ था।

खबरें ख़त्म हुई तो ज़ेबा किसी काम से रसोई में गई। एक ख़ुशबू-सी उसे महसूस हुई। फिर उसकी नज़र एक कोने में पड़े मसले हुए टिशु-पेपर पर पड़ी। उसीकी ख़ुशबू थी, लेकिन टिशु-पेपर का रसोई में क्या काम? ज़ेबा ने झुककर देखा, टिशु-पेपर से किसीने अपने होंठ साफ़ किए थे। लिपस्टिक के निशान थे। यह तो रुख़साना की लिपस्टिक का रंग था।

'रुख़साना रसोई में क्या कर रही थी?' फिर ज़ेबा आप-ही-आप मुसकराने लगी। उसने टिशु-पेपर को उठाकर देखा, उसीके सैंट की ख़ुशबू थी। ज़ेबा को बेहद लाड़ आया। दीवानों की तरह उसने रुख़साना की लिपस्टिक के रंगे टिशु-पेपर को उठाकर चूम लिया।

अपने कमरे में लेटी ज़ेबा कितनी देर एक नशे-नशे में डूबी रही। रुख़साना कितनी किस्मत वाली थी! ज़ाहिद कितना ख़ुशक़िस्मत था! किसीके मन की मुराद का पूरा हो जाना! किसीको किसीकी मंज़िल का मिल जाना—हाय, उनकी दुनिया कितनी सुरीली होगी! कैसे उनके दिन होंगे; जैसे रिमझिम फुहार से कोई झूला झूल रहा हो! ऊपर और ऊपर कोई उड़ता चला जाए! किसीकी ज़ुल्फ़ें खुल-खुल जाए! किसीकी चुनरी उड़-उड़ जाए।

हुए कभी उसे लगता, जैसे वह खुद फ़ौज के साथ लड़ रहा हो। तड़-तड़ गोलियां चला रही हो। एक बेपनाह जोश में फ़ौज को आगे-ही-आगे धकेल रही हो। फिर एकदम जैसे उसके हाथ-पांव ठंडे पड़ जाते। पाकिस्तान पर कोई बम न गिरे, उसका अंग-अंग पुकार उठता। पाकिस्तान में किसीका बाल भी बांका न हो।

हिन्दुस्तान की जीत में उसे लगता, जैसे उसका शौहर शेख़ मुजीब जीत रहा था। पाकिस्तान की हार में उसे महसूस होता, जैसे उसके मियां का भाई शेख़ शब्बीर हार रहा था।

किसकी जीत वह मांगे? किसकी हार के लिए दुआ करे? बेगम मुजीब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। चक्कर-चक्कर, अंधेरा-अंधेरा उसकी आंखों के आगे छाया रहता।

## ३८

जाहिद और राजीव डाक्टरों के जत्थे के साथ लड़ाई के मोर्चे पर चले गए। दोनों के पास विलायत की डिग्रियां थीं। एक-आध दिन दिल्ली में सिखलाई के बाद उन्हें पश्चिमी सीमा पर भेज दिया गया।

बेगम मुजीब देखती रह गई। न वह 'न' कर सकती थी, न वह 'हां' कर सकती थी। उसका एक ही एक बेटा पाकिस्तान के ख़िलाफ़ जंग लड़ने के लिए चला गया था। चाहे डॉक्टर था, बम नहीं फेंकेगा, बंदूक़ नहीं चलाएगा, लेकिन उसपर तो कोई बम फेंक सकता था, उसे तो गोली का निशाना बनाया जा सकता था। किसी मशीनगन को थोड़े ही पता होता है कि उसकी बरसाई गोलियां किसकी छाती में लग रही हैं, किसके सीने को छेद रही हैं।

जाहिद और राजीव एक ही मोर्चे पर तैनात थे। जाहिद की हर चिट्ठी में राजीव का जिक्र होता, राजीव की हर चिट्ठी में जाहिद के कुशल-मंगल का हाल। जैसे दो बुत एक जान हों। इकट्ठे रहते थे, इकट्ठे

...न करते थे। इकट्ठे खाते-पीते। बेगम मुनीज को हर रोज चिट्ठ[ी] लिखते थे। जाने से पहले इसने उनसे वायदा लिया था। जब जाहि[द] ड्यूटी न होता तो राजीव चिट्ठी लिखता। जब राजीव ड्यूटी पर होता जाहिद चिट्ठी लिखता। दोनों इसे 'मेरी प्यारी अम्मीजान' कहकर अपनी चिट्ठी शुरू करते। दोनों की चिट्ठी 'आपका बेटा' कहकर ख़त्म होती। ज्यादा चिट्ठियां राजीव लिखता। दोनों उर्दू में अंग्रेज़ी का प्रयोग करते। जाहिद कुछ कम, राजीव कुछ अधिक।

फिर एक दिन बेगम मुनीज अपने दिल को टटोलती रह गई। पाकिस्तान के किसी स्टेशन पर उसके रेडियो की सुई घूमी और उसने सुना : 'ब्रिगेडियर मुहम्मद इरफ़ान को छम्ब सैक्टर में लासानी बहादुरी दिखाने के लिए पाकिस्तानी फ़ौज का सबसे ऊंचा एजाज़ पेश किया गया था। ब्रिगेडियर इरफ़ान की कमान में पाकिस्तानी फ़ौजों ने दुश्मन की एक के बाद एक पांच चौकियों का सफ़ाया किया था। दुश्मन के सैंकड़ों सिपाहियों को मौत के घाट उतारा था, पूरी-की-पूरी भारतीय रेजिमेंट ने पाकिस्तान की आगे बढ़ रही फ़ौज के सामने हथियार डाल दिए थे।' कुछ इस तरह ब्रिगेडियर इरफ़ान की बहादुरी के कारनामे सुनाए जा रहे थे।

बेगम मुनीज की ननद इस्मत के मियां ब्रिगेडियर इरफ़ान ने सैंकड़ों भारतीय फ़ौजियों को गोलियों का निशाना बनाया था। एक ही हमले में पांच चौकियों पर कब्ज़ा कर लिया था। कई भारतीय फ़ौजों को क़ैदी बना लिया था। इस सब कुछ के लिए उसे पाकिस्तान के सबसे उत्तम तमग़े के साथ सम्मानित किया गया।

बेगम मुनीज की समझ में नहीं आ रहा था कि इस सब कुछ के लिए वह खुश हो या नहीं। उसके देश की हार हो रही थी। उसकी ननद का शौहर जीत रहा था। पाकिस्तानी छम्ब सैक्टर में आगे, और आगे बढ़ते हुए कश्मीर को भारत से अलग कर देना चाह रहे थे। और ब्रिगेडियर इरफ़ान इस मोर्चे पर पाकिस्तानी फ़ौजों की अगवाई कर रहा था। अगर कश्मीर को इस तरह भारत से काट दिया गया तो पाकिस्तानी फ़ौजें रियासत पर कब्ज़ा कर लेंगी।

बेगम मुनीज क्या चाहती थी? 'कश्मीर भारत का अटूट अंग है।'

कई बार वह यह कहा करती थी। हमेशा उसका बेटा यह कहता था। उसकी बेटी यह कहती थी। अगर ब्रिगेडियर इरफ़ान की फ़ौज भारतीय चौंकियों का सफ़ाया कर सकती है तो वह भारतीय फ़ौज के अस्पतालों पर भी तो हमला कर सकती है। उन्होंने तो मस्जिदों पर भी बम बरसाए थे। और इस तरह के किसी फ़ौजी अस्पताल में उसका बेटा ज़ाहिद था, राजीव था।

बेगम मुजीब सोचती, अगर लड़ाई भारत और पाकिस्तान के बीच न होती तो वह इरफ़ान की इस जीत पर उसे तार भेजती। खुद जाकर उसे मुबारकबाद देती। वह तो इसके बेटे की तरह था, स्वयं इसने उसका रिश्ता करवाया था। और फिर इस्मत के साथ इसका प्यार भी कितना था! इस्मत को वह ननद थोड़े ही समझती थी, वह तो जैसे इसकी बेटी थी। बेटियों की तरह तो बेगम मुजीब ने उसे पाला था, उसका विवाह किया था।

बहुत दिन नहीं गुजरे और वही बात हुई जिसके बारे में बेगम मुजीब सोचती और उसका दिल बैठ-बैठ जाता। एक सुबह उसके नाम तार आया कि ज़ाहिद जंग के मोर्चे पर घायल हो गया था। बेगम मुजीब ने तार पढ़ा और ज़ेबा की बांहों में ढेर हो गई। ज़ेबा की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। कोठी के बाहर सड़क पर उसने डाक्टर गोयल को बुला भेजा। टीका लगाकर डाक्टर बेगम को होश में ले आया। अब समस्या यह थी कि ज़ाहिद के बारे में पूछताछ कहां से की जाए। होश में आकर बेगम मुजीब बार-बार ज़ेबा से पूछती, "कितनी चोट आई? कहां चोट आई?" ज़ेबा अपनी अम्मी को क्या बताती।

बेगम मुजीब को परेशानी में बुख़ार आ गया। उसका बुख़ार बढ़ने लगा। कुछ देर के बाद उसका शरीर जैसे जल रहा हो। उसका मुंह लाल सुर्ख हो गया। ज़ेबा ने फिर डाक्टर को टेलीफ़ोन किया। डाक्टर ने उसके माथे पर ठंडे पानी की पट्टियां रखने के लिए कहा। लेकिन यूं लगता, जैसे बुख़ार बेगम मुजीब के सिर पर चढ़ता जा रहा हो। कुछ देर के बाद उसने अनाप-शनाप बोलना शुरू कर दिया।

"लाहौर पर कब्जा क्यों नहीं करते? शहर के बाहर जाकर क्यों

रुक गए हैं?"

ज़ेबा पानी में बर्फ़ के टुकड़े डालकर ठंडी-ठंडी पट्टियां उनके माथे पर रखे जा रही थी।

"तुम क्यों नहीं फ़ौज में भर्ती होती? यहां बैठी क्या कर रही हो? दुश्मन ने हमारे देश पर हमला कर दिया है।"

ज़ेबा हैरान-सी अपनी अम्मी के मुंह की ओर देख रही थी और एक के बाद एक, उसके माथे पर पट्टियां रखे जा रही थी।

'यह अंगूठी प्रधानमंत्री के फ़ंड में भेज दो। इस दुश्मन को सबक सिखाना होगा।" बेगम मुजीब ने अपने हाथ की उंगली में से हीरे की अंगूठी उतारकर ज़ेबा की हथेली पर रख दी।

ज़ेबा के अश्रु फूट आए। यह अंगूठी बेगम मुजीब के शौहर की निशानी थी। उसे सबसे अधिक प्यारी थी। क्या मजाल है जो कहीं आगे-पीछे हो जाए। हमेशा उसे सीने से लगाए रहती।

इतने में रुख़साना आई। वैसी-की-वैसी सजी हुई। ख़ुशबू-ख़ुशबू। एक नज़र तार को देखकर उसने मेरठ छावनी एक टेलीफ़ोन किया, दूसरा टेलीफ़ोन किया। शाम तक सूचना आ गई कि ज़ाहिद की दाईं टांग पर गोली लगी थी। ख़तरे की कोई बात नहीं थी। उसके साथी सर्जन राजीव ने चीरा देकर गोली निकाल दी थी। मरीज़ को दिल्ली या मेरठ भेजा जा सकता था, लेकिन एक-आध दिन राजीव उसे अपनी देख-रेख में रखना चाहता था।

रुख़साना का कोई 'अंकल' छावनी में बड़ा अफ़सर था। उसने उनसे फ़रमाइश की कि अगर मुमकिन हो सके तो ज़ाहिद को मेरठ के अस्पताल में तब्दील कर दिया जाए।

"यह कोई मुश्किल नहीं होना चाहिए।" रुख़साना के 'अंकल' ने उसे हौसला दिलवाया।

"मैं तो हमेशा कहती हूं, लड़ाई बुरी चीज है—चाहे छोटी हो, चाहे बड़ी। और फिर लड़ाई अपने पड़ोसियों के साथ, इस जैसी बेहूदगी कोई नहीं। और फिर पड़ोसी भी ऐसे, जैसे भारत और पाकिस्तान। एक परिवार। दो जिस्म, एक जान। मेरी अम्मी पहले ख़बरें अपने रेडियो स्टेशन की सुनती हैं। पाकिस्तान की हार की कहानी सुनकर फट लाहौर या कराची स्टेशन लगा देती हैं, यह सुनने के लिए कि वे लोग हारे नहीं हैं। यह अच्छी लड़ाई है। पाकिस्तान कहता है, हम जीत रहे हैं, हिन्दुस्तानी कहते हैं, हम जीत रहे हैं।"

"और ख़बरें सुनने वाले भी इस तरह के लोग हैं, इधर हिन्दुस्तान में भी और उधर पाकिस्तान में भी जो हाथ जोड़ते रहते हैं कि हिन्दुस्तान भी जीते, पाकिस्तान भी जीते।" जेबा ने फीकी-सी हंसी हंसते हुए कहा।

"नहीं, नहीं, नहीं ! दुश्मन की हार हो ! दुश्मन की हार हो !!" रुख़साना से यूं बातें करते हुए बेगम मुजीब की आंख लग गई।

## ३९

कुछ दिनों के बाद जाहिद को दिल्ली छावनी के अस्पताल में भेज दिया गया। मेरठ अस्पताल में भेजना संभव नहीं था। जाहिद की टांग में ही गोली नहीं लगी थी, उसको और भी चोटें आई थीं। वास्तव में उसके निकट, कुछ दूरी पर दुश्मन का बम आकर फटा था, जिससे वह बुरी तरह निढाल हो गया था। राजीव ने दिन-रात एक करके उसे बचा लिया था। हर कोई कहता, यह तो चमत्कार है। जगह-जगह पट्टियां, जगह-जगह पलस्तर। जाहिद की एक से अधिक हड्डियां टूटी थीं।

जाहिद के साथ राजीव भी मोर्चे से लौट आया। वास्तव में डाक्टरी कोर के अफ़सरों को इस बात की चिन्ता थी कि जाहिद का केस बिगड़ न जाए। राजीव ने शुरू से उसे संभाला था। जब तक कि वह ख़तरे से

बाहर न हो जाए, उसे राजीव की देख-रेख में रखना उचित था।

बेगम मुजीब ने अपने बेटे को देखा तो उनका दिल डूबने लगा, जैसे पट्टियों में लिपटा हुआ गुड्डा हो। शरीर का कोई ही अंग ऐसा होगा जहां उसे चोट न आई हो। क्या सिर, क्या छाती! क्या बाहें, क्या टांगें! लेकिन एक राजीव था कि उसे पूरा विश्वास था। बेगम मुजीब को वह ढाढस बंधा रहा था, "ज़ाहिद पूरी तरह खतरे से बाहर है।" पट्टियों में लिपटा हुआ ज़ाहिद भी, आंखों-ही-आंखों में मुसकराकर मां का हौसला बढ़ा रहा था। अम्मी के साथ ज़ेबा थी, रुख़साना थी—दोनों हक्की-बक्की-सी ज़ाहिद को देख रही थीं। वे तो इसका अनुमान भी लगा नहीं सकती थीं कि ज़ाहिद इस तरह गंभीर रूप से घायल हुआ था। राजीव कितनी देर तक उन्हें समझाता रहा, चोट कहां-कहां आई थी, हर चोट की अब क्या हालत थी। टूटी हुई हड्डियां पलस्तर में थीं, और कुछ दिन में वे जुड़ जाएंगी। वक़्त ज़रूर लगेगा लेकिन ज़ाहिद ठीक हो जाएगा।

बेगम मुजीब, ज़ेबा और रुख़साना राजीव के यहां रुक गईं और बारी-बारी से, अस्पताल में ज़ाहिद की देखभाल करने लगीं।

दो-चार दिन के बाद रुख़साना को मेरठ लौटना पड़ा। महमूद का मामला बिगड़ गया था। यूं लगता, जैसे पुलिस की हिरासत में उससे पूछताछ हुई और पुलिस ने उससे कुछ बकवा लिया था। फिर तफ़तीश हुई और पता चला कि उसका तो कई गंभीर अपराधों में हाथ था। यूं लगता कि उसे सज़ा होकर रहेगी। उसके अब्बा का रसूख धरा-का-धरा रह जाएगा। ज्यों-ज्यों मामला आगे बढ़ता, और-और गंद उछलता। महमूद और-और शिकंजे में फंसता जाता। अब उसके अब्बा ने बड़े-से-बड़े वकील को मुकदमे की पैरवी के लिए तय कर लिया लेकिन यूं लगता कि महमूद को सज़ा होकर रहेगी। बेगम मुजीब सुन-सुनकर हैरान होती रहती। जैसे-जैसे उनकी करतूतों के बारे में सुनती, ज़ेबा अपने-आपको जैसे जीता हुआ महसूस करती।

फिर भी राजीव ने जो दूरी उसने तय कर ली थी, उसे बनाए रखती। उधर जब तक ज़ाहिद ठीक न हो जाए, राजीव ऐसी कोई हरकत

करना नहीं चाहता था जिससे किसी का दिल दुखे।

फिर ज़ाहिद को मेरठ के अस्पताल में तब्दील कर दिया गया। कुछ दिन अस्पताल में रहकर वह घर आ गया। लेकिन जितने दिन बेगम मुजीब और ज़ेबा दिल्ली में राजीव के यहां रहीं, उसने जैसे बेगम मुजीब का दिल समूचा जीत लिया हो। कितना प्यारा लड़का ! कितना क़ाबिल सर्जन ! कितना मीठा बोलने वाला ! कितनी क़ुरबानी ! एक क्षण के लिए उसने कभी यह महसूस नहीं होने दिया था कि ये लोग उसपर किसी तरह का बोझ थे। जितने दिन ये वहां रहे, राजीव या तो अस्पताल में ज़ाहिद के पास होता या फिर इनकी ख़िदमत में।

ज़ेबा अजीब हारी हुई-सी महसूस करती। अजीब थी उसकी मजबूरी। राजीव को चाहती थी लेकिन अपनी विधवा मां को उससे ज्यादा प्यार करती थी। कभी राजीव के साथ अकेली न होती। कभी नज़र उठाकर उसकी आंख-से-आंख न मिलाती। एक छत के नीचे वे रहे, एक मेज़ पर खाते-पीते, लेकिन उनकी मां का संयम, ज़ेबा ने एक बार भी अपने-आपको शर्मिंदा नहीं होने दिया। एक बार भी अपनी मां को दिए वचन को नहीं झुठलाया।

उधर महमूद के मुकदमे की ऐसी भयानक ख़बरें आ रही थीं। फिर भी ज़ेबा अपनी अम्मी के साथ किए इकरार पर वैसी-की-वैसी स्थिर थी।

महमूद के अब्बा कहते, लड़ाई का शोर-शराबा ख़त्म हो जाए तो मैं अपने बेटे को छुड़ा लूंगा। रुख़साना महमूद को बुरा-भला कहती, लेकिन इसमें उसे भी कोई शक नहीं था कि उसके अब्बा अपने बेटे को रिहा नहीं करवा सकेंगे। उन लोगों के रहन-सहन, खान-पीन, शान-शौक़त में कोई फ़र्क नहीं आया था।

रुख़साना की मुहब्बत का सदका, ज़ाहिद आज और कल और, दिन-पर-दिन अच्छा होता जा रहा था। रुख़साना प्रायः उनके यहां मौजूद रहती। ज़ाहिद का दिल बहलाए रखती।

ज़ाहिद चार दिन लड़ाई के मोर्चे पर क्या रह आया था, सारा दिन पाकिस्तान से हुई जंग की कहानियां उन्हें सुनाता रहता। छम-जोड़ियां

के इलाके में कभी पाकिस्तान का पलड़ा भारी हो जाता, कभी भारत का। जैसे हिन्दुस्तानी फ़ौज में—सिख, ईसाई, हिन्दू और मुसलमान एक-जान होकर लड़ते थे! कहीं 'हर-हर-महादेव', कहीं 'अल्लाह हू अकबर', कहीं 'सत श्री अकाल' के नारे सुनाई देते। जैसे पाकिस्तान ने पहले अपने घुस-पैठिए कश्मीर में भेजे। उनका ख़याल था कि कश्मीर के लोग फूलों के हार लेकर उनका स्वागत करेंगे। घुसपैठियों ने तोड़-फोड़ की वारदातें कीं, आग लगाई, पुल बरबाद किए। लेकिन फिर एक वक़्त आया जब पाकिस्तान के लिए घुसपैठियों को बचाकर बाहर निकालना मुश्किल हो गया। छम-जोड़िया के सैक्टर में पाकिस्तान का इस तरह सिर-धड़ की बाज़ी लगाकर लड़ने की वजह यह भी थी कि पाकिस्तानी अपने घुस-पैठियों को जम्मू और कश्मीर से से किसी तरह निकालना चाहते थे। उन्हें डर था कि उनके लोग जंगलों में, पहाड़ों में भटकते मर जाएंगे।

ज़ाहिद पर छम-जोड़िया के सैक्टर में हमला हुआ था। उस दिन बेगम मुजीब उसके पास बैठी अपने बेटे को ब्रिगेडियर इरफ़ान की सिर तमग़े के बारे में बता रही थी। कमरे में जेबा भी बैठी थी और रख़साना भी।

"तो फिर आपके बेटे को चाहे इम्तन फुर्सी के सिवा का ही पैका बन आ गया हो।" ज़ाहिद ने कहा और कमरे में जैसे एक स्तब्धता छा गई हो।

"क्या मतलब ?" कुछ देर बाद बेगम मुजीब पूछने लगी।

"हो न हो, वह इरफ़ान फूफा का ही बम था।" ज़ाहिद गम्भीर हो रहा था।

"तभी तो तुम्हारा बचाव हो गया है।" जेबा हंसने लगी।

"इसमें हंसने की कोई बात नहीं." रख़साना का चेहरा तमकने लगा "हिन्दुस्तान के मुसलमानों को फ़ैसला करना है—कौन हमारा दुश्मन है कौन हमारा दोस्त है ?"

"पाकिस्तान की हुकूमत हमारी दुश्मन है। पाकिस्तान के लोग हमारे दोस्त हैं।" जेबा ने पढ़ा-पढ़ाया जवाब दिया।

"इरफ़ान फूफा का बम मेरी जान भी ले सकता था जैसे उसने मेरे

और कई साथियों को मारा।"

"जो बम अम्वाला पर फेंके जा सकते हैं, वे मेरठ पर भी गिर सकते हैं।" रुख़साना आग-बबूला हो रही थी।

"हमारी पीढ़ी पर ख़ुदा की मार है।" बेगम मुजीब हाथ मलती हुई उठ खड़ी हुई और कमरे में से निकल गई।

"बेशक़ भाई-बहन हैं, पड़ोसी हैं, लेकिन लड़ाई में एक-दूसरे के दुश्मन हैं।" रुख़साना कह रही थी।

"जब सुलह हो जाएगी, फिर बहन-भाई बन जाएंगे।" ज़ेबा के मुंह का मजा जहर जैसा कड़वा हो रहा था।

उधर अपने कमरे में कार्नस पर रखी इरफ़ान की तसवीर के सामने खड़ी बेगम मुजीब उससे पूछ रही थी, "इरफान! तुमने जाहिद को निशाना बनाकर, जाहिद के साथियों को बम से उड़ाकर, जाहिद के देश पर हमला करके तमग़ा ले लिया है—क्या यह सच है इरफ़ान? क्या यह सच है?"

## ४०

हर कोई कहता था कि उसे सजा हो जाएगी, लेकिन महमूद के अब्बा को पूरा भरोसा था कि वह रसूख से, अपने पैसे से, बेटे को छुड़ा लेंगे। जब कोई इसका जिक्र करता, बेगम मुजीब को जैसे अच्छा-अच्छा लगता। मन-ही-मन वह महमूद को ज़ेबा के साथ जोड़े हुए थी। उधर ज़ेबा थी कि जब भी कोई महमूद का नाम लेता, उसके दिल की कोई धड़कन जैसे गुम हो जाती।

जाहिद ठीक हो रहा था। उसने उठना-बैठना शुरू कर दिया था। घर में एक कमरे से दूसरे कमरे तक चला जाता। दिन में, बाहर धूप में जा बैठता। बेगम मुजीब सोचती, जाहिद एक बार ठीक हो जाए तो रुख़साना के साथ वह उसका निकाह कर देगी। उसे तो बस बाक़ायदा

पैगाम ही देना था। रुखसाना के घरवाले इसके इंतज़ार में थे।

ज़ेबा के बारे में, अलबत्ता कुछ नहीं कहा जा सकता था। महमूद के घरवालों की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उनका लड़का अभी हिरासत में था। अभी मुकदमा चल रहा था। अभी उनका वकील ज़ोर लगा रहा था।

अजीब-अजीब कहानियां लोग गढ़ते थे। बेगम मुजीब सुनती और उसका दिल बैठ-बैठ जाता। फिर वह सोचती, लोगों को बेकार राई का पहाड़ बनाने की आदत होती है। और फिर हमारी पुलिस भी तो सच्ची-झूठी बातें जोड़ती रहती है। पिछली बार भी तो महमूद के साथ उन्होंने यू ही किया था।

इधर जब से जाहिद और राजीव, लड़ाई के मोर्चे से लौटे थे, उनकी बातें बेगम मुजीब के दिमाग की जैसे नित्य नई खिड़कियां खोल रही हों। राजीव हर सप्ताह जाहिद को देखने के लिए आता था।

राजीव और जाहिद उसे बताते कि पाकिस्तान के बच्चे-बच्चे की ज़बान पर आजकल यह नारा है

हंसके लिया है पाकिस्तान, लड़के लेंगे हिन्दुस्तान।।"

"यह तो मेरा भाई महमूद भी हमें सुनाया करता है," रुखसाना कहने लगी। "महमूद गजनवी ने हिन्दुस्तान को सत्रह बार लूटा शहाबुद्दीन गौरी ने दस बार हमला किया और फिर कहीं भारत पर इस्लामी राज कायम कर सका, बाबर के पांचवें हमले के बाद यहां मुगल-राज की नींव डाली गई, अहमद शाह अब्दाली आठ बार यहां लूट-मार करके लौट गया। पाकिस्तान भी किसी-न-किसी दिन कामयाब हो जाएगा।"

"बीमार आदमी है।" जाहिद ने नाक चढ़ाते हुए कहा।

"ये लोग नहीं जानते कि आज का भारत वह पुराना भारत नहीं। ज़ेबा कह रही थी।

"आज का भारत हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सबका भारत है। जाहिद समझा रहा था, "पाकिस्तान के लोग बेशक हमारे 'हम-मजहब' है, वे हमारे 'हम-वतन' नहीं। मजहब की अपनी जगह है, वतन की

अपनी। मज़हव की मुहब्बत एक चीज़ है, वतन का प्यार एक ओर। कश्मीर में सवसे पहले घुसपैठियों की ख़वर सवरोट के एक मुसलमान गूजर ने दी। जोड़िया के एक मुसलमान आवादी वाले गांव ने घुसपैठियों को मुंह नहीं लगाया, गुस्से में आकर उन्होंने जुम्मा के रोज़ मस्जिद में नमाज पढ़ रहे लोगों पर वम फेंककर इकावन नमाज़ियों को भून डाला। चीमा के मोर्चे पर चौथी ग्रेनेडियर का हवलदार अब्दुल हमीद वजका वाली जीप में जा रहा था कि उसने देखा कि कोई डेढ़ सौ गज के फ़ासले पर पाकिस्तान का एक पैटन टैंक आ रहा है। एक आंख झपकने की देर में वह एक टीले के पीछे जा छिपा और उसने इस्पात के वढ़ते हुए दैत्य पर गोलियों की वर्षा कर दी। उसके देखते-देखते पैटन टैंक में से शोले निकलने शुरू हो गए। इतने में एक और पैटन टैंक आगे वढ़ा। हमीद ने उसे भी निशाना वनाया। फिर दो और टैंक सामने आए, हमीद ने विना किसी ख़ौफ़ के, उनमें से एक को नकारा कर दिया। लेकिन चौथे पाकिस्तानी टैंक ने हमीद को दवोच लिया। अल्लाह का नाम उसके होंठों पर था, और हवलदार अब्दुल हमीद अपने देश के लिए जान पर खेल गया। हमीद को वहादुरी का सवसे वड़ा मान, परम-वीर चक्र मरने के वाद दिया गया है।"

"लड़ाई से कई महीने पहले पाकिस्तान के विदेशी मामलों के वज़ीर भुट्टो ने खुल्लम-खुल्ला कहा था कि पाकिस्तान ने कश्मीर को हथियाने की योजना पूरी कर ली है।" ज़ेवा याद दिला रही थी।

"और यह स्कीम हमारे भाई महमूद के मुताविक कुछ इस तरह थी," रुख़साना कहने लगी, "पाकिस्तानी घुसपैठिए पहले श्रीनगर के हवाई अड्डे और रेडियो स्टेशन पर कव्ज़ा करेंगे। फिर हुकूमत की वाग-डोर संभाल ली जाएगी। चौदह अगस्त, १९६५ का आज़ादी का दिन पाकिस्तानी जम्मू-कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में मनाएंगे। अगर इसमें क़ामयावी न हुई तो पाकिस्तानी फ़ौजें छम्व-जोड़ियां सैक्टर में अंतराष्ट्रीय सरहद पार करके अख़नूर और जम्मू पर कव्ज़ा कर लेंगी। और फिर वाक़ी रियासत पर। और अगर यह भी योजना पूरी न हुई तो पाकिस्तानी फ़ौजें पैटन टैंकों और सेवर-जैट हवाई जहाज़ों की मदद से पंजाव पर हमला

कर देंगी। सात सितंबर को व्यास नदी पर वरलैनी सड़क के पुल पर कब्ज़ा किया जाएगा। आठ सितंबर को लुधियाना जीता जाएगा। दस सितंबर को फील्ड मार्शल अय्यूब लालकिले में अपनी जीत का जश्न मनाएंगे।"

ये सब सुन-सुनकर बेगम मुजीब के पसीने छूट रहे थे। यू भी कभी हुआ है! अंधेरगर्दी। यू भी कभी पड़ोसी, पड़ोसियों के साथ करते हैं!

"जैसे इधर लोगों ने कांच की चूड़ियां पहन रखी हों।" ज़ेबा ने दांत पीसकर कहा।

"यह तो शाबाश है हिन्दुस्तान के मुसलमानों पर कि एक-ज़बान होकर उन्होंने अपनी हुकूमत का साथ दिया," ज़ाहिद ने कहा, "अजमेर-शरीफ़ की दरगाह से फ़रमान हुआ कि हज़रत ख़्वाजा ग़रीबनवाज़ का हर बंदा ज़रूरत पड़ने पर अपने देश की हिफ़ाज़त के लिए अपने-आपको क़ुर्बान कर दे। जमात-उल-उलमाये हिन्द के जनरल सेक्रेटरी मौलाना असद मदनी ने प्रधानमंत्री को तार देकर यक़ीन दिलाया कि भारत के मुसलमान पाकिस्तान के नापाक इरादों को क़ामयाब नहीं होने देंगे। जमात कश्मीर को भारत का अटूट अंग समझती है और इसके लिए वह हर क़ुर्बानी देने को तैयार है। दिल्ली के शाही इमाम ने पाकिस्तानी हमले का मुकाबला करने के लिए सरकार को पूरी मदद की पेशकश की।"

उस शाम, मक्का-शरीफ़ में हिन्दुस्तानी मजलिस के सदर-अल-हज मौलाना मुहम्मद करमअली ने भारतीय मुसलमानों से अपील की कि वे चौबीस सितंबर की जुम्मा की नमाज़ के बाद अल्लाह का शुक्र मनाएं कि वे एक बड़े इम्तिहान में पूरे उतरे हैं। पाकिस्तान के भारत पर हमले के दौरान वे अपने देश के प्रति पूरे-पूरे वफ़ादार रहे थे।

यह ख़बर सुन रही बेगम मुजीब के सीने पर जैसे कोई तीर आ लगा हो। क्या वह भी अपने देश के प्रति पूरी वफ़ादार थी? क्या वह भी रवादारी और हिन्दू-मुस्लिम-एकता की शाहराह पर चल रही थी जिसपर सारी उम्र उसका शौहर चलता रहा था? बेगम मुजीब के भीतर जैसे एक तूफ़ान उमड़ आया हो।

बेगम मुजीब अपने कमरे में बैठी इन विचारों में डूबती जा रही थी

कि उसे लगा, जैसे राजीव आया हो। हां, यह उसीकी आवाज़ थी। पिछले कई दिनों से वह ज़ाहिद को देखने आया करता था। रात-भर ठहरकर अगले दिन लौट जाता। बेगम मुजीब को चाहिए था कि उसके स्वागत के लिए गोल कमरे में जाए। लेकिन उसके पांव में जैसे सकत न हो। अपने कमरे में पलंग पर पड़े हुए, उसे लगता जैसे किसी अंधेरे कुएं में वह धंसती चली जा रही हो। चक्कर-चक्कर, अंधेरा-अंधेरा। उसका दिल बैठता जा रहा था।

यही नहीं, अगले दिन हमेशा की तरह राजीव शाम की गाड़ी से लौट गया। बेगम मुजीब को बेशक़ याद था, लेकिन उसके चलने से पहले वह घर लौटकर नहीं आई। किसीसे, बाहर मिलने के लिए गई हुई थी, जहां उसे देर हो गई।

रिक्शा से उतरकर, जल्दी-जल्दी वह गोल कमरे की तरफ़ बढ़ी। पर्दा हटाकर उसने देखा कि सामने सोफे पर ज़ाहिद और रुख़साना, रुख़साना और ज़ाहिद···। और फिर आंख झपकने की देरी में पर्दा वैसे-का-वैसा खिसककर अपनी जगह पर आ गया। बेगम मुजीब अपने कमरे की ओर चल दी।

ज़ेबा के कमरे के पास से गुज़रते हुए उसे लगा, जैसे अन्दर से सिसकियों की आवाज़ आ रही हो। हां-हां, ये सिसकियां ही तो थीं। ज़ेबा अपने पलंग पर औंधी पड़ी लहू के आंसू रो रही थी।

बेगम मुजीब उसके कमरे में गई। अम्मी को देखकर ज़ेबा की चीख़ निकल गई। "तुझे हो क्या रहा है?" मां ने पूछा। एक बार, दो बार, और फिर ज़ेबा ने अपने सामने पड़ा हुआ लिफ़ाफ़ा उठाकर उसे पकड़ा दिया।

राजीव की चिट्ठी थी। 'ज़ेबा! तेरी अम्मी की अगर यही शर्त है तो मैं मुसलमान हो जाता हूं।' बेगम मुजीब का मुंह खुले-का-खुला रह गया।

उसके कलेजे में एक अजीब-सी कसक थी। कितनी देर अपने कमरे में वह पसीना-पसीना-सी हुई पड़ी रही। उससे अपनी बेटी का दुःख और नहीं देखा जाता था। महमूद का कुछ पता नहीं था। राजीव अजनबियों की

तरह आता था, अजनबियों की तरह जाहिद से मिलकर चला जाता था। आज कितने दिन हो गए थे ! आज की शाम भी ऐसा ही हुआ था।

सांझ ढल रही थी। बेगम मुजीब चादर उठाकर अपने शौहर के मजार की ओर चल दी। उसकी क़ब्र के पास पहुंची कि वह बेहाल होकर उसके ऊपर गिर पड़ी। छल-छल आंसू बहाती हुई बेगम मुजीब अपने बच्चों के अब्बा से कह रही थी, "मेरे सिरताज ! मेरे सिरताज !! मैं क्या करूं ? मैं कहां जाऊं ?"

